काव्य

माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक ५५



कथाकोशः

सम्पादक

डॉ. आ. ने. उपाध्ये, एम्. ए., डी. लिट्.

प्राध्यापक, जैनविद्या और प्राकृत,

मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

कथाकोशः

डॉ. आ. ने. उपाध्ये



भारतीय ज्ञानपीठ
प्रकाशन

माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक ५५

प्रभाचन्द्रस्य

आराधना-कथा-प्रबन्धम्

(कथाकोशः)

(एकमेव हस्तप्रतिसे, संशोधनात्मक प्रस्तावना
आदिके साथ, सम्पादित)

सम्पादक
डॉ. आ. ने. उपाध्ये, एम्. ए., डी. लिट्.
प्राध्यापक, जैनविद्या और प्राकृत,
मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ

माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला
ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ. आ. ने. उपाध्ये व पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय
बी/४५-४७, कॅनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-१,१०,००१
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-२,२१,००५

प्रथम संस्करण
वीर निर्वाण संवत् २५००
विक्रम संवत् २०३१
सन् १९७४
मूल्य : सात रुपये

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय
वाराणसी

MĀNIKACHANDRA D. JAINA GRANTHAMĀLĀ : N. 55

PRABHĀCANDRA'S

Ārādhanā-Kathā-Prabandha

OR

KATHĀKOŚA

Edited

From a Rare Ms., along with a Critical Introduction etc.

by

Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. LITT.
Professor of Jainology and Prākrits
University of Mysore, Mysore.

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪṬHA

Māṇikachandra D. Jaina Granthamālā
General Editors :
Dr. A. N. Upadhye & Pt. Kailash Chandra Shastri

Published by
Bhāratīya Jñānapīṭha
Head Office
B/45-47, Connaught Place, New Delhi-1,10,001
Publication Office
Durgakund Road, Varanasi-2,21,005

First Edition
V. N. S. 2500
V. S. 2031
A. D. 1974

Price Rs. 7.00

TABLE OF CONTENTS

प्रधान सम्पादकीय

प्रभाचन्द्रका यह 'कथाकोश' विभिन्न दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है यद्यपि न्यायकुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्डके रचयिताके साथ इन प्रभाचन्द्रकी एकरूपता अभी तक एक रहस्य ही बनी हुई है। माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके अन्तर्गत उसके ५५वें पुष्पके रूपमें इसे उपस्थित करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है। स्व. श्री नाथूरामजी प्रेमीने इस ग्रन्थमालाके लिए क्या कुछ नहीं किया ? उनके पास इस 'कथाकोश'की एक ही प्रति थी और उसे वह विभिन्न विद्वानोंके पास भेजा करते थे। अन्तमें, सौभाग्यसे यह प्रति मेरे सहयोगी डॉ. आ. ने. उपाध्येके हाथोंमें आयी। वे इस ग्रन्थका सम्पादन कर और उसे प्रकाशनार्थ इस ग्रन्थमालाको देकर आत्मतुष्टिका अनुभव करें यह उचित ही है, क्योंकि ऐसा करके उन्होंने स्व. प्रेमीजीके प्रति अपने कर्तव्यका ही निर्वाह किया है।

भविष्यमें यदि कुछ और प्रतियाँ प्राप्त होती हैं तो इसके अनेक स्थलोंके सन्देहास्पद अंशोंका निराकरण किया जा सकेगा और ग्रन्थको अपेक्षाकृत अधिक समीक्षात्मक रूप प्रदान किया जा सकेगा। यद्यपि कथाकोशकी भाषा विशुद्ध रूपसे शास्त्रीय स्तरकी नहीं है फिर भी इसकी अपनी विशेषता है, क्योंकि इसका सम्बन्ध मध्य-इण्डो-आर्यन तथा नव्य-इण्डो-आर्यन भाषा-परिवारोंसे है। इस ग्रन्थमें वर्णित कथाओंके अन्य रूप पुराणों और अन्य कथाकोशोंमें भी पाये जाते हैं, जिनके साथ तुलनात्मक अध्ययनकी दृष्टिसे ये कथाएँ उपयोगी हैं। बृहत्-कथाकोशकी अपनी विद्वतापूर्ण प्रस्तावनामें डॉ. उपाध्येने उनपर विस्तारसे प्रकाश डालते हुए भगवती-आराधनाकी टीकाओंको उनका स्रोत बतलाया है।

श्रीमान् साहू शान्तिप्रसादजी और उनकी विदुषी पत्नी श्रीमती रमा जैनने इस ग्रन्थमालाको जो महान् संरक्षण प्रदान किया है उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। हमारे कतिपय जैन भण्डारोंमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंशके छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थ उपेक्षित पड़े हुए हैं। जैन साहित्यके क्षेत्रमें कार्य करनेवाले सभी उत्साही विद्वानोंको चाहिए कि वे समयका लाभ उठाते हुए उनके सम्पादनमें अपना सहयोग दें। सभी विद्वानोंसे हमारा यह अनुरोध है कि हमारे आचार्य जो अमूल्य साहित्य उत्तराधिकारमें हमारे लिए छोड़ गये हैं, हम अपना कर्तव्य मानकर उसे प्रकाशमें लायें।

डॉ. हीरालाल जैनके स्वर्गवासी हो जानेपर उनके पुराने सहयोगी और अभिन्न मित्र डॉ. उपाध्ये इस दिशामें उनके सारे कार्यभारको एकाकी ही उठाये हुए हैं, जो श्लाघनीय है। भारतीय ज्ञानपीठके संचालक मण्डलने मुझे उनका सहयोगी चुना इसके लिए मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

डॉ. उपाध्येने कथाकोशका सुसम्पादन कर एक और सुन्दर संस्करण इस ग्रन्थमालाको दिया जिसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। यह अवश्य ही इस मालाका एक सुन्दर पुष्प प्रमाणित होगा।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री

INTRODUCTION

1. Ms. MATERIAL

The present edition of the Ārādhanā-Kathā-Prabandha (AKP) or the Kathā-Kośa (KK) is based on a sigle Ms., so far available, described below :

This is a paper Ms., belonging to the late Pt. Nathuram Premi, Bombay. It is now presented to the Bhandarkar O. R. Institute, Poona. Its No. is 1 of 1974-75. It contains 118 folios, measuring 25.0 by 11.4 cms. The first page of the first folio and the second page of the last folio are blank. Each page contains ten lines and each line 37 to 40 letters. On the left and right sides there are three margin lines. The entire Ms. is written in black ink. Here and there, the titles etc. are rubbed with red powder. Basically this Ms. is carefully written with clear-cut letters very often with *paḍi-mātrās*. The Prākrit verses are, however, are not carefully written; and even the Sanskrit portion contains scribal errors. The three sibilants, *ś*, *ṣ* and *s* are not properly distinguished; *ch* and *th* are confused; and, in short, the spelling of even some Sanskrit words inclines towards what might be called Prākritic or vernacular pronunciation. The very nature of the Sanskrit language of the author makes room for such a tendency. Separation of words and absorbed vowels are indicated by a stroke, so also *avagrahas*,

signs of additions etc. on the top of the line. Some missing letters, in a few cases, are added on the margin. The entire Ms. is subjected to corrections with yellow paste; and, in many places, one wonders why an apparently acceptable reading is subjected to a questionable correction. The sentences generally end with *daṇḍas*, and the story–titles etc. with double *daṇḍas* with *cha* in between. Here and there the stories show a continuous numbering.

The Ms. opens with the symbol of *bhale* which looks like the number 60 in Nāgarī. It is followed by the saluations and the text :

ओं नमो वीतरागाय ॥ प्रणम्य etc.

It ends in this way :

इति भट्टारकश्रीप्रभाचंद्रकृतः कथाकोशः समाप्तः ॥

संवत् १६३८ वर्षे श्रावणशुदि ३ रवौ । श्रीमूलसंघे । सरस्वतीगच्छे । बलात्कारगणे । श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये । भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीसकलकीर्त्तिदेवास्त० भ० श्रीभुवनकीर्त्तिदेवास्त० भ० श्रीज्ञानभूषणदेवास्त० भ० श्रीविजयकीर्त्तिदेवास्त० भ० श्रीशुभचन्द्रदेवास्त० भ० श्रीसुमतिकीर्त्तिदेवास्त० भट्टारकश्रीगुणकीर्त्तिगुरूपदेशात् स्वात्मपठनार्थं लिख्यापितः ॥छ॥

2. TEXT–PRESENTATION

The editor has depended only on one Ms. in presenting the text of AKP. Despite many efforts and waiting for a number of years, he was not able to find another Ms. What appear like scribal errors alone have been corrected. There are *daṇḍas* in this Ms.; but in the printed text, they have been adjusted more suitably and a few more added here and there. In some places commas, hyphens etc. are added for a better understanding of the text. The

rules of Saṃdhi are not rigorously enforced. On the whole the editor has tried to be as faithful as possible to this Ms. If some emendations are made, the actual readings are given in the footnotes. Some of the grammatical irregularities could have been easily corrected; but they are allowed to remain as they are, because they constitute the speciality of the author's idiom; and in a way they go back to the original from which the author is adapting his text. In matters of orthography some uniformity is adopted following the conventions laid down by the Bhāratīya Jñānapīṭha in its 'Instructions to Editors.' The Nos. of stories are put in a continuous manner, and the Gāthās from the Bhagavatī Ārādhanā are added at the beginning of the stories.

3. ĀRĀDHANĀ-KATHĀ-PRABANDHA OR KATHĀKOŚA

The author would give the title Ārādhanā-kathāprabandha (AKP) to this work which is a collection or a compilation of stories connected with the topics of Ārādhanā. In the concluding colophon it is also called Kathākośa (KK). The Ārādhanā consists in firm and successful accomplishment of ascetic ideals, namely, Faith, Knowledge, Conduct and Penance, prescribed in Jainism; in maintaining a high standard of detachment, forbearance, self-restraint and mental equipoise at the critical hour of death; and in attaining spiritual purification and liberation. The Bhagavatī Ārādhanā, also called Mūlārādhanā, is an important text entirely devoted to the discussion about Ārādhanā.

The stories in this Prabandha are connected with the (Bhagavatī) Ārādhanā. As a matter of fact, the author quotes the first two Gāthās of the (Bhagavatī) Ārādhanā at the beginning of his work. The stories are introduced either with Sanskrit sentences often with a metrical ring or portions of Gāthās from the (Bhagavatī) Ārādhanā. This clearly indicates that this Prabandha gives stories to illustrate the direct and indirect references in the (Bhagavatī) Ārādhanā of Śivārya or Śivakoṭi; and it is not unlikely that their basic source is some old commentary (possibly in Prākrit) on that text. There has been a good deal of commentarial and expositional material in Prākrit, Sanskrit and Kannaḍa on this Ārādhanā text, but all of it has not come down to us.

The following table indicates how different stories, in their serial order, are connected with the Gāthās of the (Bhagavatī) Ārādhanā.

Ārādhanā-Kathā-Prabandhā	*Bhagavatī Ārādhanā*
1 to 13	1-2 (see also 44, 45)
14	201
15	346
16	348
17	547
18	589
19	732
20	739
21	740
22	737*1
23	759

Ārādhanā-Kathā-Prabandha	*Bhagavatī Ārādhanā*
24	772
25	773
26	822
27	849
28	874
29	909
30	915
31	935
32	949
33	950
34	951
35	1061
36	1063–65
37	1082
38-39	1100
40–43	1101
44	1128
45	1129
46	1130–32
47	1140
48	1144
49	1218
50	1236
51	1286
52	1287
53	1355
54	1356
55	1357
56	1358

Ārādhanā-Kathā-Prabandha	*Bhagavatī Ārādhanā*
57	1359
58	1374
59	1381
60	1388
61	1392
62	1393
63	1539
64	1540
65	1541
66	1542
67	1543
68	1544
69	1545
70	1546
71	1547
72	1548
73	1549
74	1550
75	1551
76	1552
77	1553
78	1554
79	1555
80	1556
81	1557
82	1649
83	1650
84	1800
85	1802

Ārādhanā-Kathā-Prabandha	*Bhagavatī Ārādhanā*
86	1806
87	*2073
88	2074
89	2075
90	2076
90*1	48*1
90*2,3	87
90*4	92
90*5 to 14	113
90*15	201
90*16	262
90*17	328
90*18	346
90*19	356
90*20	373
90*21	430*1
90*22	732
90*23–*26	737
90*27	737*1
90*28–*30	739
90*31	740
90*32	*746

It will be seen that, so far as the first 90 stories are concerned, Prabhācandra is following more or less the order of the Gāthās in the (Bha.) Ārādhanā. With regard to the stories 90*1 onwards, not only the order is disturbed but one finds also that some of the stories given in the first part are repeated. Though the first two Gāthās

of the (Bha.) Ārādhanā are quoted at the beginning, they are not found fully at the beginning of others stories. It is the editor who has added them in square brackets. The titles of the stories No. 14 onwards, whenever they look like a quotation, are, almost as a rule, in Sanskrit and in many cases portions of metrical lines with an Āryā ring. May be that Prabhācandra has before him an Ārādhanā text in Sanskrit in Āryā verses, from which he is quoting the portions of verses and then adding illustrated stories. There have been Ārādhanā texts in Sanskrit by Amitagati and others. None of these could be spotted in Amitagati's text. From 90*1 onwards, it will be seen that the portions of quotations, introducing the stories, are generally in Prākrit and often identical with the text in the (Bha.) Ārādhanā. Unlike all other stories the story No. 90*32 begins with a special verse in Sanskrit besides a few Prākrit words from a Gāthā (No.*746) in the (Bha.) Ārādhanā.

From the above observations, it is clear that this Kathākośa (KK) shows two distinct parts : the first ending with 90 stories and the second, covering the rest, 90*1, etc.. The first part is a unit by itself. Its title is AKP. It is composed by Prabhācandra Paṇḍita who was a resident of Dhārā in the reign or kingdom of Jayasiṁhadeva. The second part has no formal beginning, not even a Maṅgala. But it is concluded with the same verse which occurs at the end of the first part as No. 2. The colophon indicates that here ends the Kathākośa composed by Bhaṭṭāraka (Śrī) Prabhācandra. The second part is no doubt supplementary in character and added

later on to the first part. The order of the references to the (Bha.) Ārādhanā is not only disturbed but some stories are also repeated, as remarked above. There is no clearcut evidence to state whether both the parts are composed by one and the same Prabhācandra in the early and later part of his career, or composed by two different persons, Prabhācandra Paṇḍita and Bhaṭṭāraka Prabhācandra. To me, the former alternative looks more probable, though it is equally possible to plead for the second, in view of the only Ms. on the basis of which the case is to be argued. The style and presentation of contents are nearly alike in both the parts. The only difference in style is that in the first, the stories are introduced with Sanskrit sentences in Āryā metre, but in the second most of them with bits from Gāthās of the (Bha.) Ārādhanā. The make up of the last story is rather peculiar. As our edition is based on a single Ms., the form of our text has its limitations; and it can become more authentic when some additional Mss. are used.

Further, Nemidatta (beginning of the 16th century A.D.) also follows this very order in his Kathākośa with minor additions and omissions, and leaves some indication about this division at the close of his story No. 82, especially in the verse No. 21. So it is quite likely that Prabhācandra himself is responsible for this two-fold division : and it can be explained in this manner. As discussed in my Introduction to the Bṛhatkathākośa (Singhi Jain Series, Bombay, 1943) these stories were originally included in the commentaries of the (Bha.) Ārādhanā plenty of which were known to Aparājita and

2

Āśādhara. It is quite likely that these commentaries, in Prākrit, Sanskrit and Kannaḍa, differed among themselves on the number, nature, etc., of the illustrative stories connected with a particular Gāthā. Prabhācandra might have first completed his Prabandha with 90 stories following one source; but later, when he came across another commentary, or even a Kathākośa, giving more tales, he added the supplementary section, thus incorporating most of the stories associated with Ārādhanā. This mixing up of two sources has led to some repetition of stories : see, for instance, Nos. 14 and 90*15, 15 and 90*18, 19 and 90*31. A few of them differ in their length. It has been shown in my Introduction to the Bṛhat-kathākośa that the Kathākośas of Hariṣeṇa, Śrīcandra, Prabhācandra and Nemidatta are closely linked with the (Bha.) Ārādhanā. The distinction made by Dr. Kalburgi between the Bhagavatī Ārādhanā and Mūlārādhanā and the genealogical table sketched by him on p. 238, also see p. 234, betray that he has not handled the original texts, has just used second-hand material without much understanding, and has put forth uncritical speculation. It is my earnest request to researchers in Kannaḍa literature not to take his statements as basis for further deduction and research (See Dr. M. M. Kalburgi : Kavirājamārgada parisarada Kannaḍa Sāhitya, Dharwar, 1973). With the second Gāthā of the (Bha.) Ārādhanā are connected the opening stories of Pātrakesarin, Akalaṅka, Sanatkumāra and Samantabhadra. The stories on the eight limbs of Samyaktva, No. 6 to 13, are identical (see No. 6, p. 21, line 15) with minor differences

(here and there) with the stories found in the Sanskrit commentary of Prabhācandra on the Ratnakaraṇḍaka-Śrāvakācāra, I. 19-20. Further, the last story, No. 90*32 is identical with the story No. 6 from the Puṇyāsrava-Kathākośa of Rāmacandra Mumukṣu (Sholapur 1964). The format of the story, especially with that opening verse in Sanskrit (*gopo* etc.), is more natural and genuine in the Kośa of Rāmacandra Mumukṣu than in that of Prabhācandra. A comparision of the both these texts shows minor differences in readings; and some of them agree with those in the Ms. Pha. of the Puṇyā-srava-K.

This Prabandha of Prabhācandra deserves to be compared in details with other Kathākośas connected with the (Bha.) Ārādhanā. A modest attempt is already made by me in my Introduction to the Bṛhat-kathākośa (pp. 60 ff., 72 ff., 90 ff., especially 92 ff.) to which critical readers are referred. As already pointed out, Prabhā-candra's stories Nos. 1, 2 and 4 give details about some eminent authors, Pātrakesarin, Akalaṅka and Samanta-bhadra. Though the earlier sources are not known to us, at Prabhācandra's time these details about those authors were current. Pātrakesarin's understanding of the Devā-gama (of Samantabhadra), his finding of the definition of inference (*anyathānupapannam* etc.) and his com-posing a hymn (*jinendra-guṇa-saṁstuti* etc.) are quite interesting details about him. The verse *nāhaṃkāra* etc. in the story of Akalaṅka is found in one of the Śravaṇa Beḷgoḷ inscription (Epigraphia Carnatica II, No. 67, verses 23 and 7) of 1128 A. D. and the verse *pūrvaṃ*

Pāṭaliputra etc. (quoted along with *Kāñcyāṃ* etc.) is not found in the above record but is given at the close of some Mss. of the Svayaṃbhūstotra. In the story of Samantabhadra, Śivakoṭi is put as a convert to Jainism who later on accepted (as the story goes) renunciation and composed Mūlārādhanā in 40 Sūtras (Sections ?), *arha, liṅga* etc. summarising in 2500 (*granthas*) the work of Lohācārya which contained 84000 (*granthas*). The enumeration of the topics indicates that the Bhagavatī Ārādhanā of Śivārya is in view.

4. LINGUISTIC PECULIARITIES OF THE TEXT

The Sanskrit expression and style used by Prabhācandra in this Kathākośa are of a popular type; and much of it can be appreciated only by presuming that he is writing with some sources in Prākrit before him. For understanding the back-ground of this study, the readers may be requested to note my observations in this regard in my Introduction (pp. 94 ff.) to the Bṛhat-Kathākośa (Bombay 1943) and to that (pp. 23 f.) of the Puṇyāsrava-kathākośa (Sholapur 1964). A good monograph on this subject is available now in the 'Lexicographical Studies in Jaina Sanskrit' by B. J. Sandesara and J. P. Thaker (Oriental Institute, Baroda 1962).

Though the Editor has normalised the spelling to a great extent, the Ms. takes a good deal of liberty in using *ś*, *ṣ* and *s*, for instance शमिला=समिला (130.8)

The text, as it stands, does not enforce Saṃdhi in all the places : in fact, it is optional and conveniently practised. One can collect such instances on any page.

There are some instances of *ka*-suffix without any appreciable change in the meaning : मेंढूक (46.9), चरुक (65.14), मज्जनक (9.2). The word मृतक (65.13) shows change in meaning.

Certain words may be noted for their striking spelling : वाणारसी (11.10) for वाराणसी, सन्मुख (79.1) for संमुख, चाणाक्य (103.19) for चाणक्य, चातुर्वेदः (114.4) for चतुर्वेदी, मत्सी (60.5) for मत्स्यी. There is no clear distinction made between Fem. nouns ending in *–i* or –ī. Nouns ending in *–n* are often reduced to *–a* ending : सोमशर्मशिवशर्मौ (49.21), सोमशर्मस्य (138.20) for °शर्मणः. A noun ending in *–s* is taken as *–a* ending (Fem.) : जीवद्यशापुत्री (73.19).

An indeclinable particle like प्रातः is treated as a noun (on par with प्रभात) ending in *–a* and one gets the form प्राते (98.11). One can compare the Prākrit usage अहे for अधस्.

Some liberty is taken in gender, for instance, वर्षान् (93.16) for वर्षाणि (meaning year).

Coming to Declensions, the Acc. once stands without any termination : धर्म उपदिशन्तम् (20.6). Instr. is used for Abl.. : सागरदत्तेन (generally for –दत्तात्) पुत्रो जातः (40.3); note also बहुलेन कोपात् (45.22); for Loc. शूलेन (for शूले) प्रोतः (45.10). Gen. is often used for the Dative : राजस्य दत्ता (17.22); राज्ञः कथितम् (12.11). In a compound expression राज्ञः takes the place of राजस्य, प्रजापालराज्ञः (22.9). राज्ञो विज्ञप्तः (53.21) is a loose usage : either राज्ञो should stand for Nom. sg., or it is a mistaken paraphrase of राइणो विण्णत्तं. Loc. is used for Acc. रात्रौ (for रात्रिं) गमयिष्यति (42.2); for Abl. रात्रिभोजने (for भोजनात्) निवृत्तः (64.22). The use of Loc. आम्रवृक्षे (for आम्रवृक्षस्य अधः) is interesting (31.21).

लघुना निषिद्धेनापि etc. (67.25) may be looked upon as Instrumental Absolute.

As to the irregular usage one may note सानन्देन for सानन्दम् (21.23) and सप्तवारान् for सप्तवारम् (57.4).

There are some cases of the confusion of Gaṇas of roots, for instance, भक्षित्वा for भक्षयित्वा (38.2, 47.9); खन्यतः for खनतः (51.1); न्यसन् for न्यासयन् (145.25); and लज्जयित्वा for लज्जित्वा (89.4).

There is one case where the Imperative form is used for that of the Present : यदि राज्ञीहारं मे देहि (=ददासि) तदा (45.8).

No clear-cut distinction is made in the use of Primitive and Causal base in some places. बन्धयित्वा for बद्ध्वा (22.4; 31.8, 53.14); परिणयिष्यसि for परिणेष्यसि (125.22); रक्षय for रक्ष (5.8); and याचयतः for याचमानस्य (84.5).

There are some cases of the use of Past Passive for the Past Active : निन्दितः for निन्दितवान् (24, 18); ज्येष्ठः...औषधं दत्तम् for दत्तवान् (67. 25); and आश्रिता for आश्रितवती (144. 19).

There are some irregular forms of the Gerund used by the author : आकारयित्वा for आकार्य (38.5); नियन्त्रित्वा for नियन्त्र्य (42.26); जातिस्मरीभूय for °भूत्वा (76.26) and अलंकृत्वा for अलंकृत्य (143. 24).

There are some instances of irregular agreement both in nominal and verbal forms : रामदत्ता देवो जातः (for जाता, 17.17.); स गर्दभी जाता (86.16); विनयं कर्तव्यः (117. 11); अहम् अनाकार्षीत् (for °कार्षम् 20,19).

The use of the particle *nāma* deserves to be noted : पुत्री श्रीधरा नामा (for नाम, by name) जाता (17.20); विजयो नामा (for नाम) जातः (18.26); संगमनामो (for °नामा, 91.20).

There is a peculiar use of *lagna* after a verbal form.

The presence of it after Infinitive can be understood as in समर्थयितुं लग्नः (7.11), कर्तुं लग्नः (72.11); and has its correspondence in NIA, करने लगा in Hindi and करू लागला in Marathi. But the variety of usage seen in this text needs more investigation. With Present tense (active base): मारयामि लग्नः (39.2, 53.9), आगच्छामि लग्नः; मारयसि लग्नः (16.20); आगच्छति लग्नः (6.8); याति लग्नम् (113.1); (with passive base) : मार्यसे लग्नः (81.7); मुच्यते लग्नः (19.14); निगृह्यते लग्नः (87.13).

Then there are certain idiomatic usages and expressions which often have their counterparts in some of the modern Indian languages. पत्रं न भिन्नम् (6.22.), cf. Marathi पत्र फोडणें; बुड्डिका दत्त्वा (71.21) cf. बुडी देणे किंवा मारणे in Marathi; भृत्वा (84.2), in the sense of भरून किंव लादून in Marathi; कथयितुं नायाति (73.9), cf. similar expression in Marathi and Kannada; तस्योपरि रुष्टः (119.16), प्रजापालस्योपरि चलितः (128.12); ग्रीवायां चम्पितो मृतः (95.8); पृष्ठे लगतु (104.11); न कल्पते (94.17); पूर्यते बहु (103.2); गमनं करोति (21.24).

This edition is based on a single Ms., so one cannot be always certain about the accuracy of some readings. Still the lexical material in this Kathākośa is quite rich, and a few words of interest may be noted here (D.=Deśī; Sk.=Sanskrit; Pk.=Prākṛta).

अर्जिका (132.22), a nun; cf. आर्यिका, आर्या.

आरार्तिः (78.24), worship, prayer (with lamp-waving); cf. Sk. आरात्रिक, in NIA आरती.

आरोग्यः *m.* (123. 13), without ailment.

उक्लमन (51.20), strangling the neck in a noose.

उड्ड (70.6), elsewhere ओड्ड, a stone-digger; Kannada ओड्ड, one who works in a quarry.

उद्भ: (80. 2), standing erect, cf. उभा in Marathi.

उद्यानवन (6.12), a park.

उद्वस (138.2), desolate.

कर्पटम् (5.11), garment; cf. कापड, कपडे in Marathi.

कल्पपाल (35.14), a liquor-vendor; cf . कलाल in NIA.

कावटिक (129.12), one who brings any load, balanced in two hangers, on his shoulder (कावडी in Marathi).

किट्ट (69.22), dirt.

कुडी (104.5), ?

कुशी (69.23), a metal piece.

कूर्दाल (51.11), a digging instrument with wooden handle; कुदल in Marathi, गुद्दलि in Kannada.

केलक (38.21), plantain, Sk. कदली, Pk. केली.

क्षान्तिका (16.12), a nun, cf. कंति in Kannada.

खल (69.21), waste, sesamum-oil-cake.

खलीकृतं धान्यं (84.6), corn collected in the thrashing ground (खळ).

खोटक (70.12), peg; D. खोड, a big wooden trap for the legs.

खोल्लिका (93.16), a cloth-cradle in which a child is made to sleep.

गर्गरी (139.16), a small earthen pot, D. गग्गरी, घागरी in Marathi.

गोणी (4.13), a jute bag.

गौल्यदुग्ध (124.12), cow's milk, D. गोला=cow.

ग्रहिल (15.22), D. गहिल्ल, mad.

घात (51.2), a stroke.

घातयित्वा (110.1), having put (in chains), cf. Marathi घालणें.

घास (68.3), Pk. घास, Sk. ग्रास morsel.

घोटक (41.6), a horse.

चटन-उत्तरणं (22.9), climbing up and down, cf. Marathi चढणे-उतरणें.

चट्टक (84.16), a limb, foot (?).

चिमुटी (114.20), a pinch, which could be held between the thumb and a finger.

चोल्लक (53.19), a cloth-pack, D. चोल्लय.

चौरिका (54.5), stealing, kidnapping, Pk. चोरिआ, Sk. चौर्य.

जलखल्ला (67.9), a water-bag (made of skin).

जूर (81.3), to run down, to get angry.

झकटक (87.18), quarrel, D. झगड, Hindi झगड़ा, Kannada जगळ.

झाटित (72.9), shaken off, झाडणे in Marathi.

टिण्ट (127.14), D. gambling booth.

टोल्लकः (113.5), stroke.

डोकरिका (73.2), an old woman, D. डोक्करी.

डोम्बः (34.5), D. डुंब, a tribal person, here a snake charmer.

तपो (56.15), possibly Pk. *तुओ Sk. तुक् a son.

तलारः (98.7), city guard, D. तलवर.

तैलखली (138.13), खलिः f. sesamum-oil-cake, D. खलो–तिलपिण्डिका.

दवरक-प्रोतन (138-15), inserting thread in a pearl hole.

द्रह (143.8), pond.

धरणक (45.18), sitting before somebody's house to exact something.

धाटकः (111.16), murderer.

धान्यगालन (102.5), corn-crushing.

धूमरी (60.13), D., Dusk, darkness, cf. Sk. धूम्र.

निपीलन (61.4), twisting, crushing, Sk. निपीडन.

निमित्तिन् (43.15), one who interprets omens.

पल्यङ्क (17.3), cot, cf. पलंग.

पिट्टन (73.15), beating.

पिट्टारक (34.6), casket.

पादोपयान-मरण (101.22), Sk. प्रायोपगमन, पादपोपगमन, a mode of fasting and dying.

पापर्द्धि (40.18), hunting.

प्रनाल (12.9), water-outlet.

पालण-क (107.11), cradle.

पिल्लिकः (67.13), a young one, D. पिल्लग.

पुरुषवेषिणी (126.5), Sk. पुरुषद्वेषिणी (?).

प्रघट्टक (58.13), morning, cf. पहाट in Marathi, Sk. प्रभात.

प्राणहिता (88.21), a shoe, Pk. पाणहा, Sk. उपानहू.

फरक (58.8), wooden box (?).

फाल (68.7), a metal piece.

वाहिर, बाहिरिका, (ग्राम) बाहिरे (118.19, 129.13, 138.8), outside.

वुड्डिका (71.21), jumping in.

ब्रुड (71.13), Pk. वुड्ड, to sink.

भग्नः (50.2), lost in character.

भाउआइका (97.16), name of festival.

भाडद्रव्य (87.12), rent money.

भृत (75.13), filled.

भ्रमातुक (88.19), a traveller.

मरकम् (46.7), an epidemic (cholera).

माम (31.16), maternal uncle.

मैथुन (नि) क (32.6, 126.8), brother-in-law, cf. मैदुन in Kannada.

लकुटि (45.19), a club.

लड्डुकेन प्रपञ्चेन (79.11), (by deceiving) with sweets.

लयण (146.4), a cave temple.

वट्टः (93.8). ?

वन्दकः (4.2), a Buddhist (monk),

वरत्रा (49.21), a strap, rope.

वल्ल (42.10). D. वल्ल, a kind of corn.

वसति (का) (5.23), a Jaina temple, बसदि in Kannada.

वंशकम्बा (138.15), a bamboo stud or piece.
वाह्याळी (137.9), race-course.
विकुर्वाणा (116.23), miraculous transformation.
विरळ (65.9), to comb.
विसूर (40.10), D., to be miserable.
व्याघुट (50.17), to arrive, to return, D. वाहुडिअ.
सन्नपल्ली (68.24), name of a tree.
सपेटिका (63.20), accompanied by a dancing party.
सम्यग्दृष्टिनी (39.10), *f.* from सम्यग्दृष्टिन्.
सहिकः (128.20), Sk. सभिकः, a gambler.
संलप्य (46.17), having concealed oneself, cf. Marathi लपणें.
साटि (87.17), D. सट्ट, bidding, exchange.
सेल्ल (81.9), D. सेल्लि, rope; D. सेल्ल spear.
सूत्रकर्तन (59.2), threading the cotton, cf. Marathi सूतकातणें.
सौल्लिका (68.18), a crow.
हेरिक (45.16), a spy.

It will be seen that many of these words go back to Prākrit counter-parts, show popular Sanskrit spelling, are back-formations, or have a different shade of meaning. Some of the stylistic features remind us of the involved gerundive construction seen in the Kannaḍa Vaḍḍārādhane and other similar texts. It is not unlikely that the author had before him some sources in Kannaḍa, besides those in Prākrit and Sanskrit.

5. PRABHĀCANDRA : THE AUTHOR

At present, only one Ms. of AKP is available; and, on the basis of it, it is felt that one and the same Prabhācandra has composed the entire AKP which shows two clear-cut parts. There are two concluding colophons but

not two opening Maṅgalas; so it is a continuous work. At the end of the first part, he calls himself (Śrīmat) Prabhācandra Paṇḍita, but at the end of the work, Bhaṭṭāraka (–śrī–) Prabhācandra. A common verse concludes both the parts, though the title of the work is differently worded : Ārādhanā (*sat*, or *–sat-su–*, in the opening Maṇgala) Kathā-Prabandha, or Kathākośa. The colophon (p. 112) specifies that Prabhācandra Paṇḍita, residing in Dhārā during the reign or in the kingdom of Jayasiṁhadeva, composed this work. This is all that he tells about himself. Thus this work can be assigned to the close of the 11th century A. D., because Prabhācandra was a contemporary of Jayasiṁhadeva who came to power by about 1055 A. D. after Bhoja (c. 1018-55) who died of a malady in course of a battle.

Whether this Prabhācandra is identical with any of the other Prabhācandras known to us is a problem difficult to be solved. The late Pt. Jugalkishore Mukthar has listed nearly 20 Prabhācandras (Intro. pp. 57 ff,, to the Ratnakaraṇḍaka Śrāvakācāra, Māṇikachandra D. J. G., Bombay 1925). Of these I am inclined to indentify our Prabhācandra (on account of the close similarity of the colophons) with the one at No. 12 who wrote a Ṭippaṇa on the Uttarapurāṇa of Puṣpadanta, and also perhaps on the Prameyakamala-mārtaṇḍa during the reign of Bhoja (see Jugalkishore's discussion). It is quite possible (but one cannot be [dogmatic) that he is the same Prabhācandra as one who wrote Sanskrit commentaries on the Ratnakaraṇḍaka-śrā., Ātmānuśāsana and Samādhiśataka (see the Intro. to Ātmānuśāsana,

Jīvarāja J. G., Sholapur 1961). There are some stories common between this Kathākośa and the Comm. on the Ratnakaraṇḍaka–śrā.; and both of them are borrowing some stories from the Puṇyāsrava-kathākośa of Rāmacandra Mumukṣu (See its Intro. p. 22, Jīvarāja J. G. Sholapur 1964). The late Pt. Mahendrakumar held that this Prabhācandra is the same as the authour of the Prameyakamala - mārtaṇḍa and Nyāyakumuda - candra (Nyāyakumuda-candra, vols. I & II, Bombay 1938-41, Introductions I, pp. 144f. and II, 48 f.; Prameyakamala-mārtaṇḍa, Bombay 1941, Introduction pp. 56 f., 67 f., especially p. 75). But this cannot be accepted for a number of reasons. As already pointed by earlier scholars, there is sufficient ground to suspect that the colophon of the Ṭippaṇaka on the Prameyakamala-mārtaṇḍa has got mixed up with that of the basic text, so one has to be very cautious in taking them on their face value. Secondly, there is the possibility of some contemporary authors bearing the same name : this is all the more true in the case of Jaina teachers and authors. Thirdly, any one who reads the Sanskrit prose of this Kathākośa (see the Linguistic Peculiarities of the Text, above) cannot believe that this very author could write the grand style of those two outsanding Nyāya works. The Sanskrit expression of this Kathākośa has many peculiarities and defects which are absent in the two Nyāya works. Some of our details about Prabhācandra can be final only after some more Mss. of this Kathākośa come to light and the format of the text is critically finalised.

6. EDITOR'S SUBMISSION

The text of this Kathākośa is presented here from a single Ms. There are some special reasons for doing so. First, it was the earnest desire of the late Pt. Nathuram Premi, who gave me the Ms., that this Kathākośa should be published. Second, this Ms. was used by a number of scholars in their studies; and its importance, therefore, was quite obvious. Third, besides the scholars to whom Pt. Premi suggested to edit this work, I too approached some in this regard, because my hands were too full otherwise; but the Ms. came back to me without any progress. Fourth, I had got prepared a neat transcript of it by an expert copyist in Mysore as early as 1940 for my study of it as presented in my Introduction to the Bṛhat-kathākośa (Bombay 1942). Fifth, our efforts to secure another Ms. were not fruitful. Sixth, my elder colleague, the late Dr. Hiralal, advised me to bring out an edition early so that this valuable Kathākośa is saved form oblivion. Lastly, the quiet campus of the University of Mysore almost induced me to complete some of my undertakings like the Gītavītarāga (already published in this Granthamālā) and this Kathākośa. None is more aware than this editor about the tentative character of the text presented here.

The only Ms. on which this edition is based is now presented by me to the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona; and it is registered there under No. 1 of 1974-75.

My colleague Shri M. D. Vasantharaj, M. A. helped

me in reading the proofs with me, and Shri V. G. Desai, B. A., Kolhapur, gave me some suggestions on doubtful readings and assisted me in preparing the Indices and Errata. My thanks to both of them.

I record my sincere gratitude to Smt. Rama Jain and to Shriman Sahu Shanti Prasadaji under whose patronage the Māṇikachandra D. J. Granthamālā is progressing. It has brought to light many rare works for the first time; and this work too is included in the same Series. I offer my thanks to Shri L. C. Jain who is enthusiastically implementing the publication programme of the Bhāratīya Jñānapīṭha.

Karmaṇy evādhikāras te !

Mysore University
Manasa Gangotri,
Mysore-6; August 5, 1974

A. N. Upadhye

प्रस्तावनाका हिन्दीसार

प्रति परिचय

आराधना कथा प्रबन्ध या कथाकोशके इस संस्करणका सम्पादन केवल एक ही प्रतिके आधारसे किया गया है। दूसरी प्रति कहींसे भी प्राप्त नहीं हो सकी। उपलब्ध प्रति स्व. पं. नाथूराम प्रेमीकी थी। इसमें ११८ पेज हैं। यह संवत् १६३८ में लिखी गयी थी।

आराधना कथा प्रबन्ध या कथाकोश

ग्रन्थकारने अपनी इस कृतिको आराधना कथा प्रबन्ध नाम दिया है। क्योंकि इसमें संगृहीत कथाएँ आराधनाके विषयोंसे सम्बद्ध हैं। इसे अन्तिम सन्धिमें कथाकोश भी कहा है। आराधनामें दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओंका वर्णन है। भगवती आराधनाको मूलाराधना भी कहते हैं। प्रत्येक कथाके प्रारम्भमें ग्रन्थकारने संस्कृत गद्यके साथ पद्य या भगवती आराधनाकी गाथाका भाग दिया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि शिवार्य या शिवकोटिकी आराधनामें दिये गये साक्षात् या संकेतित उद्धरणोंको चित्रित करनेके लिए इस प्रबन्धमें कथाएँ दी गयी हैं। और यह सम्भव है कि उनका मूल कुछ प्राचीन टीका हो जो सम्भवतया प्राकृतमें रही हो। प्रारम्भ की ९० कथाएँ प्रायः भग. आरा. के गाथा-क्रमानुसार हैं। कथाकोशके अन्तःपरीक्षणसे यह स्पष्ट है इन कथाओं तक कोशका प्रथम भाग समाप्त होता है। इसका नाम आराधना कथा प्रबन्ध है। इसके रचयिता प्रभाचन्द्र पण्डित हैं जो जयसिंहदेवके राज्यमें धाराके निवासी थे। दूसरे भागके प्रारम्भमें तो मंगल तक नहीं है। किन्तु इसके

अन्तमें भी वही पद्य है जो प्रथम भागके अन्तमें आता है। अन्तिम सन्धिमें कहा है कि भट्टारक़ (श्री) प्रभाचन्द्र रचित कथाकोश समाप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है कि दूसरा भाग पीछेसे जोड़ा गया है। इसमें कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि दोनों भाग एक ही प्रभाचन्द्रके द्वारा पूर्व और उत्तर कालके रचे गये हैं या प्रभाचन्द्र पण्डित और भट्टारक प्रभाचन्द्र-के नामके दो व्यक्तियोंके द्वारा रचे गये हैं। मुझे प्रथमकी ही अधिक सम्भावना प्रतीत होती है।

ब्र. नेमिदत्तने (ईसाकी सोलहवीं शताब्दीका प्रारम्भ) अपने कथाकोशमें किंचित् परिवर्तनके साथ उक्त कथाकोशका ही अनुसरण किया है। और ८२वीं कथामें कुछ संकेत भी मिलते हैं। अतः यह बहुत सम्भव है कि अपने कथाकोशके दो विभागोंके लिए उत्तरदायी स्वयं प्रभाचन्द्र हैं। जैसा कि मैंने बृहत्कथाकोश (सिंघी जैन सिरीज १९४३) को प्रस्तावनामें चर्चा की है, ये कथाएँ मूलमें आराधनाकी टीकाओंमें थीं, उनमें-से बहुत-सी अपराजित सूरि और पं. आशाधरको ज्ञात थीं। यह बहुत सम्भव है कि प्राकृत संस्कृत, और कन्नड़की ये टीकाएँ, अमुक गाथासे सम्बद्ध कथाओंको लेकर परस्परमें भेदको लिये हुए हों। प्रभाचन्द्रने प्रथम एक आधारको लेकर ९० कथाओंकी रचना की, किन्तु पश्चात् जब वह दूसरी टीकासे परिचित हुआ अथवा एक कथाकोशके परिचयमें आये जिसमें अधिक कथाएँ थीं तो उन्होंने उसमें दूसरा भाग सम्मिलित किया। इसीसे कुछ कथाओंमें पुनरुक्ति पायी जाती है। बृहत्कथाकोशकी मेरी प्रस्तावनामें यह दिखलाया है कि हरिषेण, श्रीचन्द्र, प्रभाचन्द्र और नेमिदत्तके कथाकोश भग. आराधनासे निकट सम्बद्ध हैं।

भग. आरा. से सम्बद्ध कथाकोशोंके साथ प्रभाचन्दके इस प्रबन्धकी तुलना करना उचित होगा। बृहत्कथाकोशकी प्रस्तावनामें मैंने इस सम्बन्ध-में कुछ प्रयत्न किया भी था। प्रभाचन्दकी कथा नं. १, २, ४, प्रमुख आचार्य, पात्रकेसरी, अकलंक, समन्तभद्रसे सम्बद्ध है। प्रभाचन्द्रके समयमें

इन आचार्योंके सम्बन्धमें जो बातें प्रचलित थीं उनका प्राचीन आधार क्या था यह हमें ज्ञात नहीं हैं। पात्रकेसरीके सम्बन्धमें उन्हें समन्तभद्रके देवागम स्तोत्रकी प्राप्ति, अनुमानकी अन्यथानुपपन्नत्वरूप परिभाषा, उनके द्वारा जिनेन्द्रगुण संस्तुतिकी रचना आदि विवरण काफी आकर्षक हैं। अकलंककी कथामें दिया 'नाहङ्कार' आदि पद्य श्रवणबेलगोलाके शिलालेखमें पाया जाता है तथा 'पूर्वं पाटलीपुत्र' आदि पद्य उक्त शिलालेखोंमें नहीं पाया जाता। किन्तु स्वयंभूस्तोत्रकी कुछ प्रतियोंके अन्तमें मिलता है। समन्तभद्रकी कथामें कहा है कि शिवकोटि जैनधर्मका अनुयायी बन गया और उसके साधुजीवन स्वीकार करने मूलाराधनाकी रचना की।

कथाकोशकी भाषा सम्बन्धी विशेषताएँ

प्रभाचन्द्रने संस्कृतिकी जो शैली और वाक्य-विन्यास अपनाये हैं वे प्रायः प्रचलित ही हैं। उनमें-से अधिकांशका मूल्यांकन इसी अनुमानपर किया जा सकता है कि लेखकके सम्मुख कुछ प्राकृत आधार उपस्थित थे। इसकी पृष्ठभूमिको समझनेके लिए पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे मेरे बृहत्कथाकोश (बम्बई १९४३) और पुण्यास्रवकथाकोश (शोलापुर १९६४) की प्रस्तावना देखें। इस विषयपर वर्तमानमें बी. जे. संडेसरा और जे. पी. ठाकरका एक उत्तम ग्रन्थ (Lexicographical Studies in Jain Sanskrit) जो ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा १९६२ में प्रकाशित हुआ है, दृष्टव्य है।

[आगे विद्वान् सम्पादकने बहुत विस्तारसे उद्धरण देकर इसे स्पष्ट किया जो उनकी अँगरेजी प्रस्तावनासे ज्ञातव्य है]

ग्रन्थकार प्रभाचन्द्र

आराधना कथा प्रबन्धकी उपलब्ध एक मात्र प्रतिसे यही अनुभवमें आता है कि एक ही प्रभाचन्द्रने पूर्ण ग्रन्थको रचा है जो दो भागोंमें विभक्त

है। यद्यपि दोनोंके अन्तमें पृथक् सन्धिवाक्य हैं किन्तु आरम्भिक मङ्गल दो नहीं है। अतः यह एक ही रचना है। प्रथम भागके अन्तमें वह अपने को (श्रीमत्) प्रभाचन्द्र पण्डित लिखते हैं और दूसरेके अन्तमें भट्टारक (श्री) प्रभाचन्द्र। दोनों भागोंमें अन्तिम पद्य एक ही है। यद्यपि ग्रन्थका नाम लिखनेमें अन्तर है। प्रथम भागके अन्तमें लिखा है कि जयसिंहदेवके राज्यमें धारा नगरीके निवासी प्रभाचन्द्र पण्डितने यह ग्रन्थ रचा। ग्रन्थ-कारने अपने सम्बन्धमें केवल इतना ही कहा है। अतः इस ग्रन्थका रचना-काल ईसवी सन्की ग्यारहवी शताब्दी है क्योंकि प्रभाचन्द्र जयसिंहदेवके समकालीन थे जो भोजके (१०१८-५५) के पश्चात् लगभग १०५५ ई. गद्दीपर बैठे।

यह प्रभाचन्द्र हमारे ज्ञात प्रभाचन्द्रोंमें-से किसी एकके साथ मेल खाते हैं या नहीं, इस समस्याको सुलझाना कठिन है।

स्व. पं. जुगलकिशोरजी मुख्तारने मा. ग्र. बम्बईसे प्रकाशित रत्न-करण्ड श्रा. की अपनी प्रस्तावनामें बीस प्रभाचन्द्रोंका निर्देश किया है। इनमें-से मैं नं. १२ के प्रभाचन्द्रको जिन्होंने उत्तर पुराणपर टिप्पण लिखा है, और भोजके राज्यमें सम्भवतया प्रमेयकमलमार्तण्डपर भी टिप्पणी रचा है कथाकोशको कर्ता होनेकी सम्भावना करता हूँ। यह बहुत सम्भव है कि यह वही प्रभाचन्द्र है जिन्होंने रत्नकरण्ड श्रावकाचार, आत्मानुशासन और समाधितन्त्रपर संस्कृतमें टीकाएँ रची हैं। इस कथाकोश और रत्न. श्रा. की टीकामें आगत कुछ कथाएँ समान है और दोनोंमें कुछ कथाएँ रामचन्द्र मुमुक्षुके पुण्यास्रव कथाकोशसे ली गयी हैं। (देखो जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुरसे प्रकाशित इसकी प्रस्तावना)

स्व. पं. महेन्द्रकुमारने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्रकी अपनी प्रस्तावनाओंमें कहा है कि इनका रचयिता प्रभाचन्द्र ही उक्त टीकाओंका रचयिता है। किन्तु अनेक कारणोंसे इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। पूर्व विद्वानोंने लिखा है कि इस बातका सन्देह करनेका पर्याप्त

आधार है कि प्रमेयकमलमार्तण्डके टिप्पणका सन्धिवाक्य मूल ग्रन्थके साथ मिल गया है। अतः उसके सम्बन्धमें बहुत सावधानी बरतनेकी आवश्यकता है। दूसरे, एक ही कालमें एक ही नामके कुछ अनेक ग्रन्थकार होनेकी भी सम्भावना है। तीसरे, जो इस कथाकोशकी संस्कृत गद्यको पढ़ेगा, वह विश्वास नहीं कर सकता कि इसी ग्रन्थाकारने न्यायशास्त्रके महान् ग्रन्थ—जिनकी शैली बड़ी प्रखर प्रांजल है, रचे होंगे। इस कथाकोशकी संस्कृत गद्यमें जो अनेक विशेषताएँ तथा दोष हैं दोनों न्यायग्रन्थोंमें उनका अभाव है। यदि इस कथाकोशकी कुछ प्रतियाँ और भी उपलब्ध हों तो प्रभाचन्द्रके सम्बन्धमें अन्तिम रूपसे कुछ और भी विवरण दिया जा सकता है।



कथाकोशः

॥ श्रीः ॥

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

प्रणम्य मोक्षप्रदमस्तदोषं
प्रकृष्टपुण्यप्रभवं जिनेन्द्रम् ।
वक्ष्येऽत्र भव्यप्रतिबोधनार्थ-
माराधनासत्सुकथाप्रबन्धम् ॥

सिद्धे जयप्पसिद्धे चउव्विहाराहणाफलं पत्ते ।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो ॥

उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वहणं[1] साहणं च णित्थरणं ।
दंसणणाणचरित्तं तवाणमाराहणा भणिया ॥

[भ० आरा० १-२]

उद्द्योतनमित्यादि—सम्यग्दर्शनादीनां स्वयं स्वीकृतानां लोके प्रकाशनमुद्द्योतनम् । उद्योगः सम्यग्दर्शनादीनां स्वयं स्वीकृतानां द्विनिमित्तमनालस्येनोद्यमनः । निर्वाहणं गृहीतानां सम्यग्दर्शनादीनां त्यागकारणोपनिपाते शतखण्डं व्रजतोऽपि यस्तदपरित्यागः । अपरिहारकत्वमित्यर्थः । साधनं तत्त्वार्थाद्यध्यापनरागद्वेषविजयादिना सम्यग्दर्शनादीनां समग्रतासाधकत्वम् । निस्तरणं सम्यग्दर्शनादीनां निर्विघ्नतो जन्मपर्यन्तप्रापणम् ॥

---

१. णिव्वाहण

[१] तत्र सम्यक्त्वोद्द्योतनकथा ।

यथा—मगधदेशे अहिच्छत्रनगरे राजा अवनिपालो महामण्डलेश्वरः पञ्चशतद्विजपण्डितैः परिवृतः सातिशयं राज्यं कुर्वाणस्तिष्ठति । द्विजाश्च सर्वेऽपि संध्याद्वये संध्यावन्दनां कृत्वा श्रीपार्श्वनाथं च दृष्ट्वा निजनिजकर्मसु प्रवर्तन्ते । एकदा चारित्रभूषणमुनेः श्रीपार्श्वनाथस्याग्रे देवागमेनापराह्णे देववन्दनां कुर्वतः पात्रकेसरिणा सह महापण्डिताः समस्तप्रधानाः संध्यावन्दनां कृत्वा श्रीपार्श्वनाथं द्रष्टुमागताः । देवागमस्तवं श्रुत्वा [पात्रकेसरी] मुनिं पृष्टवान्—भगवन्, अर्थं बुध्यसे । भगवतोक्तम्—नाहं बुध्ये । ततस्तेनोक्तम्—पुनः पठ । ततो भगवता विशिष्टपदविश्रामैर्देवागमस्तवो भणितः । पात्रकेसरिणश्च एकसंस्थत्वेनैकहेलयैव शब्दतोऽशेषदेवागमावगाहकत्वसंभवात् शनैः शनैस्तदर्थं चेतसि परिभावयतो दर्शनमोहक्षयोपशमवशादुत्पन्नतत्त्वार्थश्रद्धानस्य एतत्प्रतिपादितमेव जीवाजीववस्तुस्वरूपं परमार्थतो नान्यदिति गृहे गत्वा रात्रौ वस्तुस्वरूपं परामृशतोऽनुमानविषये संशयः संजातः । अत्र हि जीवादिवस्तुप्रमेयं प्रतिपादितम् । तत्त्वज्ञानं च प्रमाणमनुमानलक्षणम् । तत्कीदृशं जैनमते संभवतीत्येवं मुहुर्मुहुः संशयं कुर्वाणः पद्मावतीदेव्या आसनकम्पादागत्य भणितः—भो पात्रकेसरिन्, प्रातः श्रीपार्श्वनाथदर्शनादनुमानलक्षणनिश्चयो भविष्यतीत्युक्त्वा श्रीपार्श्वनाथफणामण्डपे अनुमानलक्षणश्लोको लिखितः—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ॥

इति देवतादर्शने संजाते जैनमते अतिशयेन रुचिस्तस्य संजाता । प्रातश्च देवं पश्यतः फणामण्डपेऽनुमानलक्षणश्लोकदर्शनात्तल्लक्षणनिश्चये सति संजातहर्षः पुलकितशरीरोऽयमेव देवोऽय-

मेव धर्म इति दर्शनमोहक्षयोपशमविशेषवशादुत्पन्नविशिष्टसम्यग्दर्शनो जिनोक्तं तत्त्वं चेतसि पुनः पुनश्चिरं परिभावयन् द्विजैर्भणितः—मीमांसार्थ एव तात्पर्यतश्चेतसि चिन्त्यताम्, किं जैनमतार्थचिन्तयेति । ततः पात्रकेसरिणोक्तम्—जैनमतमेव सर्वमतेभ्यः श्रेष्ठम्, अतो भवद्भिरपि मिथ्याभिनिवेशं परित्यज्य तत्रैव रतिः कर्तव्येति विवादे सति समस्तानपि तान् राज्ञोऽग्रे वादेन जित्वा जैनमतं समर्थ्यात्मनः सम्यक्त्वगुणः प्रकाशितः । अन्यमतनिराकरणप्रवणो जिनेन्द्रगुणसंस्तुतिस्तवश्च कृतः । तं च तथाभूतं महापण्डितं दृष्ट्वा अवनिपालादयो गृहीतसम्यक्त्वा जिनधर्म एव रताः संजाता इति ॥

[२] अथ ज्ञानोद्द्योतनकथा ।

मान्याखेटनगरे राजा शुभतुङ्गो, मन्त्री पुरुषोत्तमनामको, भार्या पद्मावती, पुत्रावकलङ्कनिष्कलङ्कौ । एकदा नन्दीश्वराष्टम्यां पितृभ्यां रविगुप्ताचार्यपार्श्वेऽष्टदिनानि ब्रह्मचर्यं गृहीतम् । पुत्रयोरपि प्रणतोत्तमाङ्गयोः क्रीडया ब्रह्मचर्यं दापितम् । कतिपयदिनैर्विवाहोपक्रमसंप्रदानादिकं दृष्ट्वा पुत्राभ्यां पिता भणितः—तात, किमर्थोऽयं विवाहोपक्रमः क्रियते । पित्रोक्तम्—भवतोः परिणयनार्थम् । ननु तात, त्वया आवयोर्ब्रह्मचर्यं दापितम्, तत्किं विवाहेन । पित्रोक्तम्—क्रीडया तद्भवतोर्मया दापितम् । ननु तात, धर्मे का क्रीडा । ननु नन्दीश्वराष्टदिनान्येव मया भवतोर्दापितम्, न भवता भगवता वा तथाविवक्षितत्वात् । तत इह जन्मन्यावयोः परिणयने निवृत्तिरस्तीत्युक्त्वा सकलासद्व्यापारान्परिहृत्याशेषशास्त्राणि ताभ्यामधीतानि । बौद्धदर्शनपरिज्ञातुस्तथाभूतस्य कस्यचिन्मान्याखेटे अभावात्तत्परिज्ञानार्थमतीवाज्ञच्छात्ररूपं धृत्वा महाबोधिस्थाने महाबौद्धपरिज्ञातु-

धर्माचार्यस्य पार्श्वे छात्रवृत्त्या स्थितौ स च उपरितनभूमौ[1] विजातीयं परिशोध्य वन्दकानां बौद्धव्याख्यानं करोति। तौ चाज्ञौ भूत्वा मातृकां पठन्तौ तदाकर्णयतः। अकलङ्कदेवश्च तयोर्मध्ये एकसंस्थो निःकलङ्को द्विसंस्थश्चिन्तयति। एवमेकदा तद्व्याख्यानयतस्तस्य दिग्नागाचार्येणानेकान्तं दूषयता पूर्वपक्षतया सप्तभङ्गीवाक्ये लिखितेऽशुद्धत्वात्परिज्ञानं न संभवति। ततो व्याख्यानं संवृत्य स व्यायामे गतः। अकलङ्कदेवेन च तद्वाक्यं शोधित्वा धृतम्। तेन चागत्य तद्वाक्यं शोधितं दृष्ट्वोक्तम्—कश्चिज्जैनो यथावज्जैनमतपरिज्ञाता वन्दकवेषधारी बौद्धमधीयानो धूर्तस्तिष्ठति। स परिशोध्य मार्यतामित्युक्त्वा शपथादिना सर्वेऽपि परिशोधिताः। पुनर्जिनप्रतिमोल्लङ्घनं कारिताः। अकलङ्कदेवेन प्रतिमोपरि सूत्रं प्रक्षिप्य सावरणेयमिति संकल्पं कृत्वा तदुल्लङ्घनं कृतम्। ततः कथमपि जैनमलक्षयता पुनः कांस्यभाजनानि बहूनि एकत्र गोण्यां निक्षिप्य एकैकस्य वन्दकस्य छात्रकस्य च शयनस्य समीपे एकैकमुपासकादिकं दत्त्वा तानि कांस्यभाजनानि दूरादुत्क्षिप्य निक्षिप्तानि। ततो रौद्रे महति तच्छब्दे समुत्थिते अकलङ्कनिःकलङ्कौ पञ्चनमस्कारं स्मरन्तावुत्थितौ। ततस्तौ बौद्धा[चार्य]समीपे[2] नीतौ। भणितं च—भो भो आदेशिन्नेतौ तौ धूर्तौ छात्रवेषधारिणौ जैनौ लब्धाविति श्रुत्वा तेनोक्तम्—सप्तमभूमावेतौ धृत्वा पश्चाद्रात्रौ मारयितव्याविति। ततस्तौ सप्तमभूमौ नीत्वा धृतौ। ततो निःकलङ्केनोक्तम्—भो अकलङ्कदेव, अस्माभिर्गुणानुपार्ज्य दर्शनस्योपकारः कश्चिदपि न कृतः। एवमेव मरणमायातमिति। एतच्छ्रुत्वा अकलङ्कदेवेनोक्तम्—मा विसूरय। जीवनोपायोऽद्यैको

---

१. सु च्चो
२. बौद्धा तत्समीपे

विद्यते। इदं छत्रं हस्तेन धृत्वा आत्मानं प्रक्षिप्यावां गृहीतवातं छत्रं गत्वा यत्र भूमौ लगिष्यति ततो निर्गत्य यास्याव इति पर्यालोच्य रात्रावेतत्सर्वं कृत्वा निर्गत्य गतौ। अर्धरात्रे गते मारणार्थं यावत्तावन्वेषितौ तावन्न दृष्टौ। अथ उपरि वाटिकायां पत्तने चान्वेष्यमाणौ तौ न दृष्टौ। ततो निर्गताविति ज्ञात्वा तत्पृष्ठतोऽश्ववारा लग्नाः। उच्चलितधूलिरजो दृष्ट्वा तानागच्छतो ज्ञात्वा निःकलङ्केनोक्तम्—भो अकलङ्कदेव, त्वमेकसंस्थो महाप्राज्ञो दर्शनोपकारकरणार्थमत्र पद्मिनीषण्डमण्डिते सरोवरे प्रविश्यात्मानं रक्षय। मां मार्गे गच्छन्तं दृष्ट्वा मारयित्वा एते व्याघुटन्ति लग्नाः। इति तद्वचनादकलङ्कदेवो झटिति सरोवरे प्रविश्य पद्मिनीपत्रं मस्तकोपरि धृत्वा स्थितः। निःकलङ्कः शीघ्रं नश्यन् रजकेन कर्पटानि प्रक्षालयता उच्चलितधूलिरजो दृष्ट्वा क्षुभितचित्तेन पृष्टः। किमर्थं भवान्नश्यतीति। तेनोक्तम्—शत्रुबलं पश्यैतदागच्छति। तत्तु यं पश्यति तं मारयति। तद्भयादहं नश्यामीति श्रुत्वा सोऽपि तेनैव सह नष्टः। नश्यन्तौ तौ द्वौ धृत्वा मारयित्वा उत्तमाङ्गं गृहीत्वा च पृष्ठतो लग्ना व्याघुट्य गताः। ततो अकलङ्कदेवः सरोवरान्निर्गत्य गच्छन् कतिपयदिनैः कलिङ्गदेशे रत्नसंचयपुरं प्राप्तः। तत्र राजा हिमशीतलो, राज्ञी मदनसुन्दरी, स्वयंकारितमहाचैत्यालये जिनधर्मप्रभावनारता फाल्गुनाष्टम्यां रथयात्रां कारयन्ति, संघश्रीवन्दकेन विद्यादर्पात्तेन राज्ञोऽग्रे भणितम्। जिनस्य रथयात्रा न कर्तव्या जिनदर्शनस्यैवासंभवादित्युक्त्वा मुनीनां पत्रं दत्तम्। ततो राज्ञोक्तम्—आत्मीयं दर्शनं समर्थयित्वा रथयात्रा प्रिये कर्तव्या नान्यथेति। एतच्छ्रुत्वा राज्ञी उद्विग्ना संजाताभिमाना वसतिकायां गता। मुनयश्च पृष्टाः। किं क्वापि कश्चिदस्मद्दर्शने एतस्य प्रतिमल्लोऽस्ति, य इमं जित्वा मम मनोरथं पूरयतीति। मुनिभिरुक्तम्—दूरे मान्याखेटादावेतस्मादप्यधिका महापण्डिता जैनदर्शने सन्तीति। एतदाकर्ण्य

राज्ञी उच्छीर्षके सर्पो योजनशते वैद्य इत्युक्त्वा देवस्य विशेषपूजां कृत्वा राजकुलं परित्यज्य चैत्यालये प्रविश्य यदि संघश्रियो दर्पभङ्गात्पूर्वप्रवाहेण महोत्सवेन मदीया रथयात्रा भवति, तदा ममाहारादौ प्रवृत्तिर्नान्यथेत्युक्त्वा देवस्याग्रे पञ्चनमस्कारं जपन्ती कायोत्सर्गेण स्थिता। अर्धरात्र आसनकम्पात्समागत्य चक्रेश्वरी देवी, हे मदनसुन्दरि, मा किंचिदुद्वेगं कुरु, प्रातः संघश्रीदर्पविध्वंसकस्तव वाञ्छितमनोरथपूरको जिनशासनप्रभावनाकारकोऽकलङ्कदेवो नाम दिव्यः पुरुषः आगच्छति लग्न इत्युक्त्वा गता। एतच्छ्रुत्वा राज्ञी संजातपरमानन्दहर्षात्पुलकितशरीरा परमभक्त्या देवस्तुतिं कृत्वा प्रातर्महाभिषेकं निर्वर्त्याकलङ्कदेवस्यान्वेषणार्थं चतुर्दिक्षु पुरुषाः प्रेषिताः। तत्र पूर्वस्यां दिशि ये गताः पुरुषास्तैरुद्यानवने अशोकवृक्षतले कतिपयच्छात्रैः परिवृतो नगरविश्रामं कुर्वन्नकलङ्कदेवो दृष्टः[1]। छात्रमेकं तन्नाम पृष्ट्वा गत्वा राज्ञ्याः कथितम्। ततो राज्ञी चतुर्विधसंघेन सहिता यानजंपानसमन्विताकलङ्कदेवस्याभिमुखा आगता। तेन दिव्यगन्धविलेपनैश्चार्चितेन दिव्यवस्त्रैः परिधापिते राज्ञी संघस्य क्षेमकुशलवार्तां पृष्टा। ततोऽश्रुपातं कुर्वाणया राज्ञ्योक्तम्—संघः क्षेमकुशलेन तिष्ठति। किंतु संघस्य महती म्लानता सांप्रतमत्र जातेत्युक्त्वा संघश्रीविलसितं सर्वं तस्य कथितम्। तदाकर्ण्याकलङ्कदेवः समुत्पन्नकोपो भणति—कियन्मात्रो वराकः संघश्रीर्मया सह सुगतोऽपि वादं कर्तुमसमर्थ इत्युक्त्वा संघश्रियः पत्रं दत्त्वा महोत्सवेन वसतिकायां प्रविष्टः। संघश्रिया च पत्रदर्शनात् क्षुभितचित्तेन पत्रं न भिन्नम्। हिमशीतलराज्ञाकलङ्कदेवो महागौरवेणाकार्य नीत्वा तेन सह वादं कारितः। संघश्रिया चोत्तरप्रत्युत्तरैर्वादं कुर्वताकलङ्कदेववाग्विभवं दृष्ट्वा आत्मनोऽशक्तिं प्रति-

---

१. पृष्ट्वा

पाद्य ये केचन बौद्धपण्डिता देशान्तरे सन्ति ते सर्वेऽप्याकारिताः पूर्वसिद्धां च ताराभगवतीं रात्राववतार्योक्तम्—देवि, अहमनेन सह वादं कर्तुमसमर्थः। ततस्त्वमिमं वादं कृत्वा जयेत्युक्ते तयोक्तम्—एवं भवतु सभायामन्तःपटेनाहं कुम्भेऽवतीर्यानेन सह वादं करिष्यामीति। ततः प्रभाते राज्ञोऽग्रे संघश्रियोक्तम्—अहम [न्तः] पटेनाद्यप्रभृति कस्यापि मुखमपश्यन्विचित्रपदवाक्यविन्यासैरुपन्यासं करिष्यामीत्युक्त्वा काण्डपटं दत्त्वा मध्ये बुद्धप्रतिमायास्ताराभगवत्याश्च पूजां कृत्वा ताराभगवतीरिता। सा कुम्भेऽवतीर्य दिव्यध्वनिना क्षणोपन्यासं कर्तुं लग्ना। अकलङ्कदेवोऽपि तदुपन्यासमन्तःपटेन क्षणभङ्गं शतखण्डं कृत्वा निराकृत्यानेकान्तात्मकं[1] सर्वं तत्त्वमनवद्यस्वपरपक्षसाधनदूषणवाक्यैः समर्थयितुं लग्नः। एवं षण्मासेषु गतेष्वेकदाकलङ्कदेवस्य रात्रौ चिन्तोत्पन्ना। मानुषमात्रो मया सहैतावन्ति दिनानि वादं करोतीति किमत्र कारणमिति पुनः पुनश्चेतसि वितर्कयतश्चक्रेश्वरीदेव्या प्रत्यक्षीभूयोक्तम्—भो अकलङ्कदेव, न भवता सह मानुषमात्रस्यैतावन्ति दिनानि वादविधाने सामर्थ्यमस्ति। तारा भगवती इयं भवता सह एतावन्ति दिनानि वादं करोति। अतः प्रातरुपन्यस्तं वाक्यं व्याघुट्य पृच्छ्यतामेतस्याः पराजयो भवतीति। ततोऽकलङ्कदेवो देवतादर्शनात्संजातपरमोत्साहः सभामध्ये क्रीडार्थं मयानेन सहैतावन्ति दिनानि वादः कृतः। अद्य वादं जित्वा भोजनं कर्तव्यमिति प्रतिज्ञां कृत्वा वादं कर्तुं लग्नः। ताराभगवत्याश्चोपन्यासं कुर्वन्त्याः कीदृशं प्रागुक्तं तद्वाक्यं त्वयोपन्यस्तं कथयेत्युक्तमकलङ्कदेवेन। देवतावाण्याश्चैकत्वात्किंचिदप्युत्तरमब्रुवाणा प्रणश्य सा गता। ततोऽकलङ्कदेवेनोत्थाय काण्डपटं विदार्य ताराभगवत्यधिवासकुम्भं दृढपादप्रहारेण

---

१. नेकातात्म°

स्फोटयित्वा सुगतं च पादेन हत्वा मदनसुन्दर्याः समस्तभव्यानां चानन्दं जनयता गलगर्जं कृत्वा अयं वराकसंघश्रीः प्रथमदिन एव जितः। ताराभगवत्या च सह जैनमतज्ञानप्रभावोद्द्योतनार्थमेतावन्ति दिनानि वादः कृतः। इत्युक्त्वा श्लोकः पठितः।

नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं
नैरात्म्यं प्रतिपाद्य नश्यति जनः कारुण्यबुद्ध्या मया।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
बौद्धौघान् सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फालितः॥

एवंविधं च ज्ञानप्रभावं दृष्ट्वा हिमशीतलराजादयः सर्वेऽपि जिनधर्म एव रताः संपन्ना इति। एवमन्येनापि भव्येन ज्ञानोद्द्योतनादिकं कर्तव्यमिति॥

[३] अथ चारित्रोद्द्योतनाख्यानम्।

यथा—भरतक्षेत्रे वीतशोकपुरे राजा अनन्तवीर्यो, राज्ञी सीता, पुत्रः सनत्कुमारश्चतुर्थश्चक्रवर्ती षट्खण्डपृथ्वीं प्रसाध्य नवनिधानचतुर्दशरत्नाद्युपेतः परमविभूत्या राज्यं कुर्वन्नास्ते। एतस्मिन्प्रस्तावे सौधर्मेन्द्रो निजसभायां पुरुषस्य रूपगुणव्यावर्णनां कुर्वाणो देवैः पृष्टः—देव, भरतक्षेत्रे किं कस्यापि विशिष्टं रूपं विद्यते न वा। इन्द्रेणोक्तम्—सनत्कुमारचक्रवर्तिनो यादृशं रूपं तादृशं देवानामपि न संभवतीत्येतच्छ्रुत्वा मणिमालिरत्नचूलदेवौ तद्रूपं द्रष्टुमायातौ। दृष्टं च मज्जनके प्रविष्टस्य चक्रवर्तिनः सर्वावयवगतं सहजमत्यद्भुतं चेतश्चमत्कारकारि दिव्यरूपम्। तद्दृष्ट्वा शिरःकम्पं कुर्वद्भ्यामहो देवानामपीदृशं रूपं न संभवतीत्युक्त्वा सिंहद्वारे प्रकटीभूय प्रतीहारो भणितः—भो प्रतीहार, चक्रवर्तिनः कथय, भवदीयं रूपं द्रष्टुं स्वर्गाद्देवावागताविति। एतदाकर्ण्य शृङ्गारं कृत्वा सिंहासने उपविश्या-

कारितौ देवौ। ताभ्यामागत्य तद्रूपं दृष्ट्वा विषादः कृतः। हा कष्टं, यादृशं प्राक्तनं मज्जनके प्रच्छन्नाभ्यामावाभ्यां दृष्टं रूपं न तादृशमिदानींतनमतोऽशाश्वतं सर्वमिति तच्छ्रुत्वा मण्डनकारिणान्यैश्च सेवकैरुक्तम्–न किंचित्तदानींतनाद्रूपादिदानींतनस्य रूपस्य वैलक्षण्यमस्माकं प्रतिभाति। एतदाकर्ण्य तद्वैलक्षण्यप्रतीत्यर्थं जलभृतं कलशं राज्ञोऽग्रे तेषां दर्शयित्वा पश्चात्तान्बहिः प्रेषयित्वा चक्रवर्तिनः पश्यतस्तृणशलाकया बिन्दुमेकं ततोऽपनीय तेषां कलशो दर्शितः। कीदृशः प्रागिदानीं च कलश इति च ते पृष्टाः। ततस्तैरुक्तम्–तादृशः एवायं कलशो जलपरिपूर्णो मनागप्यनीदृशो न भवतीति। एतच्छ्रुत्वा देवाभ्यामुक्तम्–भो राजन्, यथा जलबिन्दुरपगतोऽप्येतैर्न लक्ष्यते तथा भवद्रूपं मनाग्गतमपि न लक्ष्यते इति। ततश्चक्रवर्ती वैराग्यं गत्वा देवकुमारपुत्राय राज्यं दत्त्वा त्रिगुप्तमुनिपार्श्वे तपो गृहीत्वा उग्रोग्रतपः कुर्वतः पञ्चप्रकारं चारित्रमनुतिष्ठतो विरुद्धाहारसेवनात्सर्वस्मिन् शरीरे कण्डूप्रभृतयोऽनेकरोगाः समुत्पन्नाः। तथाप्यसौ शरीरेऽतिनिस्स्पृहत्वाच्छरीरचिन्तामकुर्वन्नुत्तमं चारित्रमेवानुतिष्ठति। सौधर्मेन्द्रश्च निजसभायां पञ्चप्रकारं चारित्रं व्याचक्षाणो मदनकेतुदेवेन पृष्टः–देव, भरतक्षेत्रे उक्तप्रकारचारित्रस्यानुष्ठाता किं कोऽप्यस्ति न वेति। ततस्तेनोक्तम्–सनत्कुमारचक्रवर्ती षट्खण्डपृथ्वीं त्यक्त्वा शरीरादावतिनिस्स्पृहो भूत्वा तदनुष्ठाता तिष्ठतीति। एतदाकर्ण्य मदनकेतुदेवेन चात्रागत्य महाटव्यामनेकव्याध्यभिभूतशरीरं सनत्कुमारमुनिं दुर्धरमनेकप्रकारं चारित्रमनुतिष्ठन्तमालोक्य शरीरादौ निःस्पृहत्वगुणं तदीयं परीक्षितुं वैद्यरूपं धृत्वा समस्तव्याधीन् स्फेटयित्वा नीरोगं दिव्यं शरीरं करोमीति मुहुर्मुहुर्ब्रुवाणो भगवतोऽग्रे पुनःपुनरितस्ततो गच्छन् भगवता पृष्टः–कस्त्वम्, किमर्थं चात्र निर्जनप्रदेशे फूत्कारं करोषीति। ततस्तेनोक्तम्-वैद्योऽहं भवतां समस्तव्याधिमपनीय सुवर्णशलाकासदृशं शरीरं करोमीति।

भगवतोक्तम्—यदि त्वं व्याधिं स्फेटयसि तदा संसारव्याधिं मे स्फेटयेत्याकर्ण्य तेनोक्तम्—नाहं तत्स्फेटने समर्थः, तत्रभवन्त एव समर्थाः । अहं तु शरीरव्याधिमात्रस्फेटन एव समर्थ इति। भगवतोक्तम्—किमशुचौ निर्गुणे अशाश्वते शरीरे व्याधिस्फेटनेन। तत्स्फेटने हि न किंचिद्वैद्यान्वेषणेन निष्ठीवनसंपर्कमात्रेणापि तस्य स्फेटयितुं शक्यत्वादित्युक्त्वा निष्ठीवनसंस्पर्शमात्रेण बहुव्याधिमपनीय सुवर्णशलाकातुल्यो बाहुस्तस्य दर्शितस्ततस्तेन मायामुपसंहृत्य प्रणम्य चोक्तम्—भगवन्यादृशं त्वदीयं शरीरादौ परमनिस्स्पृहत्वेन विशिष्टचारित्रानुष्ठानं निजसभायां सौधर्मेन्द्रेण व्यावर्णितं तादृशमेवेदमिहागत्य मया दृष्टमतो धन्यस्त्वम्, मनुष्यजन्म तवैव सफलमिति प्रशस्य प्रणम्य च मदनकेतुदेवः स्वर्गं गतः। सनत्कुमारमुनिस्तु परमवैराग्यात्पञ्चविधपरमचारित्रानुष्ठानेन चारित्रस्योद्द्योतनादिकं कृत्वा घातिकर्मक्षयं विधाय केवलमुत्पाद्य क्रमेणाघातिकर्मक्षयं कृत्वा मोक्षं गत इति ॥

[४] समन्तभद्रस्वामिना च उभयोरुद्द्योतनं कृतमस्य कथा ।

दक्षिणकाञ्च्यां तर्कव्याकरणादिसमस्तशास्त्रव्याख्याता दुर्धरानेकानुष्ठानानुष्ठाता श्रीसमन्तभद्रस्वामी नाम महामुनिस्तीव्रतरदुःखप्रदप्रबलासद्वेद्यकर्मोदयात्समुत्पन्नभस्मकव्याधिना अहर्निशं संपीड्यमानश्चिन्तयति। अनेन व्याधिना पीड्यमाना वयं दर्शनस्योपकारं कर्तुमसमर्थाः। अतस्तदुपशमविधिः कश्चिदनुष्ठातव्यः। स च तदुपशमविधिः स्निग्धप्रवरप्रचुराहारोपयोगान्नान्यो भवितुमर्हतीति। तत्प्राप्तेश्चात्राभावात् यस्मिन्देशे यत्र स्थाने येन च लिङ्गेन तथाविधाहारप्राप्तिर्भवति तदाश्रयणीयमिति संप्रधार्य काञ्चीनगरीं

परित्यज्य उत्तरापथाभिमुखो गच्छन् पुण्ड्रनगरे समायातः। तत्र च वन्दकानां बृहद्विहारे महासत्रशालां दृष्ट्वा अत्र मदीयभस्मकव्याधेरुपशमो भविष्यतीति मत्वा वन्दकलिङ्गं धृतम्। तत्रापि तद्व्याध्युपशमहेतुभूतविशिष्टतराहारासंपत्तेस्ततो निर्गत्योत्तरापथाभिमुखो नानानगरग्रामान् पर्यटन् दशपुरनगरं प्राप्तः। तत्र च भगवतां महामठं विशिष्टदातृभिः परमभक्त्या प्रतिदिनं संपादितविशिष्टमृष्टाहारोपभोक्तृदिव्यानेकभगवल्लिङ्गं समाकुलं दृष्ट्वा वन्दकलिङ्गं परित्यज्य भगवल्लिङ्गं धृतम्। तत्रापि भस्मकव्याध्युपशमविधायकस्य प्रचुरतरविशिष्टाहारासंप्राप्तेस्ततोऽपि निर्गत्य नानादिग्देशनगरग्रामादीन्पर्यटन् वाणारस्यां गतः। तत्र च कुलघोषोपेतं[1] योगिलिङ्गं धृत्वा वाणारस्यां मध्ये पर्यटता शिवकोटिमहाराजाधिराजेन कारितं दिव्यशिवायतनं प्रचुरतराष्टादशभक्ष्यभोजननैवेद्यसमन्वितं दृष्ट्वा चिन्तितम्। अत्रास्मदीयभस्मकव्याधेरुपशमो भविष्यतीति। एतस्मिन्प्रस्तावे देवस्य पूजाविधानं कृत्वा नैवेद्यं बहिःक्षिप्यमाणं दृष्ट्वा हसित्वा भणितम्—किमत्र कस्यापि सामर्थ्यं नास्ति येन देवमत्रावतार्य राज्ञा परमभक्त्या संपादितं दिव्याहारं भोजयतीति। एतदाकर्ण्य तत्रत्यलोकैर्भणितम्—किं भवतो देवतामवतार्य भोजयितुं सामर्थ्यमस्ति येनेदं वदति भवान्। योगिना चोक्तमस्त्येव। ततस्तत्रत्यलोकै राज्ञः कथितम्—देव योगिनैकेन भवदीयदेवस्य पूजाविसर्जनसमये दिव्यं नैवेद्यं बहिः क्षिप्यमाणं दृष्ट्वा भणितम्—देवमहमत्रावतार्य एवंविधं दिव्याहारं भोजयामीति। एतदाकर्ण्य राजा संजातकौतुको दिव्यां रसवतीं दधिदुग्धघृतघटशतैः सहितां प्रचुरखण्डशर्कराइक्षुरसादिसमन्वितां गृहीत्वा समायातः। ततो योगी भणितः—भोजयतु भगवान् देवम्। एवं करोमीत्युक्त्वा तेन

१. कुलघोशे°

समस्तां रसवतीमन्तः प्रविश्य सर्वमन्तः परिशोध्य द्वारं दत्त्वा शीघ्रं तत्क्षणादेव भुक्त्वा द्वारमुद्घाट्य भणितम्—रसवतीभाजनानि बहिर्निःसार्यतामिति। ततो राज्ञो महत्याश्चर्ये संपन्ने प्रतिदिनमभिनवामधिकामधिकां विशिष्टां रसवतीं कारयित्वा प्रेषयत्यसौ। ततः षण्मासैर्भस्मकव्याधेः क्रमेणोपशमे संजाते प्रकृते आहारे स्थिते रसवती समस्ता तथैवोद्ध्रियते। ततस्तत्रत्यलोकैर्भणितम्। भो भो योगीन्द्र, किमिति रसवती तथैवोद्ध्रियते। तेनोक्तम्—भगवानिदानीं तृप्तस्तेन स्तोकमेव भुङ्क्ते। एतत्सर्वं तत्रत्यलोकैः राज्ञो निवेदितम्। राज्ञा च निर्माल्येन प्रच्छाद्य प्रनालप्रदेशे धूर्तो माणवको धृतः। तेन च स योगी द्वारं दत्त्वा स्वयमेव भुञ्जानो दृष्टः। कथितं च राज्ञः। देव, योगी न किंचिद्देवमवतार्य भोजयति किंतु द्वारं दत्त्वा स्वयमेव भुङ्क्ते। इति एतदाकर्ण्य राज्ञा रुष्टेन [भणितम्]—भो योगिन्, मृषावादी त्वम्। न किंचिद्देवमवतार्य भोजयसि। किंतु द्वारं दत्त्वा स्वयमेव भुङ्क्षे। देवस्य नमस्कारं च किमिति न करोषीति। एतदाकर्ण्य योगिनोक्तम्—मदीयनमस्कारमसौ सोढुं न शक्नोति। यो हि वीतरागोऽष्टादशदोषविवर्जितः स एव मदीयनमस्कारं सोढुं शक्नोति तेनाहमस्मै नमस्कारं न करोमि। यदि करोमि तदा स्फुटत्यसौ देवः। एतच्छ्रुत्वा राज्ञोक्तम्—यदि स्फुटत्यसौ तदा स्फुटतु कुरु नमस्कारम्। त्वदीयं सामर्थ्यं पश्यामः। ततो योगिनोक्तम्—प्रभाते सामर्थ्यमात्मीयं भवतां दर्शयिष्यामः। ततो राज्ञा एवमस्त्वित्युक्त्वा योगिनं देवगृहमध्ये प्रक्षिप्य शतगुणपरिपाट्या सुभटैः हस्तिघटादिभिश्च देवगृहे महता यत्नेन रक्षितः। योगिनश्च अतिरभसान्मया अपरिभाव्योक्तं न विद्मः किमप्यत्र भविष्यतीत्याकुलितान्तःकरणस्य चिन्तयतो रात्रिप्रहरद्वये शासनदेवता अम्बिका आसनकम्पात्समागत्य प्रत्यक्षीभूता। ततस्तयोक्तम्—भगवन्मा चित्तमाकुलितं कुरु। यत्त्वयोक्तं तत्सर्वं 'स्वयंभुवा भूत-

हितेन भूतले' इत्यादिकं चतुर्विंशतितीर्थंकरदेवानां स्तुतिं कुर्वतः तत्संस्फुरिष्यतीत्युक्त्वा भगवन्तं समुद्धीर्य अदृश्या संजाता। भगवांश्च देवतादर्शनात्संजातपरमसंतोषश्चतुर्विंशतितीर्थंकृतां स्तुतिं कृत्वा समुल्लसितचित्तो विकसितवदनकमलः परमानन्देन स्थितः। प्रभाते च राज्ञा कौतूहलेन समस्तलोकसहितेन आगत्य देवगृहद्वारमुद्घाटय योगी बहिराकारितः। आगच्छंश्च प्रहृष्टचित्तो विकसितवदनकमलः प्रभाभारसमन्वितो महाप्रतापवांश्च दृष्टः। ततो राज्ञा चिन्तितम्—योगिनो अद्यापूर्वा मूर्तिर्वर्तते। ध्रुवं निर्वाहयिष्यति आत्मीयां प्रतिज्ञामिति। ततो राज्ञा भणितम्—भो भो योगीन्द्र, कुरु देवस्य नमस्कारं, पश्यामस्त्वदीयं सामर्थ्यमिति। ततो भगवता 'स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले' इत्यादिका स्तुतिः कर्तुमारब्धा। तां च कुर्वतो अष्टमतीर्थंकरस्य श्रीचन्द्रप्रभदेवस्य 'तमस्तमोऽरेरिव रश्मिभिन्नम्' इति स्तुतिवचनमुच्चारयतः स्फुटितं लिङ्गं निर्गता चतुर्मुखप्रतिमा जयकारश्च महान्संपन्नः। ततो राज्ञः सकललोकानां च महत्याश्चर्ये संजाते राज्ञोक्तम्—भो योगिन्, अत्यद्भुतसामर्थ्यसमन्वितो अव्यक्तलिङ्गिकः कस्त्वमिति। ततो भगवतोक्तम्—

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः
पुण्ड्रोड्रे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मृष्टभोजी परिव्राट्।
वाणारस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुराङ्गस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥१॥
पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवसिन्धुठक्कविषये काञ्चीपुरे वैडुषे [वैदिशे]।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटैर्विद्योत्कटैः संकटं
वादार्थी विचराम्यहं नरपतेः शार्दूलवत्क्रीडितम् ॥२॥

इत्युक्त्वा कुलघोषवेषं परित्यज्य निर्ग्रन्थजैनलिङ्गं लघुपिच्छिकासमन्वितं प्रकाश्य एकान्तवादिनः सर्वाननेकान्तवादेन विनिर्जित्य

जिनशासनप्रभावना कृता। अत्र च कुदेवानां नमस्काराकरणात्सम्यग्दर्शनमुद्द्योतितम्। सकलैकान्तवादिनिराकरणात्सम्यग्ज्ञानमिति। एतन्महाश्चर्यं दृष्ट्वा शिवकोटिमहाराजस्य अन्येषां च तत्रत्यलोकानां जैनदर्शने महती श्रद्धा परमविवेकः [च] संपन्नः। चारित्रमोहक्षयोपशमविशेषवशाच्च परमवैराग्यसंपत्तौ राज्यं परित्यज्य तपो गृहीत्वा सकलश्रुतमवगाह्य लोहाचार्यविरचितां चतुरशीतिसहस्रसंख्यामाराधनां मन्दमत्यल्पायुःप्राण्याशयवशाद्ग्रन्थतः संक्षिप्य अर्थतोऽर्हे लिङ्गे इत्यादिचत्वारिंशत्सूत्रैः परिपूर्णामर्धतृतीयसहस्रसंख्यां मूलाराधनां कृतवानिति ॥

[७] अथ तपउद्द्योतकथा।

यथा जम्बूद्वीपेऽपरविदेहे गन्धमालिनीविषये वीतशोकपुरे राजा वैजयन्तो, राज्ञी भव्यश्रीः, पुत्रौ संजयन्तजयन्तौ। एकदा वैजयन्तः पट्टहस्तिनो विद्युत्पातान्मरणमालोक्य वैराग्यं गत्वा पुत्राभ्यां राज्यं ददानस्ताभ्यां भणितः—तात, यदीदं सुन्दरं भवति तदा त्वया किमिति त्यज्यते। ततस्त्याज्यस्य राज्यस्यावयोर्विधाननिवृत्तिरस्तीत्युक्ते संजयन्तपुत्राय वैजयन्तनाम्ने राज्यं दत्त्वा त्रिभिरपि तपो गृहीतम्। पित्रा च विशिष्टं तपः कुर्वता घातिकर्मक्षयं कृत्वा केवलमुत्पादितम्। देवागमने जाते धरणेन्द्ररूपं विभूतिं च पश्यता जयन्तमुनिना निदानबन्धः कृतः। ईदृशं रूपं विभूतिश्च तपोमाहात्म्यान्मे भूयादिति। ततः कतिपयदिनैर्निदानवशाद्धरणेन्द्रो जातः। संजयन्तमुनिश्च दुर्धरतपसा पक्षमासोपवासादिना क्षुत्पिपासादिपरीषहैरातापनादिकायक्लेशेन क्षीणशरीरो महाटव्यामेकदा सूर्यप्रतिमायोगेन स्थितः। एतस्मिन्प्रस्तावे विद्युद्दंष्ट्रनाम्नो विद्याधरस्य मुनेरुपरि गच्छतो विमानं स्खलितम्। ततस्तेन विमानस्खलने किं

कारणमिति संचिन्त्याधो अवलोकयता मुनिर्दृष्टः। तद्दर्शनात्संजातकोपेन मुनेरनेकप्रकार-उपसर्गे कृतेऽपि मुनिर्ध्यानान्न चलितः। ततो अतीव रुष्टेन विद्यासमर्थेनोच्चाल्य भरतक्षेत्रपूर्वदिग्विभागे सिंहवती करवती चामीकरवती कुसुमवती चन्द्रवेगा चेति पञ्चनदीसंगमे प्रक्षिप्तः। तद्देशवर्तिनश्च लोकाः सर्वेऽप्याकार्य भणिताः। अयं च राक्षसो भवतो भक्षयितुमायात इति मत्वा मार्यताम्। ततस्तैर्मिलित्वा दण्डपाषाणादिभिः कुट्यमानोऽपि शत्रुमित्रसमचित्तेन दुःसहोपसर्गं जित्वा घातिकर्मक्षयं च कृत्वा केवलमुत्पाद्य शेषकर्मक्षयं च कृत्वा मोक्षं गतः। निर्वाणपूजार्थं देवागमने जाते यो जयन्तमुनिर्धरणेन्द्रो जातस्तेनागतेन निजबन्धुशरीरं दृष्ट्वा मदीयबन्धोरेतैरुपसर्गः कृत इति ज्ञात्वा कुपितेन सर्वे लोका नागपाशैर्बद्धाः। तैश्चोक्तम्—देव वयं न किंचिज्जानीम एतत्सर्वं विद्युद्दंष्ट्रविजृम्भितमित्याकर्ण्य कुपितो नागपाशेन तं बद्ध्वा समुद्रे निक्षिप्य मारयन् धरणेन्द्रोऽपि दिवाकरदेवनाम्ना महर्द्धिकदेवेन भणितः—किमनेन वराकेण मारितेन। चत्वारि भवान्तराणि। पूर्ववैरविरोधादनेनायं मारितः। धरणेन्द्रेणोक्तम्–पूर्ववैरविरोधमनयोर्मे कथय। ततो दिवाकरदेवः प्राह—जम्बूद्वीपभरतक्षेत्रे सिंहपुरनगरे राजा सिंहसेनो, राज्ञी रामदत्ता, मन्त्री श्रीभूतिः, सुघोषश्च। पद्मखण्डनगरे श्रेष्ठी सुमित्रो, भार्या सुमित्रा, पुत्रः [समुद्रदत्तः।] समुद्रदत्तो वाणिज्येन सिंहपुरे गतोऽनर्घ्यपञ्चरत्नानि श्रीभूतिमन्त्रिणः पार्श्वे धृत्वा परतीरं गतः। आगच्छतः स्फुटिते प्रोहणे निर्धनेन तेनागत्य रत्नानि श्रीभूतिर्याचितो रत्नलोभाद्ग्रहिलोऽयमित्युक्त्वा स्थितः। यत्कुर्वतः षण्मासेषु गतेषु रामदत्ताराज्ञ्या द्यूते श्रीभूतेर्मुद्रिकायज्ञोपवीते जिते। ततस्ते एवं साभिज्ञाने कृत्वा श्रीभूतिभार्यायाः श्रीदत्तायाः पार्श्वादानीय बहुरत्नमध्ये प्रक्षिप्य समुद्रदत्तस्य दर्शितानि। तेन चात्मीयेषु परिज्ञाय गृहीतेषु चोरनिग्रहेण श्रीभूतिर्निगृहीतो, मृत्वा भाण्डागारे

सर्पो जातः। समुद्रदत्तश्च सुधर्माचार्यपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः। सुमित्रा च तन्माता तदीयार्तेन मृत्वा व्याघ्री जाता। तया च स मुनिर्भक्षितो मृत्वा सिंहसेनराज्ञः सिंहचन्द्रनामा पुत्रो जातः। सिंहसेनराजा च भाण्डागारं द्रष्टुमागतः श्रीभूतिचरसर्पेण भक्षितो मृत्वा शल्लकीवने हस्ती जातस्तेन सुघोषमन्त्रिणा च प्रभुमरणात्संजातकोपेन मन्त्राज्ञासामर्थ्यात्सर्पाकृष्टिं कृत्वा सर्वे सर्पा भणिताः। अग्निकुण्डे प्रवेशं कृत्वा अकृतापराधा गच्छन्तु। तं कृत्वा येऽकृतापराधास्ते सर्वे गताः। कृतापराधे श्रीभूतिचरसर्पे स्थिते ततः सुघोषमन्त्रिणोक्तम्—विषं मुच्यतामग्निप्रवेशो वा क्रियतामिति। अगन्धनकुलोद्भूतोऽहं न विषं मुञ्चामीति तथा अग्निप्रवेशः कृतो मृत्वा शल्लकीवने कुर्कुटसर्पो जातः। रामदत्तया राज्ञ्या च निजपतिवियोगात्कनकश्रीक्षान्तिकापार्श्वे तपो गृहीतम्। सिंहचन्द्रेणापि निजपितृदुःखात्पूर्णचन्द्रस्य लघुभ्रातुः राज्यं दत्त्वा सुव्रतमुनेः पार्श्वे तपो गृहीतं च तपोमाहात्म्यान्मनःपर्ययज्ञानी चारणश्च जातः। रामदत्तया च तं तथाविधं मुनिं दृष्ट्वा प्रणम्य चोक्तम्—भगवन्मदीय एव कुक्षिर्धन्यो येन त्वं धृतोऽसीत्युक्त्वा मुने, पूर्णचन्द्रस्त्वदीयो भ्राता कदा धर्मं ग्रहीष्यतीति। भगवानाह—पश्य मातः संसारवैचित्र्यम्। सिंहसेनो राजा सर्पदष्टो मृत्वा शल्लकीवने हस्ती जातो मां दृष्ट्वा स मारयितुं धावन्मया भणितः। भो सिंहसेनराजन्नहं सिंहचन्द्रः पूर्वं तव प्राणवल्लभः पुत्रोऽभूवमिदानीं मारयसि लग्न इत्युक्ते जातिस्मरो जातो मम पादमूले प्रणम्याश्रुपातं कुर्वाणः स्थितः। केसरवतीनदीतीरे मया च विशिष्टं धर्मश्रवणं कृत्वा सम्यक्त्वं ग्राहितोऽणुव्रतानि च दत्तानि प्रतिपालयन् प्राशुकमाहारं पानीयं च गृह्णन्नवमोदर्यादिना कृशशरीरः केसरवतीनदीतीरे कर्दमे निमग्नः श्रीभूतिचरकुक्कुटसर्पेण तत्कुम्भस्थलारोहणं कृत्वा स खाद्यमानः संन्यासं कृत्वा पञ्चनमस्कारान् स्मरन्मृतः सहस्रारे श्रीधरनामा

देवो जातः । कुर्कुटसर्पश्च पङ्कप्रभानरके गतः। हस्तिनो दन्तौ मुक्ताफलानि च सार्थवाहधनमित्रस्य वनराजभिल्लेन दत्तानि, तेन पूर्णचन्द्रराजस्य नीत्वा समर्पितानि। तेन दन्ताभ्यां निजपल्यङ्कस्य पादाः कारिताः मुक्ताफलैर्निजराज्ञीहारः कारितः। एवंविधां संसारस्थितिं मातः पूर्णचन्द्रस्य गत्वा कथय येनासौ जिनधर्मं गृह्णातीत्युक्ते निजनाथस्य दुःखपरंपरां श्रुत्वा गह्वरितहृदया गद्गदवचना अश्रुपातं कुर्वती निजपुत्रपार्श्वे गता। पूर्णचन्द्रस्य निजमातरं दृष्ट्वा पल्यङ्कादुत्थाय प्रणामं कुर्वतो मात्रा सर्वं कथितम्— यथा त्वत्पिता सर्पदष्टो मृत्वा हस्ती जातः। सर्पोऽपि मृत्वा कुर्कुटसर्पो जातः। तेन च स हस्ती कर्दमे निमग्नः पुनर्मारितः। तदीयदन्तौ मुक्ताफलानि चानीय धनमित्रश्रेष्ठिना ते समर्पितानि। एते पल्यङ्कपादास्तदीयदन्तमयाः । अयं च हारस्तदीयमुक्ताफलमय इत्यकाण्ड्योत्पन्नदुःखसंजातशोकः पल्यङ्कपादमालिङ्ग्य फूत्कारं कृत्वा शिरो विहन्य तेन समस्तान्तःपुरेण परिजनेन च रोदनं कृतम्। पुष्पधूपैः पूजां कृत्वा मुक्ताफलानां पल्यङ्कपादानां च संस्कारः कृतः। पूर्णचन्द्रोऽप्युत्पन्नवैराग्यो विशिष्टं सागारधर्मं प्रतिपाल्य महाशुक्रे देवो जातः। रामदत्तार्यिकापि तत्रैव देवो जातः। सिंहचन्द्रोऽप्युग्रोग्रं तपः कृत्वा उपरिमग्रैवेयके देवो जातः। जम्बूद्वीपे भरते विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां धरणितिलकपुरेऽतिवेगो राजा, राज्ञी सुलक्ष्मणा, रामदत्ता चरो देवस्तयोः पुत्री श्रीधरानामा जाता। अलकानगर्यां विद्याधराधिपतेरादर्शकनाम्नः सा दत्ता। पूर्णचन्द्रः स्वर्गादवतीर्य श्रीधरायाः पुत्री यशोधरा जाता। सा सूर्याभपुरे सुरावर्तराजस्य दत्ता। सिंहसेनराजापि गजो भूत्वा यो देवो जातः स तयोः पुत्रो रश्मिवेगनामा जातः। कतिपयदिनैस्तस्मै राज्यं दत्त्वा सुरावर्तराजो मुनिर्जातो यशोधराप्यार्यिका जाता श्रीधरापि पुत्रीस्नेहादार्यिका जाता। रश्मिवेगोऽप्येकदा सिद्धकूटचैत्यालये वन्दनाभक्त्यर्थं गतस्तत्र

हरिचन्द्रभट्टारकपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः। स एकदा वनगुहायां कायोत्सर्गेण स्थितो दुर्धरतपोऽनुष्ठानेनातीव कृशशरीरो यशोधरा-श्रीधरार्यिकाभ्यां दृष्टः। पुत्रदौहित्रस्नेहाद्भक्तिवशाच्च तत्समीपे ते उपविष्टे। एतस्मिन्प्रस्तावे यः कुक्कुटसर्पो मृत्वा नरके गतः स तत्र वने महानजगरो जातो विषाग्निना काननं प्रज्वालयन्तं रौद्रं फूत्कारं मुञ्चन्तं गुहाभिमुखमागच्छन्तं तं दृष्ट्वा संन्यासं गृहीत्वा ते अपि कायोत्सर्गेण स्थिते। तेन चागत्य मुनिस्ते च भक्षिते च मृत्वा कापिष्ठस्वर्गे रश्मिवेगो मुनिरादित्यप्रभो नाम देवो जातः। श्रीधरा चन्द्रचूलदेवो यशोधरा रत्नचूलदेवस्तत्रैव जातः। अजगरश्चतुर्थ-नरके गतः। चक्रपुरे राजा अपराजितो, राज्ञी सुन्दरी, सिंहचन्द्र उपरिमग्रैवेयकादवतीर्य तयोः पुत्रश्चक्रायुधनामा जातः। तस्मै राज्यं दत्त्वा अपराजितो मुनिर्जातः। तस्य राज्यं कुर्वतश्चित्रमाला राज्ञी कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य आदित्यप्रभदेवो वज्रायुधनामा पुत्रो जातः। भूतिलकनगरे राजा आदित्यप्रभो, राज्ञी प्रियकारिणी, कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य चन्द्रचूलदेवो रत्नमाला पुत्री तयोर्जाता। वज्रायुधेन परिणीता। रत्नचूलदेवः कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य रत्नायुध-नामा तस्याः पुत्रो जातः। तस्मै राज्यं दत्त्वा वज्रायुधोऽपि निज-पितुरपराजितस्य पादमूले मुनिर्जातः। रत्नायुधोऽपि कतिपयदिनै-र्मुनिर्जातो रत्नमालया पुत्रस्नेहात्तपो गृहीतम्। तपः कृत्वा माता पुत्रश्चाच्युते देवो जातः [देवौ जातौ]। अजगरः पङ्कप्रभानरका-न्निःसृत्य दारुणनाम्नो भिल्लस्य मृगी-भार्यायामतिदारुणनामा पुत्रो जातः। तेन च प्रियङ्गुपर्वते कायोत्सर्गेण स्थितो बाणेन विद्धो वज्रायुधमुनिर्मारितः सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नः। अतिदारुणभिल्लोऽपि मृत्वा सप्तमनरकं गतः। धातकीषण्डे पूर्वविदेहे गन्धिलाविषये अवध्यानगर्यां राजा अर्हद्दासो, राज्ञी जिनदत्ता सुव्रता च, रत्नमाल-देवोऽच्युतादागत्य सुव्रतायां विजयो नामा बलभद्रः पुत्रो जातः।

रत्नायुधदेवोऽप्यच्युतादागत्य जिनदत्तायां विभीषणो नाम वासुदेवः पुत्रो जातः । विभीषणः शर्कराप्रभायां गतः । विजयो लान्तवेऽहमादित्याभो देवो जातः । जम्बूद्वीपे ऐरावतेऽवध्यायां राजा श्रीवर्मा, राज्ञी सीमा, विभीषणस्तयोर्लक्ष्मीधामनामा पुत्रो जातो मया संबोधितः । तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गे देवो जातः । वज्रायुधः सर्वार्थसिद्धेश्च्युत्वा संजयन्तमुनिर्जातः । ब्रह्मस्वर्गाच्च्युत्वा जयन्तमुनिर्निदानाद्धरणेन्द्रो जातः । अतिदारुणभिल्लोऽपि नरकान्निःसृत्य बहुदुःखानि सहमानस्तिर्यग्योनौ परिभ्रम्य ऐरावतक्षेत्रे वेगवतीनदीतीरे भूतरमणकानने गोश्रृङ्गतापसेन शङ्खिनीतापस्यां हरिणश्रृङ्गनामा पुत्रो जातः । पञ्चाग्निसाधनादिकं कृत्वा मृत्वा नभस्तलवल्लभपुरे राजा वज्रदंष्ट्रो राज्ञी विद्युत्प्रभा तयोः पुत्रो विद्युद्दंष्ट्रनामा जातः । तेन पूर्ववैरविरोधात्कृतोपसर्गः संजयन्तमुनिस्तपस उद्द्योतनादिकं कृत्वा मोक्षं गतः । एवंविधां संसारस्थितिं ज्ञात्वास्योपरि कोपं परित्यज्य नागपाशबन्धनं मुच्यताम् । एतदाकर्ण्य धरणेन्द्रेणोक्तम्—भो आदित्याभ, यद्यपि मुच्यते लग्नोऽयं तथाप्यस्य महामुनेरुपसर्गकारिणो दर्पशातनः शापो दीयते । अस्य कुले विद्यासिद्धिः पुरुषाणां माभूत्, स्त्रीणां तु संजयन्तप्रतिमाग्रे आराधनं कुर्वाणानां स्यादिति ॥

[६] सम्यक्त्वमध्ये प्रथम-अङ्गस्य कथा ।

इहैव भरतक्षेत्रे भूमितिलकनगरे नरपालो नाम राजा, गुणमाला महादेवी, श्रेष्ठी सुनन्दो, भार्या सुनन्दा । अनयोः सप्तमः पुत्रो धन्वन्तरिः, तथा तस्यैव पुरोहितः सोमशर्मा, भार्या अग्निला, तयोः सप्तमः पुत्रो विश्वानुलोमनामा । तौ द्वावपि बाल्यवयसौ सप्तव्यसनाभिभूतौ बहुशः परद्रव्यं हृतवन्तौ । अतो अन्यदा राज्ञा निज-

देशान्निस्सारितौ। ततः कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे वीरमतिवीरनरेश्वरराज्ये कृतवन्तौ स्थितिम्। एकदापराह्णवेलायां नीलगिरिनाम्नो राजकुञ्जराद् निरङ्कुशात् सम्मुखमागच्छतो व्यावृत्य मण्डितजिनालये प्रविष्टौ। तत्र श्रीधर्माचार्यं दूरतो विलोक्य सूरिमभिमुखं गच्छन्तं धन्वन्तरिं निवार्य पटखण्डगाढपिहितकर्णकुहरो विश्वानुलोमो निद्रामकार्षीत्। धन्वन्तरिस्तु सूरिं धर्मो[र्ममु]पदिशन्तमाकर्ण्योपासकलोकमवग्रहान् गृह्णन्तमवलोक्य चोपशान्ताशुभसंचयः श्रीधर्माचार्यचरणाम्भोजयुगं नमस्कृत्य नियममग्रहीत्। खलतिविलोकनात् प्रातर्मया भोक्तव्यमिति व्रतेन कुम्भकारात्प्राप्तो निधिम्। तथा पायसपूर्णपिष्टरथपरिहारात् विगतविषमविषानुषङ्गितमरणसंनिधिः। अकलिताभिधानानोकहफलाकवलनात् वञ्चितफलोपजनितक्षयसंगतिः। रभसान्न किमपि कार्यमाचर्यमिति स्वीकृतनियमस्यैकदा नटनर्तनावलोकनादर्धरात्रे निजगृहमनुसृत्य मन्दंमन्दमुद्घाटितकपाटसंपुटः निजजनन्या पुरुषवेषया गाढाश्लिष्टां मानसेष्टां भार्यां निद्रावशामवलोक्य झटिति साञ्जसम् उत्खातखड्गः स्वचेतसि यावदनुचिन्तयति प्रहारय, खड्गं पुनः पुनरुत्क्षिपति तावन्निशितासिधाराविकर्तितसिक्यस्थलीपतनादुन्निद्रयोस्तयोः स्वरं ययौ। धन्वन्तरिरिति जातवैराग्यः व्रतातिशयं प्रशंसन् यद्यहमिमं नियममद्य नाकार्षीदि[र्षमि]मां जननीं प्रियकलत्रं च निहत्य महापापायशसां निधिः स्यामिति संपन्ननिर्वेदो ज्ञातिजनं यथायथमवस्थाप्य श्रीधर्माचार्यादेशात् धरणिभूषणपर्वतोपकण्ठे वरधर्माचार्यपादमूले दीक्षां गृहीत्वा तापनयोगस्थितो यावदास्ते स्म तावत्परिजनात्परिज्ञातप्रव्रजनवृत्तान्तो मन्मित्रस्य धन्वन्तरेर्या गतिः सा ममापीति प्रतिज्ञापरो विश्वानुलोमः तत्रागत्य भो वयस्य चिरान्मिलितोऽसि किमिति न मां गाढमाश्लिष्यसि किमिति नातिकोमलया गिरालापयसीत्यादिसस्नेहमाभाष्य निजशरीरेऽपि निःस्पृहे धन्वन्तरि-

यतीश्वरे प्रकुप्य सहस्रजटस्य जटिनोऽन्तिके शतजटाभिधानो विश्वानुलोमो बभूव। धन्वन्तरिरप्यातापनयोगान्ते तस्य समीपमुपगत्य विश्वानुलोमो जिनधर्ममजानन् किमिति दुश्चरित्रे प्रवृत्तः संजातः स्वमितो विमुच्येमं दुर्मार्गं सहैव जिनोक्तं सन्मार्गमाश्रयाव इति बहुशः प्रतिबोध्यमानं कोपावेशाद्विहितमूकभावं परिहृत्य सद्गुरूपदिष्टरत्नत्रयमाराध्य कालेनाच्युतस्वर्गेऽमितप्रभो नाम महर्द्धिकदेवोऽवातरत्। विश्वानुलोमोऽपि जीवितान्ते विपद्य व्यन्तरेषु विद्युत्प्रभाभिधो वाहनदेवो बभूव। अथैकदा नन्दीश्वरयात्रां कृत्वा गच्छतीन्द्रेऽमितप्रभो भवान्तरस्नेहोत्कण्ठितमना विद्युत्प्रभमवलोक्यावधिबोधं प्रयुज्यावगतवृत्तान्तो मित्र किं स्मरसि जन्मान्तरोदन्तमित्यवोचत्। वयस्य अहं स्मरामि, परं मया स्वल्पं तपः कृतं मन्मतेऽपि विशिष्टानुष्ठानं तन्निष्ठा जमदग्न्यादयः स्वतोऽप्यधिकाः सन्ति सम्यक्त्वातीचारा इत्यादिशङ्कादयो हि सम्यक्त्वस्य दोषाः निश्शङ्कितत्वादयस्तु गुणाः ॥.

तत्र शङ्कितनिश्शङ्कितयोरेकैव कथा—धन्वन्तरिविश्वानुलोमौ स्वकृतकर्मवशादमितप्रभविद्युत्प्रभौ देवौ संजातौ। तौ चान्योन्यस्य धर्मपरीक्षणार्थमत्रायातौ। ततो जमदग्निस्ताभ्यां तपसश्चालितः। मगधदेशे राजगृहनगरे जिनदत्तश्रेष्ठी स्वीकृतोपवासः कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ श्मशाने कायोत्सर्गेण स्थितो दृष्टः। ततोऽमितप्रभदेवेनोक्तम्-दूरे तिष्ठन्तु मदीया मुनयोऽमुं गृहस्थं ध्यानाच्चालयेति। ततो विद्युत्प्रभदेवेनानेकधा कृतोपसर्गोऽपि न चलितो ध्यानात्ततः प्रभाते मायामुपसंहृत्य प्रशस्य च आकाशगामिनी विद्या दत्ता। तवेयं सिद्धा, अन्यस्य च नमस्कारविधिना सिध्यतीति। ततः स सानन्देनाकृत्रिमचैत्यालये सदैव पूजाकरणार्थं गमनं करोति। सोमदत्तपुष्पबटुकेन चैकदा जिनदत्तश्रेष्ठी पृष्टः—क्व भवान् प्रातरेवोत्थाय व्रजतीति। तेन चोक्तमकृत्रिमचैत्यालयं वन्दनाभक्तिं कर्तुं व्रजामि,

मम इत्थं विद्यालाभः संजात इति कथितम् । तेनोक्तम्-मम विद्यां देहि, येन त्वया सह पुष्पादिकं गृहीत्वा वन्दनाभक्तिं करोमि । ततः श्रेष्ठिना तस्योपदेशो दत्तः । तेन च कृष्णचतुर्दश्यां श्मशानवटवृक्ष-पूर्वशाखायामष्टोत्तरशतपादं च दर्भसिक्यं बन्धयित्वा तस्य तले तीक्ष्णसर्वशस्त्राण्यूर्ध्वमुखानि धृत्वा गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा सिक्यमध्ये प्रविश्य षष्ठोपवासेन पञ्चनमस्कारानुच्चार्य क्षुरिकयैकैकपादं छिन्द-ताधो जाज्वल्यमानप्रहरणसमूहमालोक्य भीतेन संचिन्तितम् । यदि श्रेष्ठिनो वचनमसत्यं भवति तदा मरणं भवतीति शङ्कितमनाः वारंवारं चटनोत्तरणं करोति । एतस्मिन्प्रस्तावे प्रजापालराज्ञः कनकाराज्ञीहारं दृष्ट्वा अञ्जनसुन्दरीविलासिन्या रात्रावागतो-ऽञ्जनचोरो भणितो—यदि मे कनकाया हारं ददासि तदा भर्ता त्वं नान्यथेति । ततो गत्वा रात्रौ हारं चोरयित्वा अञ्जनचोरोऽप्या-गच्छन् हारोद्द्योतेन ज्ञात्वा अङ्गरक्षैः कोट्टपालैश्च ध्रियमाणो हारं त्यक्त्वा प्रणश्य गतो वटतले बटुकं दृष्ट्वा पृष्ट्वा तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा निःशङ्कितेन तेन विधिना एकवारेण सर्वं शिक्यं छिन्नं शस्त्रोपरि पतितः । सिद्धया विद्यया भणितमादेशं देहीति । तेनोक्तम्—जिनदत्त-श्रेष्ठिपार्श्वे मां नयेति । ततः सुदर्शनमेरुचैत्यालये जिनदत्तस्याग्रे नीत्वा धृतः पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा तेन भणितम्-यथेयं सिद्धा विद्या भवदुपदेशेन तथा परलोकसिद्धावप्युपदेशं देहीति । ततश्चारणमुनि-संनिधौ तपो गृहीत्वा कैलासे केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतः ॥

आकाङ्क्षिताख्यानकं यथा पिण्याकगन्धस्य, तत्त्वग्रे कथ-यिष्यते ॥

[७] निःकाङ्क्षिताख्यानकथा ।

अङ्गदेशे चम्पानगर्यां राजा वसुवर्धनो, राज्ञी लक्ष्मीमती, श्रेष्ठी प्रियदत्तो, भार्या अङ्गवती, पुत्री अनन्तमती । नन्दीश्वराष्टम्यां

श्रेष्ठिना धर्मकीर्त्याचार्यपादमूले अष्टदिनानि ब्रह्मचर्यं गृहीतं क्रीडया अनन्तमती च ग्राहिता। अन्यदा संप्रदानकाले अनन्तमत्योक्तम्-तात मम त्वया ब्रह्मचर्यं दापितं तत्किं विवाहेन। श्रेष्ठिनोक्तम्-क्रीडया मया ते ब्रह्मचर्यं दापितम्। ननु तात धर्मे व्रते च का क्रीडा। ननु पुत्रि नन्दीश्वराष्टदिनान्येव व्रतं तदा ते दत्तम्। न तथा भट्टारकैरप्यविवक्षितत्वादिति, इह जन्मनि परिणयने मम निवृत्ति-रस्तीत्युक्त्वा सकलकलाविज्ञानशिक्षां कुर्वती स्थिता, यौवनभरे चैत्रे निजोद्याने आन्दोलयन्ती दक्षिणश्रेणिकिन्नरपुरविद्याधरराजेन कुण्डल-मण्डितनाम्ना सुकेशीनिजभार्यया सह गगनतले गच्छता दृष्टा। किमनया विना जीवितेनेति संचिन्त्य भार्यां गृहे धृत्वा शीघ्रमागत्य विलपन्ती तेन सा नीता। आकाशे आगच्छन्तीं भार्यां दृष्ट्वा भीतेन पर्णलघ्व्या विद्यायाः समर्प्य महाटव्यां मुक्ता। तत्र च तां रुदन्ती-मालोक्य भीमनाम्ना भिल्लराजेन निजपल्लिकां नीत्वा प्रधानराज्ञी-पदं तव ददामि मामिच्छेति भणित्वा रात्रौ अनिच्छन्ती भोक्तुमा-रब्धा। व्रतमाहात्म्येन वनदेवतया तस्य ताडनाद्युपसर्गः कृतः। देवता काचिदियमिति भीतेन तेन आवासितसार्थस्य पुष्पकरनाम्नः सार्थ-वाहस्य समर्पिता। सार्थवाहो लोभं दर्शयित्वा परिणेतुकामो न वाञ्छितः। तेन चानीय अयोध्यायां कामसेनाकुट्टिन्याः समर्पिता। कथमपि वेश्या न जाता। ततः सिंहराजस्य दर्शिता। तेनैव च रात्रौ हठात्सेवितुमारब्धा। नगरदेवतया तद्व्रतमाहात्म्येन तस्योप-सर्गः कृतः। तेन च भीतेन गृहान्निस्सारिता रुदन्ती सखेदा कमल-श्रीक्षान्तिकया श्राविकेति मत्वा अतिगौरवेण धृता। अथानन्तमती-शोकविस्मरणार्थं प्रियदत्तश्रेष्ठी बहुसहायो वन्दनाभक्तिं कुर्वन्नयो-ध्यायां गतो निजश्यालकजिनदत्तश्रेष्ठिनो गृहे संध्यासमये प्रविष्टः। रात्रौ पुत्रीहरणवार्तां कथितवान्। प्रभाते तस्मिन्वन्दनाभक्तिं गते अतिगौरवितः प्राघूर्णकनिमित्तं रसवतीं कर्तुं गृहे च चतुष्कं दातुं

कुशला कमलश्रीक्षान्तिकाया श्राविका जिनदत्तभार्यया आकारिता। सा च सर्वं कृत्वा वसतिकां गता। वन्दनाभक्तिं कृत्वा आगतेन प्रियदत्तश्रेष्ठिना चतुष्कमवलोक्य अनन्तमतीं स्मृत्वा गह्वरितहृदयेन गद्गदवचनेन अश्रुपातं कुर्वता भणितम्—यया गृहमण्डनं कृतं तां मे दर्शयेति। ततः सा ततो नीता, मेलापको जातो, जिनदत्तश्रेष्ठिना महोत्सवः कृतः। अनन्तमत्या चोक्तम्—तात, इदानीं मे तपो दापय, दृष्टमेकस्मिन्नेव भवे संसारवैचित्र्यमिति। ततः कमलश्रीक्षान्तिकापार्श्वे तपो गृहीत्वा बहुना कालेन विधिना मृत्वा सहस्रारे देवो जातः॥

विचिकित्साख्यानं यथा लक्ष्मीमत्यास्तथाग्रे कथयिष्यते॥

[८] निर्विचिकित्साख्यानकम्।

यथा—सौधर्मेन्द्रेण निजसभायां सम्यक्त्वगुणं वर्णयता भरते कच्छदेशे रौरकपुरे उद्दायनमहाराजस्य निर्विचिकित्सागुणः प्रशंसितः। तं परीक्षितुं वासवदेव उदुम्बरकुथितं मुनिरूपं विकृत्य तस्यैव हस्तेन विधिना स्थित्वा सर्वमाहारं जलं च मायया भक्षित्वा अतिदुर्गन्धं बहुवमनं कृतवान्। दुर्गन्धभयान्नष्टे परिजने प्रतीच्छतो राज्ञस्तद्देव्याश्च प्रभावत्या उपरि छर्दितम्। हा हा विरुद्ध आहारो दत्तो मयेत्यात्मानं निन्दितः। तं च प्रक्षालयतो मायां परिहृत्य प्रकटीभूय पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा प्रशस्य च स्वर्गं गतः। उद्दायनमहाराजो वर्धमानस्वामिपादमूले तपो गृहीत्वा मुक्तिं गतः। प्रभावती तपसा ब्रह्मस्वर्गे देवो बभूव॥

मूढदृष्ट्याख्यानकं यथा ब्रह्मदत्तस्य द्वादशचक्रवर्तिनः। तच्चाग्रे कथयिष्यते॥

[९] अमूढदृष्ट्याख्यानकम् ।

यथा—विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां मेघकूटनगरे राजा चन्द्रप्रभः, चन्द्रशेखरपुत्राय राज्यं दत्त्वा परोपकारार्थं वन्दनाभक्त्यर्थं च कियती विद्या दधानो दक्षिणमथुरायां मुनिं गत्वा गुप्ताचार्यसमीपे क्षुल्लको जातः। तेनैकदा वन्दनाभक्त्यर्थमुत्तरमथुरायां चलितेन गुप्ताचार्यः पृष्टः। किं कस्य कथ्यते। भगवतोक्तम्-सुव्रतमुनेर्वन्दना, वरुणराज-महाराज्ञ्या रेवत्या आशीर्वादश्च कथनीयः, त्रिःपृष्टेनापि तेन एत-देवोक्तम्। ततः क्षुल्लकेनोक्तम्—भव्यसेनाचार्यस्यैकादशाङ्गधारिणो-ऽन्येषां च नामापि भगवान्न गृह्णाति। तत्र किंचित्कारणं भविष्यतीति संप्रधार्य तत्र गत्वा सुव्रतमुनेर्भट्टारकाय वन्दनां कथयित्वा, तदीयं च विशिष्टं वात्सल्यं दृष्ट्वा अभव्यसेनवसतिकां गतस्तत्र गतस्य भव्यसेनेन संभाषणमपि न कृतम्। कुण्डिकां गृहीत्वा भव्यसेनेन सह बहिर्भूमिं गत्वा विकुर्वणया हरितकोमलतृणाङ्कुरच्छन्नो मार्गोऽग्रे दर्शितः। तं दृष्ट्वा आगमे किलैते जीवाः कथ्यन्ते इति भणित्वा तृणोपरि गतः। शौचसमये कुण्डिकाजलं शोषयित्वा क्षुल्लकेनोक्तम्—भगवन्, कुण्डिकायां जलं नास्ति तथा विकृतिश्च क्वापि न दृश्यते। अतोऽत्र स्वच्छसरोवरे प्रशस्तमृत्तिकया शौचं कुरु। तत्रापि तथा भणित्वा शौचं कृतवान्। ततस्तं मिथ्यादृष्टिं ज्ञात्वा भव्यसेनस्या-भव्यसेन इति नाम कृतम्। ततोऽन्यस्मिन्दिने पूर्वस्यां दिशि पद्मा-सनस्थं चतुर्मुखं यज्ञोपवीताद्युपेतं देवासुरवन्द्यमानं ब्रह्मरूपं दर्शितम्। तत्र राजादयोऽभव्यसेनादयश्च सर्वे गताः। रेवती तु कोऽयं ब्रह्मा नाम देव इति भणित्वा लोकैः प्रेर्यमाणापि न गता। एवं दक्षिणस्यां दिशि गरुडारूढं चतुर्भुजं चक्रगदाशङ्खासिधारकं वासुदेवरूपम्। पश्चिमस्यां दिशि वृषभारूढं सार्धचन्द्रजटाजूटगौरी-गणोपेतं शङ्कररूपम्। उत्तरस्यां दिशि समवसरणमध्ये प्राति-

हार्याष्टकोपेतं सुरनरविद्याधरमुनिवृन्दवन्द्यमानं पर्यङ्कस्थं तीर्थंकरदेवरूपं दर्शितम् । तत्र च सर्वे लोका गताः । रेवती तु लोकैः प्रेर्यमाणापि न गता । नवैव वासुदेवाः एकादशैव रुद्राः चतुर्विंशतिरेव तीर्थंकराः जिनागमे कथिताः । ते चातीताः । कोऽप्ययं मायावीत्युक्त्वा स्थिता । अन्यदिने चर्याविलायां व्याधिक्षीणशरीरक्षुल्लकरूपेण रेवतीगृहप्रतोलीसमीपमार्गे मायामूर्च्छया पतितः । रेवत्या तमाकर्ण्य भक्त्योत्थाय नीत्वोपचारं कृत्वा पथ्यं कारयितुम् आरब्धा । तेन च सर्वमाहारं भुक्त्वा दुर्गन्धवमनं कृतम् । तदपनीय हा हा विरूपकं मया पथ्यं दत्तमिति रेवत्या वचनमाकर्ण्य तोषान्मायामुपसंहृत्य तां देवीं वन्दयित्वा गुरोराशीर्वादं पूर्ववृत्तान्तं च सर्वं कथयित्वा लोकमध्ये अमूढदृष्टित्वं तस्या उच्चैः प्रशस्य स्वस्थाने गतः । वरुणो राजा शिवकीर्तिपुत्राय राज्यं दत्त्वा तपो गृहीत्वा महेन्द्रस्वर्गे देवो जातः । रेवत्यपि तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गे देवो बभूव ॥

[१०] उपगूहनाख्यानकम् ।

सौराष्ट्रदेशे पाटलिपुत्रनगरे राजा यशोध्वजो, राज्ञी सुसीमा, पुत्रः सुवीरः सप्तव्यसनाभिभूतस्तथाभूतभूरिपुरुषसेवितः । पूर्वदेशे गौडविषये ताम्रलिप्तिनगर्यां जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिनः सप्ततलप्रासादोपरि बहुरक्षायुक्ता पार्श्वनाथप्रतिमा छत्रत्रयोपरि विशिष्टतरानर्घ्यवैडूर्यमणिं पारम्पर्येणाकर्ण्य लोभात्सुवीरेण निजपुरुषाः पृष्टास्तं मणिं किं कोऽप्यानेतुं शक्नोतीति । इन्द्रमुकुटमणिमप्यहमानयामीति गलगर्जितं कृत्वा सूर्यनामा चौरः कपटेन क्षुल्लको भूत्वा अतिकायक्लेशेन ग्रामनगरेषु क्षोभं कुर्वाणः क्रमेण ताम्रलिप्तिनगरीं गतः । तमाकर्ण्य गत्वा लोकवन्द्यत्वात् संभाष्य प्रशस्य क्षुभितेन जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिना नीत्वा श्रीपार्श्वनाथदेवं दर्शयित्वा माययानिच्छन्नपि गृहीत्वा स

तत्र मणिरक्षको धृतः। एकदा क्षुल्लकं पृष्ट्वा श्रेष्ठीं समुद्रयात्रायां चलितो नगराद् बहिर्निर्गत्य स्थितः। स चौरक्षुल्लको गृहजनमुपकरणनयनव्यग्रं ज्ञात्वार्धरात्रे तं मणिं गृहीत्वा चलितः। मणितेजसा मार्गे कोट्टपालैर्दृष्टो धर्तुमारब्धः। तेभ्यः पलायितुमसमर्थः श्रेष्ठिन एव शरणं प्रविष्टो मां रक्ष रक्षेति चोक्तवान्। कोट्टपालानां कलकलमार्ण्य पर्यालोच्य तं चौरं ज्ञात्वा दर्शनोद्वाहप्रच्छादनार्थं भणितं श्रेष्ठिना मम वचनेन रत्नमनेनानीतं रे भवद्भिर्विरूपकं कृतं यद्यस्य महातपस्विनश्चौरोद्घोषणा कृता। ततस्ते तस्य प्रणामं कृत्वा गताः। स च श्रेष्ठिना रात्रौ निर्धाटितः। एवमन्येनापि सम्यग्दृष्टिनाभक्तासमर्थाज्ञानपुरुषादागतदर्शनदोषस्य प्रच्छादनं कर्तव्यम्॥

[११] उपस्थितिकरणाख्यानकम्।

यथा—मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको, राज्ञी चेलनी, पुत्रो वारिषेण उत्तमश्रावकश्चतुर्दश्यां रात्रौ कृतोपवासः श्मशाने कायोत्सर्गेण स्थितः। तस्मिन्नेव दिने उद्यानक्रीडागतमगधसुन्दरीविलासिन्या श्रीकीर्तिश्रेष्ठिना परिहितो दिव्यो हारो दृष्टः। ततस्तं दृष्ट्वा किमनेनालंकारेण विना जीवितेनेति संचिन्त्य शय्यायां पतित्वा सा स्थिता। तावद्रात्रौ समागतेन तदासक्तेन विद्युच्चोरेणोक्तम्—प्रिये, किमेवं स्थितासीति। तयोक्तम्—श्रीकीर्तिश्रेष्ठिनो हारं यदि मे ददासि तदा जीवामि। त्वं च मे भर्ता नान्यथेति श्रुत्वा तां समुद्धार्य अर्धरात्रौ गत्वा निजकौशल्येन हारं चोरयित्वा निर्गतस्तदुद्द्योतेन चौरोऽयमिति ज्ञात्वा गृहरक्षकैः कोट्टपालैश्च ध्रियमाणः पलायितुमसमर्थो वारिषेणकुमारस्याग्रे तं हारं धृत्वाऽदृश्यो भूत्वा स्थितः। कोट्टपालैश्च तं तथा आलोक्य श्रेणिकस्य कथितम्—देव वारिषेणश्चोर इति श्रुत्वा तेनोक्तम्—मोषकस्यास्य मस्तकं गृह्यता-

मिति। मातङ्गेन च योऽसिः शिरोग्रहणार्थं वाहितः स कण्ठे तस्य पुष्पमाला बभूव। तमतिशयमाकर्ण्य श्रेणिकेन गत्वा वारिषेणक्षमां कारितो लब्धाभयप्रदानेन विद्युच्चोरेण राज्ञो निजवृत्तान्ते कथिते वारिषेणो गृहे नेतुमारब्धः। तेन चोक्तम्—मया पाणिपात्रे भोक्तव्यमिति। ततोऽसौ सूरदेवमुनिसमीपे मुनिरभूत्। एकदा राजगृहसमीपे पलाशकुटग्रामे चर्यां स प्रविष्टः। तत्र श्रेणिकस्य योऽग्निभूतिः मन्त्री तत्पुत्रेण पुष्पडालेन दृष्ट्वा स्थापितश्चर्यां कारयित्वा स सोमिल्लां निजभार्यां पृष्ट्वा प्रभुपुत्रत्वाद् बालसखित्वाच्च स्तोकमार्गानुव्रजनं कर्तुं वारिषेणेन सह निर्गतः। आत्मनो व्याघुटनार्थं क्षीरवृक्षादिकं दर्शयन् मुहुर्मुहुर्वन्दनां कुर्वन् हस्ते धृत्वानीतो विशिष्टधर्मश्रवणं कृत्वा वैराग्यं नीत्वा तपो ग्राहितोऽपि सोमिल्लां न विस्मरति। तौ द्वावपि द्वादशवर्षाणि तीर्थयात्रां कृत्वा वर्धमानस्वामिसमवसरणं गतौ। तत्र वर्धमानस्वामिनः पृथिव्याश्च संबन्धिगीतं देवैर्गीयमानं पुष्पडालेन श्रुतं यथा—

मइल कुचेली दुम्मणी णाहेँ पवसियएण।
कह जीवेसइ धणिय धर डज्झंतेँ हियएण॥

एतदात्मनः सोमिल्लायाश्च संयोज्य तस्यामुत्कण्ठितश्चलितः। स वारिषेणेन ज्ञात्वा स्थिरीकरणार्थं निजनगरं नीतः। चेलिन्याऽसौ दृष्ट्वा वारिषेणः किं चारित्राच्चलितः आगच्छतीति संचिन्त्य परीक्षार्थं सरागवीतरागे द्वे आसने दत्ते। वीतरागासने वारिषेणेनोपविश्योक्तम्—मदीयमन्तःपुरमानीयताम्। ततश्चेलिनीमहादेव्या वत्सपालककथा वारिषेणेन अगन्धनसर्पकथा। ततश्चेलिनीमहादेव्या द्वात्रिंशद्भार्याः सालंकारा आनीताः। ततः पुष्पडालो वारिषेणेन भणितः। इदं मदीयं युवराजपदं त्वं गृहाण। तच्छ्रुत्वा पुष्पडालोऽतीव लज्जितः परमवैराग्यं गतः परमार्थेन तपः कर्तुं लग्न इति॥

[१२] वात्सल्याख्यानकम् ।

यथा—अवन्तीदेशे उज्जयिन्यां राजा श्रीवर्मा, राज्ञी श्रीमती, बलिर्बृहस्पतिः प्रह्लादो नमुचिश्चेति चत्वारो मन्त्रिणः । तत्रैकदा समस्तश्रुतधरा दिव्यज्ञानिनः सप्तशतमुनिसमन्विता अकम्पनाचार्या आगत्योद्यानवने स्थिताः । समस्तसंघश्च वारितो राजादिकेऽप्यायाते केनापि जल्पनं न कर्तव्यमन्यथा समस्तसंघस्य नाशो भविष्यतीति । राज्ञा च धवलगृहस्थितेन पूजाहस्तं नगरीजनं गच्छन्तं दृष्ट्वा मन्त्रिणः पृष्टाः । क्वायं लोको अकालयात्रायां गच्छतीति । तैरुक्तम्—क्षपणका बहवो बहिरुद्याने आयातास्तत्रायं जनो याति । वयमपि तान् द्रष्टुं गच्छाम इति भणित्वा राजापि चतुर्मन्त्रिभिः समन्वितो गतः । प्रत्येकं सर्वे वन्दिता न केनाप्याशीर्वादो दत्तः । दिव्यानुष्ठानेनातिनिःस्पृहास्तिष्ठन्तीति संचिन्त्य व्याघुटिते राज्ञि मन्त्रिभिर्दुष्टाभिप्रायैरुपहासः कृतः । बलीवर्दा एते किंचिदपि न जानन्ति मूर्खा दम्भमौनेन स्थिताः । एवं ब्रुवाणैर्गच्छद्भिरग्रे चर्यां कृत्वा श्रुतसागरमुनिमागच्छन्तमालोक्य उक्तमयं तरुणबलीवर्दः पूर्णकुक्षिरागच्छति । एतदाकर्ण्य तेन राज्ञोऽग्रेऽनेकान्तवादेन जिताः । अकम्पनाचार्यस्य चागत्य वार्ता कथिता । तेन चोक्तम्—सर्वसंघस्त्वया मारितो यदि वादस्थाने गत्वा रात्रौ त्वमेकाकी तिष्ठसि तदा संघस्य जीवितव्यं तव शुद्धिश्च भवति । ततोऽसौ तत्र गत्वा कायोत्सर्गेण स्थितः । मन्त्रिभिश्चातिलज्जितैः क्रुद्धै रात्रौ संघं मारयितुं गच्छद्भिस्तमेकं मुनिमालोक्य येन परिभवः कृतः स एव हन्तव्य इति पर्यालोच्य तद्वधार्थं युगपच्चतुर्भिः खड्गा उद्गीर्णाः । कम्पितनगरदेवतया तथैव ते कीलिताः । प्रभाते तथैव सर्वलोकैर्दृष्टाः, रुष्टेन राज्ञा क्रमागता इति न मारिता, गर्दभारोहणादिकं कारयित्वा देशान्निर्धाटिताः । अथ कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे राजा महापद्मो,

राज्ञी लक्ष्मीमती, पुत्रो पद्मोऽन्यो विष्णुश्च। एकदा पद्माय राज्यं दत्त्वा महापद्मो विष्णुना सह श्रुतसागरचन्द्राचार्यसमीपे मुनिर्जातः। ते च बलिप्रभृतय आगत्य पद्मराजस्य मन्त्रिणो जाताः। कुम्भपुरनगरे च सिंहबलो राजा दुर्गबलात्पद्ममण्डलस्योपद्रवं करोति। तद्ग्रहणचिन्तया पद्मं दुर्बलमालोक्य बलिनोक्तम्—किं देव दौर्बल्यस्य कारणमिति। कथितं च राज्ञा। तत् श्रुत्वा आदेशं याचयित्वा तत्र गत्वा बुद्धिमाहात्म्येन दुर्गं भङ्क्त्वा सिंहबलं गृहीत्वा व्याघुट्यागतेन पद्मस्यासौ समर्पितः, देव, सोऽयं सिंहबल इति। तुष्ट्वा तेनोक्तम्—वाञ्छितं वरं प्रार्थयेति। बलिनोक्तम्, यदा प्रार्थयिष्यामि तदा दीयतामिति। अथ कतिपयदिनेषु विहरन्तस्ते अकम्पनाचार्यादयः सप्तशतमुनयस्तत्रागताः। पुरक्षोभाद्बलिप्रभृतिभिर्भीत्या परिचिन्तितम्। राजा एतद्भक्त इति पर्यालोच्य भयात्तन्मारणार्थं पद्मः पूर्वं प्रार्थितः। सप्तदिनान्यस्माकं राज्यं देहीति। ततोऽसौ सप्तदिनानि राज्यं दत्त्वा अन्तःपुरे प्रविश्य स्थितः। बलिना च आतापनगिरौ कायोत्सर्गेण स्थितान्मुनीन् वृत्यावेष्ट्य मण्डपं कृत्वा यज्ञः कर्तुमारब्धः। उत्सृष्टशरावच्छागादिजीवकलेवरैर्धूमैश्च मुनीनां मारणार्थमुपसर्गः कृतः। मुनयश्च द्विविधसंन्यासेन स्थिताः। अथ मिथिलानगर्यामर्धरात्रे बहिर्विनिर्गतश्रुतसागरचन्द्राचार्येणाकाशे श्रवणनक्षत्रं कम्पमानमालोक्यावधिज्ञानेन ज्ञात्वा भणितम्—महामुनीनां महानुपसर्गो वर्तते। तच्छ्रुत्वा पुष्पदन्तनाम्ना विद्याधरक्षुल्लकेन पृष्टम्—भगवन्, क्व केषां मुनीनाम्। हस्तिनागपुरे अकम्पनाचार्यादीनाम्। स उपसर्गः कथं नश्यति। धरणिभूषणगिरौ विष्णुकुमारमुनिर्विक्रियर्द्धिसंपन्नस्तिष्ठति, स नाशयति। एतदाकर्ण्य तत्समीपे गत्वा क्षुल्लकेन विष्णुकुमारस्य सर्वस्मिन् वृत्तान्ते कथिते मम किं विक्रिया-ऋद्धिरस्तीति संचिन्त्य तत्परीक्षणार्थं हस्तः प्रसारितः। स गिरिं भित्त्वा दूरे गतः। ततस्तां निर्णीय तत्र गत्वा पद्मराजो भणितः—किं त्वया

मुनीनामुपसर्गः कारितः। भवत्कुले केनापीदृशं न कृतम्। तेनोक्तम्—किं करोमि, पूर्वमस्य वरो दत्त इति। ततो विष्णुकुमारमुनिना वामनब्राह्मणरूपं धृत्वा दिव्यध्वनिना प्रार्थनं कृतम्। बलिनोक्तम्—किं तुभ्यं दीयते। तेनोक्तम्—भूमेः पादत्रयं देहि। ग्रहिलब्राह्मण, बहुतरमन्यत्प्रार्थयेति वारंवारं लोकैर्भण्यमानोऽपि तावदेव च याचते। हस्तोदकादिविधिना भूमिपादत्रये दत्ते तेनैकपादो मेरौ दत्तो, द्वितीयपादो मानुषोत्तरगिरौ, तृतीयपादेन देवविमानादीनां क्षोभं कृत्वा बलिपृष्ठे तं पादं दत्त्वा बलिं बन्धयित्वा मुनीनामुपसर्गो निवारितः। ततस्ते चत्वारो मन्त्रिणः पद्मश्च भयादागत्य विष्णुकुमारमुनेरकम्पनाचार्यादीनां च पादेषु लग्नाः। ते मन्त्रिणः श्रावकाश्च जाता इति व्यन्तरदेवैः सुघोषवीणात्रयं दत्तं विष्णुकुमारपादपूजार्थम्॥

[१३] प्रभावनाख्यानकम्।

यथा—हस्तिनागपुरे बलराजस्य पुरोहितो गरुडस्तत्पुत्रः सोमदत्तः [तेन] सकलशास्त्राणि पठित्वा अहिच्छत्रनगरे निजमामसुभूतिपार्श्वे गत्वा भणितम्—माम, मां दुर्मुखराजस्य दर्शयेति। तेन गर्वितेन न स दर्शितः। ततो ग्रहिलो भूत्वा भूपसभायां स्वयमेव तं दृष्ट्वा आशीर्वादं दत्त्वा सर्वशास्त्रकुशलत्वं प्रकाश्य मन्त्रिपदं लब्धवान्। तं तथाभूतमालोक्य सुभूतिमामो यज्ञदत्तां पुत्रीं परिणेतुं दत्तवान्। एकदा तस्या गुर्विण्या वर्षाकाले आम्रफलभक्षणे दोहलको जातः। सोमदत्तेन तान्याम्रवने अन्वेषयता यत्राम्रवृक्षे सुमित्राचार्यो योगं गृहीतवान्नास्ते नानाफलैः फलितं दृष्ट्वा तस्मात्तान्यादाय पुरुषहस्ते प्रेषितवान्, स्वयं च धर्मं श्रुत्वा निर्विण्णस्तपो गृहीत्वा आगममधीत्य परिणतो भूत्वा नाभिगिरावातापनेन स्थितः। यज्ञदत्ता च पुत्रं

प्रसूता। तं वृत्तान्तं श्रुत्वा बन्धुसमीपं गता। तस्य च शुद्धिं ज्ञात्वा बन्धुभिः सह नाभिगिरिं गत्वा तमातापनस्थमालोक्यातिकोपात्तत्पादोपरि बालकं धृत्वा दुर्वचनानि दत्त्वा गृहं गता। अत्र प्रस्तावे दिवाकरदेवनामा विद्याधरोऽमरावतीपुर्याः पुरन्दरदेवनाम्ना लघुभ्रात्रा राज्यान्निर्धाटितः सकलत्रो मुनिं वन्दितुमायातस्तं बालं गृहीत्वा निजभार्यायाः समर्प्य वज्रकुमार इति नाम कृत्वा गतः। स च वज्रकुमारः कनकनगरे विमलवाहननिजमैथुनकसमीपे सर्वविद्यापारगो युवा च क्रमेण जातः। अथ गरुडवेगाङ्गवत्योः पुत्री पवनवेगा ह्रीमन्तपर्वते प्रज्ञप्तिविद्यां महाश्रमेण साधयन्ती पवनाकम्पितबदरीचक्रकण्टकेन लोचने विद्धा। ततस्तत्पीडया चलचित्ताया विद्या न सिध्यति। वज्रकुमारेण च तां तथा दृष्ट्वा विज्ञानेन कण्टकमुद्धृत्य [तम्।] ततः स्थिरचित्तायास्तस्या विद्या सिद्धा। उक्तं च तया—भवत्प्रसादेनैषा विद्या मे सिद्धा, त्वमेव भर्तेत्युक्त्वा परिणीता। वज्रकुमारेण च तद्विद्यां गृहीत्वा अमरावतीं गत्वा पितृव्यं संग्रामे जित्वा निर्धाट्य दिवाकरदेवो राज्ये धृतः। एकदा जयश्रीजनन्या निजपुत्रराज्यनिमित्तमसहवत्यान्येन जातोऽन्यं संतापयतीत्युक्तम्। तच्छ्रुत्वा वज्रकुमारेणोक्तम्—तात, अहं कस्य पुत्र इति सत्यं कथय। तस्मिन् कथिते मे भोजनादौ प्रवृत्तिरिति। ततस्तेन पूर्ववृत्तान्तः सर्वः सत्य एव कथितः। तमाकर्ण्य स निजगुरुं द्रष्टुं बन्धुभिः सह मथुरायां क्षत्रियगुहायां गतः। तत्र च सोमदत्तगुरोर्दिवाकरदेवेन वन्दनां कृत्वा वृत्तान्तः कथितः। ततः समस्तबन्धून्महता कष्टेन विसृज्य वज्रकुमारो मुनिर्जातः॥ अत्रान्तरे मथुरायामन्या कथा।

राजा पूतिगन्धो, राज्ञी उर्विला, सा च सम्यग्दृष्टिरतीव जिनधर्मप्रभावनायां रता नन्दीश्वराष्टदिनानि प्रतिवर्षं जिनेन्द्ररथयात्रां त्रिवारान् कारयति। तत्रैव नगर्यां श्रेष्ठी सागरदत्तः, श्रेष्ठिनी समुद्र-

दत्ता, पुत्री दरिद्रा। मृते सागरे दरिद्रां चैकदा परगृहे निक्षिप्तसिक्थानि भक्षयन्ती चर्यायां प्रविष्टेन मुनिद्वयेन दृष्टा। ततो लघुमुनिनोक्तम्—हा वराकी महता कष्टेन जीवत्येतदाकर्ण्य ज्येष्ठमुनिनोक्तमत्रैवास्य राज्ञः पट्टराज्ञी वल्लभा भविष्यतीति। भिक्षां भ्रमता धर्मश्रीवन्दकेन तद्वचनमाकर्ण्य नान्यथा मुनिभाषितमिति संचिन्त्य स्वविहारे नीत्वा मृष्टाहारैः पोषिता। एकदा यौवनभरे चैत्रमासे आन्दोलयन्तीं राजा दृष्ट्वा ऽतीव विरहावस्थां गतः। ततो मन्त्रिभिर्वन्दकस्तां तदर्थं याचितः। तेन चोक्तम्—यदि मदीयं धर्मं राजा गृह्णाति तदा ददामीति। तत्सर्वं कृत्वा परिणीता। पट्टमहादेवी तस्य सातिवल्लभा जाता। फाल्गुननन्दीश्वरयात्रायां उर्विलारथयात्रामहाटोपं दृष्ट्वा तया भणितम्। देव, मदीयो बुद्धरथो ऽधुना पुर्यां प्रथमं भ्रमतु। राज्ञा चोक्तमेवमस्त्विति। तत उर्विला मदीयो रथो यदि प्रथमं भ्रमति तदा ममाहारे प्रवृत्तिरिति प्रतिज्ञां गृहीत्वा क्षत्रियगुहायां सोमदत्ताचार्यपार्श्वे गता। तस्मिन्प्रस्तावे वज्रकुमारमुनेर्वन्दनाभक्त्यर्थमायाता दिवाकरदेवादयो विद्याधरास्तदीयवार्तां श्रुत्वा वज्रकुमारमुनिना ते भणिताः। उर्विलायाः प्रतिज्ञापूरणार्थं रथयात्रा भवद्भिः कर्तव्येति। ततस्तैर्बुद्धदासीरथं भङ्क्त्वा नानाविभूत्या उर्विलाया रथयात्रा कारिता। तमतिशयं दृष्ट्वा पूतिमुखा बुद्धदासी अन्ये च जना जिनधर्मरता जाताः॥

[१४] भगिनीं विडम्ब्यमानामित्यादि।

[भयणीए विधम्मि [डंबि] ज्जंतीए एयत्तभावणाए जहा।
जिणकप्पिओ ण मूढो खवओ वि ण मुज्झइ तधेव ॥२०१॥]

अत्र कथा—मगधदेशे राजगृहनगरे राजा प्रजापालो, राज्ञी प्रियधर्मा, तत्पुत्रौ प्रियधर्मप्रियमित्रौ। तौ तपः कृत्वाच्युतस्वर्गे

गतौ । तत्र प्रियधर्मणा उक्तम्—आवयोर्मध्ये यो मनुष्यलोके प्रथममुत्पद्यते तेन स प्रबोधयित्वा तपो ग्राहितव्य इति । उज्जयिनीनगर्यां राजा नागधर्मो, राज्ञी नागदत्ता, तयोः प्रियमित्रदेवो नागदत्तनामा पुत्रो जातः । समस्तकलाभिज्ञः सर्पक्रीडायामतीव रतः । एकदा प्रियधर्मदेवः तत्संबोधनार्थं डोम्बवेषं कृत्वा पिट्टारके सर्पद्वयं गृहीत्वा गलगर्जं कुर्वन्नुज्जयिन्यां प्रविष्टो नागदत्तेन धृतः त्वदीयसर्पक्रीडामहं करोमि । तेनोक्तम्—राजपुत्रैः सह नाहं वादं करोमि । राजा रुष्टो मां मारयतीति । ततो नागदत्तेन राज्ञो ऽग्रे नीत्वाभयप्रदानं दापयित्वा नानाविधक्रीडायामेकः सर्पो जितः । ततस्तुष्टेन नागदत्तेनोक्तं, द्वितीयमपि सर्पं मुञ्चेति । डोम्बेनोक्तम्—अयं सर्पो दुष्टो, यदि खादति तदास्य न किंचित्प्रतिविधानमस्तीति । ततः रुष्टेन नागदत्तेनोक्तम्—मन्त्रमुद्रामण्डलधारणाभिज्ञस्य किमसौ वराकः कर्तुं शक्त इति । ततो डोम्बेन राजादीन् साक्षिणः कृत्वा मम दोषो नास्तीत्युक्त्वा मुक्तः सर्पः । तेन च गत्वासौ खादितस्ततो निश्चलो ऽसौ भूमौ पतितः । राज्ञा च सर्वे मन्त्रवादिन आकारितास्तैश्च कालदष्टो ऽयं न जीवतीत्युक्त्वा अर्धराज्यं भणित्वा राज्ञा तस्यैव डोम्बस्य समर्पितः । तेनोक्तम्—ममाज्ञा समस्ति तया कालदष्टो ऽपि जीवति, यद्युत्थितस्तपो गृह्णाति । राज्ञोक्तमेवमस्त्विति । ततस्तेनासावुत्थापितो दमधरमुनिपादमूले यतिर्जातः । ततो डोम्बरूपं परित्यज्य देवः प्रकटीभूय पूर्वं वृत्तान्तं कथयित्वा स्वर्गं गतः । नागदत्तमुनिश्च जिनकल्पेनाचरणविशेषेण चरतीति जिनकल्पिको भूत्वा नानातीर्थवन्दनां कृत्वा महाटव्यामागच्छन्नवरुद्धमार्गैः सूरदत्तचरैर्धर्तुमारब्धो ऽयमात्मीयानग्रे गत्वा कथयिष्यतीति । सूरदत्तेनोक्तम्—न किमपि वदत्ययं परमवीतरागः पश्यन्नपि न पश्यतीति मुच्यताम् । अथ या नागदत्तस्य लघुभगिनी नागश्रीर्वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां जिनदत्ताजिनदत्तयोः पुत्राय जिनपालकुमाराय

दत्ता। तां गृहीत्वा बहुभाण्डागारपरिजनेन सह गच्छन्त्या नागदत्तया मुनिर्दृष्टः। संतोषेण हृष्टया प्रणम्य पृष्टो भगवन्नग्रे मार्गशुद्धिरस्ति न वेति। स मौनं कृत्वा गतः। ततः सा वन्दनां कृताग्रे गता। चौरैश्च सर्वमर्थमुद्दाल्याग्रे कृत्वा द्वे अपि सूरदत्तस्याग्रे नीते। सूरदत्तेन चोक्तम्—दृष्टं भवद्भिः परमौदासीन्यं मुनेरनयोर्भक्ति कुर्वत्योः पृच्छत्योश्च न किंचित्कथितमिति। तच्छ्रुत्वा नागदत्तयोक्तम्—भो सूरदत्त क्षुरिकां समर्पय। पापिष्ठं निजमुदरं नवमासानयमनेन धृतो दुष्टात्मा। ततो विदारयामीति। तदाकर्ण्य तेनोक्तम्—यास्य माता सा ममापि मातेति तां प्रणम्य सर्वमर्थं समर्प्य विसर्जिता। स्वयं नागदत्तचेष्टितं दृष्ट्वा विरक्तो भूत्वा तत्पादमूले तपो गृहीत्वा कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षं गतः॥

[१६] किलकल्पपालभवने पिबन्निव ब्राह्मणो दुग्धम्।

[दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण।
पाणागारे दुद्धं पियंतओ बंभणो चेव ॥३४६॥]

अत्र कथा—वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां राजा धनपालः, कल्पपालः पूर्णभद्रो, भार्या मणिभद्रा, पुत्री सुमित्रा, तस्या विवाहे समस्तं नगरजनं भोजयित्वा परममित्रं चतुर्वेदवित्पुरोहितः शिवभूतिरामन्त्रितः। [तेन] उक्तम्—मित्र, शूद्रान्नं न कल्पते ऽस्माकम्। पूर्णभद्रेणोक्तम्—ब्राह्मणगृहनिष्पन्नया रसवत्योद्याने गोष्ठीभवने भोजनं क्रियतामिति। तत उद्याने पूर्णभद्रं सपरिजनमेकत्रान्यत्र च शिवभूतिं खण्डं दुग्धं पिबन्तमालोक्य लोकैर्मद्यपानं कृतमिति राज्ञः कथितम्। न कृतमिति शिवभूतिर्ब्रुवाणो राज्ञा वमनं कारितो दुर्गन्धवमनाद्देशान्निर्धाटितः॥

[१६] कौशिकविहिते ऽपि यथा दोषे व्यापादितो हंसः ।

[अदिसंजदो वि दुज्जणकएण दोसेण पाउणइ दोसं ।
जह घूगकए दोसे हंसो य हओ अपावो वि ॥ ३४७ ॥]

अस्य कथा—मगधदेशे पाटलिपुत्रनगरे पूर्वप्रतोलीछिद्रान्निर्गत्य कौशिक एकदा गङ्गायां गतो वृद्धहंसेन स्वागतं कृत्वा पृष्टः कस्त्वम् । उलूकेनोक्तम्—पक्षिराजो ऽहं सर्वे ऽपि राजानो मदीयाज्ञया चलन्ति । ततो मित्रत्वं कृत्वा हंसो घूकेन प्रतोलीमानीतः । गोधूलिसमये प्रजापालो राजा विजययात्रायां चलितः । घूकेन तमालोक्य हंसो भणितः । पश्यायं राजा मद्वचनेन गच्छति तिष्ठति चेति विशिष्टशब्दं कृत्वा प्रेषितः, पुनर्विरूपकं शब्दं कृत्वा धृतः । एवं बहुवारान् शकुनापशकुनशब्दतो गच्छता तिष्ठता च राज्ञा शब्दवेधेन कोपाद्घूकशब्दस्य बाणो मुक्तस्तमालोक्य घूको बिले प्रविष्टो द्वारस्थो हंसो हतः । तेनोक्तम्—

अकालचर्यां विषमां च गोष्ठीं
कुमित्रसेवां न कदापि कुर्यात् ।
पश्याण्डजं पद्मवने प्रसूतं
धनुर्विमुक्तेन शरेण भिन्नम् ॥

[१७] बालो यथाभिजल्पतीत्यादि ।

[जह बालो जंपंतो कज्जमकज्जं व उज्जुगं भणदि ।
तह आलोचेदव्वं मायामोसं च मोत्तूणं ॥ ५४७]

अत्र कथा—कौशाम्बीपुर्यां राजा जयपालः, श्रेष्ठी सागरदत्तो ऽतीवेश्वरो, भार्या सागरदत्ता, पुत्रः समुद्रदत्तः सकलाभरणभूषितः । अपरो दरिद्रो वणिक् गोपायनः सर्वव्यसनाभिभूतो, भार्या सोमा,

पुत्रः सोमको बालः। समुद्रदत्तः सोमकेन सह क्रीडति। एकदा गोपायनेन द्रव्यलोभान्निजगृहे सोमकस्याग्रे स समुद्रदत्तं मारयित्वा आभरणं गृहीत्वा गर्तायां संनिक्षिप्तः। तस्यादर्शने व्याकुलत्वं सकलबन्धूनां, सागरदत्तया सोमकः पृष्टः। क्व रे समुद्रदत्तः। तेन चाविकल्पेनात्र गर्तायां तिष्ठतीत्युक्तम्। तया तत्र तं तथा दृष्ट्वा श्रेष्ठिनः कथितम्। तेन च यमदण्डकोट्टपालस्य, तेनापि राज्ञः, राज्ञा दण्डादिकं कृतमिति॥

[१८] चन्द्रपरिवेषणाद्भुक्तमिति।

[मिगतण्हादो उदगं इच्छइ चंदपरिवेसणे कूरं।
जो सो इच्छइ सोधी अकहंतो अप्पणो दोसे॥ ५७९]

अत्र कथा—राजगृहनगरे राजा वसुपालः सदा रात्रौ भुङ्क्ते। तस्य चन्द्रनामा महानसिकः परिवारप्रियः। रुष्टेन राज्ञा चन्द्रो निःसारितोऽन्यो महानसिकः कृतः। ततः परिवारेण राजाग्रे भोजनं त्यक्तम्। एकदा भोजनसमये गगने चन्द्रस्य परिवेषमालोक्य लोकैरुक्तम्—चन्द्रस्याद्य परिवेषो जात इति। तच्छ्रुत्वा परिवारेण चन्द्रसूपकारस्य प्रवेशो जात इति मत्वा भुक्तवाञ्छयागतेन न च भुक्तं भोजनं तेन विना कृतमिति॥

[१९] स्फुटिते नयने सङ्घश्रियः।

[अच्छीणि संघसिरिणो मिच्छत्तणिकाचणेण पडिदाणि।
कालगदो वि य संतो जादो सो दीहसंसारे॥ ७३२॥]

अस्य कथा—अन्ध्रदेशे धान्यकनकनगरे राजा धनदत्तः सदृष्टिः, सङ्घश्रीर्मन्त्री। ताभ्यामपराह्णे प्रासादोपरिभूमौ मन्त्रं कुर्वद्भ्यां

चारणमुनी गगनतले गच्छन्तौ दृष्टौ। अभ्युत्थानादिकं कृत्वा समीपमानीतौ। वन्दनादिकं कृतम्। राजवचनेन सङ्घश्रीः विशिष्टधर्मश्रवणं कृत्वा श्रावकः कृतः। ततो गतौ मुनी सङ्घश्रीः स्वगुरुं बुद्धश्रीवन्दकं प्रतिदिनं त्रिसन्ध्यं वन्दितुं गच्छति। तस्मिन् दिने उपरितनवेलायां यावन्न गतस्तावत्तेनाकारयित्वानीतः प्रणाममकुर्वन् वन्दकेन पृष्टः—प्रणामं किमिति न करोषीति। ततस्तेन पूर्ववृत्तान्ते कथिते वन्दकेनोक्तम्—हा हा वञ्चितो ऽसि। न चारणमुनयः सन्ति। भ्रान्तिरेव तथा जाता। स राजा इन्द्रजालेनेन्द्रजालं तवेदं दर्शितवान्। अतो मा त्वं बुद्धधर्मं त्यज। एवं मिथ्यात्वं सुतरां स नीतो भणितश्च प्रभाते त्वं राजसभायां मा गच्छेर्गतो ऽपि दृढमिति मा कथमपि वादीः प्रभाते च राज्ञा सामन्तादीनां चारणागमनकथां कथयता संवादार्थं सङ्घश्रीराकारितः। तेन चागतेन पृष्टे न दृष्टमित्युक्तं ततः स्फुटिते नयने सङ्घश्रियः॥

[२०] दृष्टिभ्रष्टो भ्रष्टः।

[दंसणभट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होदि चरणभट्ठो हु।
दंसणममुयंतस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे॥ ७३९॥]

अस्य कथा—काम्पिल्यनगरे राजा ब्रह्मरथो, राज्ञी रामिल्या, तत्पुत्रो ब्रह्मदत्तो द्वादशश्चक्रवर्ती। एकदा विजयसेनसूपकारेण भोक्तुमुपविष्टस्यात्युष्णा क्षैरेयी दत्ता। भोक्तुमशक्तेन कोपात्तया दाहयित्वा मारितः। स च मृत्वा लवणसमुद्रे रत्नद्वीपे व्यन्तरदेवो भूत्वा विभङ्गज्ञानेन वैरं ज्ञात्वा परिव्राजकरूपेण गत्वातिमृष्टकेलकादि फलानि चक्रवर्तिने दत्तवान्। तानि भक्षित्वा स तेन पृष्टः। क्वेदृशानि फलानि सन्ति। समुद्रमध्ये मदीयमठवाटिकायामिति कथयित्वा तेनान्तःपुरादियुक्तं तं समुद्रमध्ये नीत्वा मारणार्थमुपसर्गः

कृतः। तं च पञ्चनमस्कारान् स्मरन्तं मारयितुं न शक्नोति। ततस्तेन प्रकटीभूय प्रविचार्य भणितो ब्रह्मदत्तः—रे त्वां मारयामि लग्नो यदि जिनशासनं नास्तीति भणित्वा परदर्शनं प्रशस्य पञ्चरोक्षा नमस्कारान् लिखित्वा पादेन विनाशयति [सि ?] तदा न मारयामीति। तेनैतस्मिन् कृते जलमध्ये तेन स मारितः सप्तमनरके गतः॥

[२१] नृपश्रेणिको ऽविरतः।

[सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि अज्जेदि तित्थयरणामकम्मं।
जादो खु सेणिगो आगमेसिं अरुहो अविरदो वि ॥७४०॥]

अस्य कथा—मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको, राज्ञी चेलिनी सम्यग्दृष्टिनी जिनागमे अतीव कुशला। एकदा सा श्रेणिकेन भणिता—विष्णुधर्म एव सर्वधर्मेभ्यः श्रेष्ठस्तत्रैव त्वया रतिः कर्तव्या। एतदाकर्ण्य तया भणितम्—देव, भगवतां भोजनं ददामीति। ततो निमन्त्र्यानीय महामण्डपे गौरवेण धृताः। तत्र च ते ध्यानेन स्थिताः। चेलिन्या पृष्टाः—किं भवन्तो ध्याने स्थिताः कुर्वन्तीति। तैरुक्तम्—शरीरं त्यक्त्वा आत्मानं विष्णुलोके नीत्वा परमानन्देन तिष्ठाम इति। ततस्तया तेषां ध्याने स्थितानां मण्डपः प्रज्वालितस्ते च नष्टाः। रुष्टेन राज्ञा सा भणिता—यदि भक्तिर्नास्ति तदा किमित्थमेते तव मारयितुं युक्ताः। तयोक्तम्—देव, कुत्सितं शरीरं त्यक्त्वा एते विष्णुलोके गताः। एतस्मिन् शरीरे दग्धे तत्रैव तिष्ठन्तीत्युपकारार्थमेतेषां शरीरदाहः कर्तुमस्माभिरारब्धः। अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थं दृष्टान्तत्वेन तत्प्रसिद्धां कथामाह॥ यथा वत्सदेशे कौशाम्बीनगर्यां प्रजापालो राजा, श्रेष्ठी सागरदत्तो, भार्या वसुमती। तत्रैवापरः श्रेष्ठी समुद्रदत्तो, भार्या समुद्रदत्ता, द्वयोरपि परमस्नेहेन

तिष्ठतोर्वाचा निबन्धो जातः । यथावयोर्यौ पुत्रीपुत्रौ जायेते तयोरन्योन्यविवाहः कर्तव्यो येनावयोः सर्वदा स्नेहेन कालो गच्छतीति । ततः कतिपयदिनैः सागरदत्तेन वसुमत्यां वसुमित्रनामा पुत्रो जातः । स च दिवसे सर्पो रात्रौ दिव्यः पुरुषो भवति । तथा समुद्रदत्तेन समुद्रदत्तायां नागदत्ता नाम पुत्री जाता । सा वसुमित्रेण परिणीता । स च रात्रौ दिव्यपुरुषरूपं धृत्वा नागदत्तया स भोगान् भुङ्क्ते । एकदा समुद्रदत्तया नागदत्तां यौवनभराक्रान्तामतिशयेन रूपवतीं दृष्ट्वा दीर्घनिःश्वासं मुक्त्वा उक्तम्—हा कष्टतरं विधेश्चेष्टितमीदृश्या मत्पुत्र्याः कीदृशो वरो जात इति । एतद्वचः श्रुत्वा नागदत्तयोक्तं मा विसूरय [=मा विषादं गच्छ], मद्भर्ता रात्रौ पिट्टारके सर्पशरीरं मुक्त्वा दिव्यं पुरुषशरीरं गृहीत्वा मया सह भोगान् भुङ्क्ते । एतच्छ्रुत्वा समुद्रदत्तया नागदत्तागृहे गत्वा रात्रौ वसुमित्रेण पिट्टारके सर्पशरीरं मुक्त्वा दिव्यं पुरुषशरीरं धृत्वा निर्गते पिट्टारके दग्धे वसुमित्रो रात्रिंदिवमिष्टं कामभोगान् भुञ्जानः सुखेन स्थितः । एवं भगवच्छरीरे कुत्सिते दग्धे भगवन्तो विष्णुलोक एव सततं सुखं भुञ्जानास्तिष्ठन्तीत्यभिप्रायेण देव मया एतच्छरीरदाहः कर्तुमारब्ध इति । एतदाकर्ण्य चित्तस्थकोपे मौनेन स्थितः । एकदा पापर्द्धिगतेनातापनस्थं यशोधरमुनिमालोक्य मम पापर्द्धिविघ्नकारिणं मारयामीति संचिन्त्य पञ्चशतकुर्कुरा मुक्ताः । ते च मुनेः प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतोत्तमाङ्गेन स्थिताः । ततोऽतिकोपाद् बाणा मुक्तास्ते पुष्पमाला जाताः । तस्मिन् समये तेन सप्तमनरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्बद्धम् । तं चातिशयमालोक्य पूर्णयोगं तं मुनिं प्रणम्य तत्त्वमाकर्ण्य उपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा प्रथमनरके चतुरशीतिवर्षसहस्रमायुः कृतम् । चित्रगुप्तमुनिसमीपे क्षायोपशमिकं वर्धमानस्वामिनः पादमूले क्षायिकं सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनविशुद्ध्यादिभावनाभिस्तु तीर्थंकरत्वमुपार्जितम् ॥

[२२] जिनवन्दनादिभक्त्या पद्मरथ इति ।

[एक्का वि जिणे भत्ती णिद्दिट्ठा दुक्खलक्खणासयरी ।
सोक्खाणमणंताणं होदि हु सा कारणं परमं ॥७३७॥]

अस्य कथा—मगधदेशे मिथिलानगर्यां राजा पद्मरथः पापर्द्धि निर्गतो ऽटव्यां शशकपृष्ठे अश्वं वाहयन्नेकाकी कालगुहाभ्यन्तरे प्रविष्टः। तत्र दीप्ततपसं सुधर्ममुनिमालोक्योपशान्तो घोटकादवतीर्य प्रणम्य धर्मं श्रुत्वा सम्यक्त्वाणुव्रतान्यादाय पृष्टवान्—एवंविधं वक्तृत्वादिकं किं क्वाप्यन्यस्यास्ति। कथितं मुनिना—चम्पायां वासुपूज्यतीर्थंकरदेवास्तिष्ठन्ति, तस्य मम च मेरुसर्षपयोरिव वक्तृत्वे दीप्तौ च महदन्तरम् । एतदाकर्ण्य परमभक्त्या प्रभाते वन्दनार्थं तत्र गच्छतस्तस्य धन्वन्तरिविश्वानुलोमचरदेवाभ्यां तद्भक्तिपरीक्षणार्थं सर्पेण मार्गखण्डनं छत्रभङ्गं नगरदाहाद्यपशकुनं कृत्वा वातधूलीपाषाणाग्निज्वालायितं च कृत्वा हस्ती कर्दमे च मग्नो दर्शितः। ततो मन्त्र्यादिभिर्वार्यमाणो ऽपि न व्याघुटितः। वासुपूज्याय नम इत्युक्त्वा कर्दमे हस्तिनं प्रक्षिप्तवान् ततस्तुष्टाभ्यां ताभ्यां मायामुपसंहृत्य प्रशस्य सर्वरुजापहारो योजनघोषा भेरी च दत्ता। स च वासुपूज्यतीर्थंकरदेवं वन्दित्वा गणधरदेवो जातः ॥

[२३] आराध्य नमस्कारमित्यादि ।

[अण्णाणी वि य गोवो आराधित्ता मदो णमोक्कारं ।
चंपाए सेट्ठिकुले जादो पत्तो य सामण्णं ॥७५९॥]

अस्य कथा—अङ्गदेशे चम्पानगर्यां राजा नृवाहनः, श्रेष्ठी वृषभदासस्तद्गोपालेनैकदा गृहमागच्छता यदास्तमितो भाविकासी[1]

---

१) यथास्तमितो ऽभावकासी

चारणमुनिर्दृष्टः। शीतकाले तुषारे पतति शिलातलस्थो निःप्रावरणः कथं रात्रौ गमयिष्यतीति संचिन्त्य गृहे गत्वा पश्चिमरात्रौ महिषी गृहीत्वा शीघ्रं गतः। तं मुनिं समाधिस्थमालोक्य शरीरे पतितं तुषारं स्फेटयित्वा हस्तपादादिमर्दनं कृतवान्। आदित्योदये ध्यानमुपसंहृत्य आसनभव्यो ऽयमिति मत्वा 'णमो अरहंताणं' इति मन्त्रः कथितः। तं च मन्त्रमुच्चार्य भगवानाकाशे गतस्तन्मन्त्रस्योपरि तस्य महती श्रद्धा जातेति सर्वक्रियासु प्रथमे तमुच्चारयति। श्रेष्ठिना किमेवं रे विप्लवं करोषीति निवारितः। तेन च पूर्ववृत्तान्ते कथिते श्रेष्ठिनोक्तं त्वमेव धन्यो येन तत्पादा दृष्टाः। एवमेकदा गङ्गामुत्तीर्य ता महिष्यो वल्लक्षेत्रं भक्षितुं चलिताः। ता निवर्तयितुमुत्सुकेन नमस्कारमुच्चार्य जलमध्ये झम्पा दत्ता। अदृश्यकाष्ठेनोदरे विद्धः निदानेन मृत्वा अर्हद्दास्याः श्रेष्ठिन्याः पुत्रः सुदर्शननामा जातः। अतिरूपवान् सकलविद्योपेतः सागरसेनासागरदत्तयोः पुत्रीं मनोरमां परिणीतवान्। एकदा वृषभदासश्रेष्ठी सुदर्शनं निजपदे धृत्वा समाधिगुप्तिमुनिसमीपे मुनिरभूत्। सुदर्शनो राज्ञा पूजितः। सर्वजनप्रसिद्धो जातः। एकदा राज्ञा सहोद्यानक्रीडायां महाविभूत्यागतः। अभयमतिराज्ञ्या दृष्टः। विह्वलीभूतया धात्री पृष्टा—को ऽयम्। तया कथितम्-राजश्रेष्ठी सुदर्शनो ऽयम्। पुनस्तयोक्तम्—यद्यमुं मे मेलयसि तदा जीवामि, अन्यथा म्रिये। धात्र्या चावश्यं मेलयामीति समुद्धीर्य सा गृहं नीता। कुम्भकारपार्श्वे च गत्वा पुरुषप्रमाणो मृत्तिकापुत्तलकः कारितः। वस्त्रेण वेष्टयित्वा राज्ञीपार्श्वे गृहीत्वा गच्छन्ती सा द्वारपालकैर्धृता। कौटिल्येन पुत्तलकं प्रक्षिप्य भग्नमालोक्य तया ते भणिताः—राज्ञी पुरुषविधानं करोति, अद्य बुभुक्षितास्य पूजां कारयिष्यति। अयं च भवद्भिर्भग्न अतो भवतः सर्वान्प्रभाते मारयिष्यामि। ततो भीतैस्तैरुक्तम्—क्षमां कुरु। को ऽपि कदाचिदपि त्वां न वारयतीति। एवं द्वाररक्षकान्नियन्त्रित्वा अष्टम्यामर्धरात्रे श्मशाने कायो-

त्सर्गस्थः सुदर्शन आनीय तस्याः समर्पितः। आलिङ्गनादिविज्ञानैस्तया न क्षोभितः। पाणिपात्रे प्रभाते निस्तीर्णोपसर्गः पारणं करिष्यामीति प्रतिज्ञामादाय काष्ठीभूय स्थितः। अभयमत्या आत्मानं नखैर्विदार्य श्रेष्ठिना बलाद्विध्वंसिताहमिति प्रभाते फूत्कारः कृतः। एतदाकर्ण्य राज्ञा श्रेष्ठी श्मशाने नीत्वा मार्यतामित्युक्तम्। तत्र राजपुरुषेण यो ऽसिस्तस्य मुक्तः स तस्य कण्ठे पुष्पमाला बभूव। देवैस्तस्य शील-प्रशंसां कृत्वा पुष्पवृष्ट्यादिकं कृतम्। नगरजनेन राज्ञा च क्षमां कारितः। सुकान्तपुत्रं निजपदे धृत्वा विमलवाहनमुनिपार्श्वे तपो गृहीत्वा केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतः॥

[२४] खण्डश्लोकैरित्यादि।

[जइ दा खंडसिलोगेण जमो मरणादो फेडिदो राया।
पत्तो य सुसामण्णं किं पुण जिणउत्तसुत्तेणं ॥७७२॥]

अस्य कथा—औढ्विषये धर्मनगरे राजा यमः सर्वशास्त्रज्ञो, राज्ञी धनवती, पुत्रो गर्दभः, पुत्री कोणिका, अन्यासां राज्ञीनां पुत्राणां पञ्चशतानि, मन्त्री दीर्घनामा। निमित्तिना आदेशः कृतः—यः कोणिकां परिणेष्यति स सर्वभूमिपतिर्भविष्यति। ततो यमेन कोणिका भूमिगृहे प्रच्छन्ना धृता, प्रतिचारका निवारिताः, न कस्यापि कथयन्ति ताम्। एकदा पञ्चशतयतिभिः सहागतस्य सुधर्ममुनेर्वन्दनार्थं जनं गच्छन्तमालोक्य यमो ज्ञानगर्वान्मुनीनां निन्दां कुर्वाणस्तत्समीपे गतः। मुनिज्ञाननिन्दाकरणात्तत्क्षणादेव बुद्धिनाशस्तस्य जातः। ततो निर्मदो मुनीन्प्रणम्य धर्ममाकर्ण्य गर्दभाय राज्यं दत्त्वा पञ्चशतपुत्रैः सह मुनिरभूत्। पुत्राः सर्वे सर्वश्रुतधरा जाताः। यममुनेस्तु पञ्च-नमस्कारमात्रमपि नायाति। गुरुणा गर्हितो लज्जितो गुरुं पृष्ट्वा तीर्थमेकाकी गतः। तत्र यवक्षेत्रमध्ये गर्दभरथेन गच्छत एकपुरुषस्य

गर्दभा यवभक्षणार्थं नयन्ति पुनर्निक्षिपन्ति। तानित्थमवलोक्य यममुनिना खण्डश्लोकः कृतः—

कड्ढसि पुणु णिक्खेवसि रे गद्दहा जवं पेच्छसि[1] खादहु[2] ।

अन्यदा तस्य मार्गे गच्छतो लोकः पुत्राणां क्रीडतां काष्ठकोणिका बिले पतिता। ते चातीव पश्यन्त इतस्ततो धावन्ति। यममुनिना तामवलोक्य खण्डश्लोकः कृतः —

अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे एत्थाणिबुड्डिया च्छिद्दे अच्छइ कोणिया।

एकदा मण्डूकं भीतं पद्मिनीपत्रतिरोहितसर्पाभिमुखं गच्छन्तमालोक्य खण्डश्लोकः कृतः—

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुम्ह।

एतैस्त्रिभिः खण्डश्लोकैः स्वाध्यायवन्दनादिकं कुर्वन्विहरमाणो धर्मनगरोद्याने कायोत्सर्गेण स्थितः। तमाकर्ण्य दीर्घगर्दभौ शङ्कितौ तं मारयितुं रात्रौ गतौ तत्पृष्ठस्थितौ। दीर्घस्तन्मारणार्थं पुनः पुनरसिमाकर्षति मुनिवधशङ्कितत्वान्न हन्ति। तथा गर्दभोऽपि तस्मिन्प्रस्तावे मुनिना स्वाध्यायं गृह्णता प्रथमः खण्डश्लोकः पठितः। कड्ढसि पु–। तमाकर्ण्य गर्दभेन दीर्घो भणितः—लक्षितौ मुनिना। द्वितीयखण्डश्लोकमाकर्ण्य भणितं गर्दभेन—भो दीर्घ मुनिर्न राज्यार्थमागतः किं तु कोणिकां कथयितुमागतः। तृतीयश्लोकमाकर्ण्य गर्दभेन चिन्तितम्—दुष्टोऽयं दीर्घो मां हन्तुमिच्छति। मुनिः स्नेहान्मम बुद्धिं दातुमागतः। ततो द्वावपि तौ मुनिं प्रणम्य धर्ममाकर्ण्य श्रावकौ जातौ। यममुनिरपि च वैराग्यं गतः श्रमणत्वं विशिष्टं चारित्रं प्राप्य सप्तर्द्धियुक्तो जातः॥

---

१) पच्छसि

२) खादिहु

[२५] दृढशूर्प इत्यादि ।

[दढसुप्पो सूलहदो पंचणमोक्कारमेत्तसुदणाणे ।
उवजुत्तो कालगदो देवो जादो महड्ढीओ ॥७७३॥]

अस्य कथा—उज्जयिनीनगर्यां राजा धनपालो, राज्ञी धनवती। वसन्तोत्सवे तस्या दिव्यं हारमवलोक्य वसन्तसेनया गणिकया चिन्तितम्—किमनेन विना जीवितेनेति गृहे गत्वा स्थिता। सा रात्रौ दृढशूर्पचौरेणागत्य पृष्टा—किं प्रिये रुष्टासि। तयोक्तम्—तव न रुष्टा किं तु यदि राज्ञीहारं मे देहि तदा जीवामि नान्यथा। तां समुद्धीर्य रात्रौ हारं चोरयित्वा निर्गतः। हारोद्द्योतेन यमपाशेन कोट्टपालेन धृतो राजवचनेन शूलेन प्रोतः। प्रभाते धनदत्तश्रेष्ठी चैत्यालये गच्छन् तेन भणितः—दयालुस्त्वं तृषितस्य मे जलपानं देहि। तस्योपकारमिच्छता भणितं श्रेष्ठिना—द्वादशवर्षैरद्य मे गुरुणा महाविद्या दत्ता जलमानयतः सा मे विस्मरति। यद्यागतस्य तां मे कथयसि तदा आनयामि जलम्। तेनोक्तमेवं करोमि। ततः श्रेष्ठी पञ्चनमस्कारांस्तस्य कथयित्वा गतः। दृढशूर्पस्तानुच्चारयन् स्मरन्मृत्वा सौधर्मे देवो जातः। हेरिकैः राज्ञः कथितम्—देव, धनदत्तश्रेष्ठी चोरसमीपं गत्वा किंचिन्मन्त्रितवान्। श्रेष्ठिगृहे तस्य द्रव्यं तिष्ठतीति पर्यालोच्य राज्ञा श्रेष्ठिधरणकं गृहरक्षणं चाज्ञातम्। तेन देवेनागत्य प्रातिहार्यकरणार्थं श्रेष्ठिगृहद्वारे लकुटिधरपुरुषरूपं धृत्वा तद्गृहे प्रविशन्तो राजपुरुषाः निवारिताः तेन ते प्रविशन्तो लकुटेन मायया मारिताः। एवं वृत्तान्तमाकर्ण्य राज्ञा ये ऽन्ये बहवः प्रेषितास्ते ऽपि तथा मारिताः। बहुलेन कोपाद्राजा स्वयमागतः। बलं समस्तं तथैव मारितम्। राजा नष्टः। तेन भणितो यदि श्रेष्ठिनः शरणं प्रविशसि तदा रक्षामि त्वां नान्यथेति। ततः श्रेष्ठिन्, रक्ष रक्षेति ब्रुवाणो राजा वसतिकायां श्रेष्ठिसमीपं गतः । श्रेष्ठिना

च कस्त्वं किमर्थमेतत्कृतमिति पृष्टः। श्रेष्ठिनं प्रणम्य तेन कथितम्—सो ऽहं दृढशूर्पो भवत्प्रसादात् सौधर्मे महर्द्धिकदेवो जातः। तव प्रातिहार्यार्थमेतत्कृतम्॥

[२६] चाण्डालः सुरपूजामित्यादि।

[पाणो वि पाडिहेरं पत्तो छूढो वि सुंसुमारहदे।
एक्केण अप्पकालक्कदेण ऽहिंसावदगुणेण ॥८२२॥]

अस्य कथा—वाराणसीनगर्यां राजा पाकशासनः सकलदेशे मरकं श्रुत्वा कार्तिकशुक्लाष्टम्याः प्रभृत्यष्टदिनानि शान्त्यर्थं जीवामारिघोषणां कारितवान्। सप्तव्यसनाभिभूतेन राजश्रेष्ठिपुत्रेण धर्मनाम्ना उद्यानवने चरन् राजकीयमेंढ्रको मारयित्वा पिशितोपयोगं कृत्वा अस्थीनि गर्तायां निक्षिप्य मृत्तिकया पिधाय गतः। मेंढ्रकादर्शने राज्ञा सर्वत्र चरा निरूपिताः। रात्रौ चोद्यानपालकेन स्वभार्याया मेंढ्रकमारणवृत्तान्तः कथितः। तं श्रुत्वा चरेण राज्ञः कथितम्—राज्ञा च श्रेष्ठिपुत्रस्य धर्मनाम्नः शूलारोहणं कार्यतामिति यमदण्डकोट्टपालो भणितः। तेन च शूलप्रदेशे तं नीत्वा यमपालमातङ्गस्तन्मारणार्थमाकारितः। तेन च सर्वौषधीमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य चतुर्दश्यां जीवं न मारयिष्यामीति व्रतं गृहीतम्। ततो ग्रामं गत इति कथय त्वमिति भार्यां भणित्वा गृहकोणे संलिप्य[1] स्थितः। तया तथा कथिते बहुसुवर्णयुक्तचौरमारणे स पापो ऽद्य गत इति यमदण्डवचनात्तया हस्तसंज्ञया दर्शितः। निःसारितो ऽपि वदत्यद्य न मारयामि। राज्ञो ऽप्यग्रे नीतो देवाद्य न मारयामि चतुर्दश्यां जीवघाते ममावग्रहो ऽस्तीति वदति। ततः कुपितेन राज्ञोक्तं द्वावपि सुंसुमारह्रदि निक्षिपेति। यमदण्डेन द्वावपि तत्र निक्षिप्तौ धर्मः सुंसुमारैर्भक्षितः। यमपालो व्रतमाहात्म्याज्जलदेवताभिः सिंहासने धृत्वा पूजितः॥

१) संलिप्य

[२७] अनृतवचनेन नरकं वसुश्च गत इत्यादि ।

[पावस्सागमदारं असच्चवयणं भणंति हु जिणिंदा ।
हिदएण अपावो वि हु मोसेण गदो वसू णिरयं ।।८४९।।]

अस्य कथा—अयोध्यायां राजा जयो, राज्ञी सुरक्ता, तत्पुत्रो वसुः, उपाध्यायः क्षीरकदम्बस्तद्भार्या स्वस्तिमती, पुत्रः पर्वतो, वैदेशिको नारदश्च त्रयो ऽपि क्षीरकदम्बाचार्यपार्श्वे पठन्ति । पर्वतस्य विशिष्टपरिज्ञानादर्शनात् स्वस्तिमती रुष्टा निजपुत्रं न पाठयसीति नित्यं भणति । उपाध्यायेनोक्तम्—जडो ऽयम् । तथा हि कपर्दकान् दत्त्वा त्रयोऽपि छात्रा भणिताः । कपर्दकैश्चणकान् भक्षित्वा कपर्दकांश्च गृहीत्वा आगच्छथ । पर्वतः कपर्दकैश्चणकान् भक्षित्वा रिक्तो गृहमागतः । वसुर्नारदौ चार्घपृच्छामिषेण बहुस्थानेषु चणकान् भक्षित्वा कपर्दकैः सहितावागतौ । तथा एकान्ते यत्र को ऽपि न पश्यति तत्र छागवधप्रेषणे गर्तायां छागं वधित्वा पर्वत आगतः । वसुनारदौ सर्वत्र यमादित्यादयश्च पश्यन्तीति मत्वा जीवन्तौ छागौ गृहीत्वा आगतौ । ततो दृष्टं पर्वतजडत्वमित्युपाध्यायेन भणिता । एकदा कृतापराधो वसुरुपाध्यायेन यष्ट्या कुट्यमानः स्वस्तिमत्या रक्षितः । तेन च वरो दत्तस्ततस्तयोक्तम्—यदा याचयिष्यामि तदा दद्यास्त्वम् । एकदाटव्यां चत्वारो ऽपि बृहदारण्यकशास्त्रं पठन्तः स्थिताः । तत्रैव प्रदेशे स्वाध्यायं गृहीतुं चारणमुनी अवतीर्णौ । लघुमुनिनोक्तम्—भगवन्, पश्य क्षेत्रशुध्द्या एते पठन्ति । भगवतोक्तमेतेषु द्वौ नरकगामिनौ । तद्वचनमाकर्ण्य क्षीरकदम्बश्छात्रान् गृहं प्रेष्य मुनिं प्रणम्य कौ नरकगामिनाविति मुनिं पृष्ट्वा वसुपर्वताविति विरक्तबुद्धिरसौ मुनिर्जातः । पर्वतः पञ्चशतछात्राणामुपाध्यायो जातः । नारदो देशान्तरं गतः । जयो वसवे राज्यं दत्त्वा मुनिरभूत् । एकदाटव्यामेकेन पापर्द्धिकेन मृगस्य बाणो मुक्तः । आकाशस्फुटिके

लगित्वा व्याघुटितः । किं कारणमिति वितर्क्य तत्र गत्वा तं स्पृष्ट्वा तं ज्ञात्वा वसोः कथितम् । वसुश्च प्रच्छन्नवृत्त्या तं गृहमानयत् विष्टरं कृत्वा सभायां तस्योपरि गगने स्थितः । एकदा नारदः पर्वतपार्श्वे आगतः । तत्र प्रस्तावे अजैर्यष्टव्यमिति वाक्यम् अजैश्छागैरिति व्याख्यातं पर्वतेन । नारदेनोक्तम्—अजैस्त्रिवर्षैर्धान्यैरित्युपाध्यायव्याख्यातम् । विवादे सति जिह्वाच्छेदप्रतिज्ञां कृत्वा वसुवचनं प्रमाणीकृत्य स्थितौ । तच्छ्रुत्वा स्वस्तिमत्या भवतोर्भणितो विरूपकं त्वया व्याख्यातं तव पिता सदा त्रिवार्षिकधान्यैरेव यागं करोति । ततस्तया गत्वा वसुर्वरं प्रार्थितः । पर्वतवचनं त्वया प्रमाणीकर्तव्यमिति । प्रभाते द्वयोर्वचनमाकर्ण्य उपाध्यायव्याख्यानं स्मरतापि पर्वतवचनं प्रमाणीकृतम् । ततः सिंहासनात्पतितो नारदेनोपाध्यायार्थमद्यापि भणेति भणितो ऽपि पर्वतवचनं प्रमाणमिति भणति । ततो भूमौ प्रविष्टो मृत्वा सप्तमनरकं गतः ।

[२८] परधनहरणमनीषः श्रीभूतिरित्यादि ।

[परदव्वहरणबुद्धी सिरिभूदी णयरमज्झयारम्मि ।
होदूण हदो पहदो पत्तो सो दीहसंसारं ॥ ८७४ ॥]

अस्य कथा—सिंहपुरे राजा सिंहसेनो, राज्ञी रामदत्ता, पुरोहितः श्रीभूतिः सर्वलोकविश्वसनीयः । पद्मषण्डपत्तने वणिक् सुमित्रो, भार्या सुमित्रा, पुत्रः समुद्रदत्तः । तौ वाणिज्येन सिंहपुरमायातौ पञ्च रत्नानि श्रीभूतिपार्श्वे धृत्वा तातपत्नीं निजभार्यां च धृत्वा रत्नद्वीपं गतौ । द्रव्यमुपार्ज्य व्याघुटितौ समुद्रमध्ये स्फुटिते प्रवहणे सुमित्रादयो मृताः । समुद्रदत्तः कथमपि सिंहपुरनगरमागतो जननीभार्ययोर्मिलित्वा श्रीभूतिपार्श्वे रत्नार्थी गतः । तेन च तमागच्छन्तमालोक्य लोभं गतेन पार्श्वस्थलोकानां कथितम्—पुरुषो ऽयं

स्फुटितप्रवहणैर्ग्रहिलः मां प्रणम्य रत्नानि याचिष्यति। तथैव याचनं कुर्वन्नसौ लोकानां प्रत्ययं पूरयित्वा ग्रहिलो भणित्वा निस्सारितः। श्रीभूतिना मम रत्नानि गृहीतानीति सर्वत्र पूत्कारं कृत्वा राजकुलसमीपस्थः पश्चिमरात्रौ पूत्कारं करोतीति षण्मासेषु गतेषु राज्ञ्या राजा भणितः—नायं ग्रहिलो नित्यमेतादृशवचनोच्चारणात्। ततो राज्ञा स एकान्ते पृष्टस्तेन च पूर्ववृत्तान्तः कथितः। ततो रत्नग्रहणोपायो रचितः। सिंहसेनशिवभूत्योर्द्यूते रामदत्तया जयपाली तया शिवभूतिर्भोजनं पृष्टस्तेन कथितं अतस्तदेव साभिज्ञानं कृत्वा रामदत्तया निपुणमतिविलासिनी शिवभूतिभार्यायाः पार्श्वे या ग्रहिलरत्नानि याचितुं प्रेषिता। तया च न दत्तानि। पुनर्नामाङ्कितमुद्रिकासाभिज्ञानेन याचितानि। तथापि न दत्तानि। पुनर्यज्ञोपवीताभिज्ञानेन याचितानि ततो भीतया समर्पितानि। तया राज्ञो दर्शितानि। तेन च निजबहुरत्नानां मध्ये क्षिप्त्वा ग्रहिलो भणितो निजरत्नानि गृहाणेति। तेन गृहीतानि। ततो रुष्टेन राज्ञा गर्दभारोहणादिना शिवभूतिर्नगरमध्ये हतविप्रहतीकृतो मृत्वा दीर्घसंसारी जातः॥

[२९] वारत्रिको ऽपि कर्म व्यधादित्यादि।

[णीचं पि कुणदि कम्मं कुलपुत्तदुगुंछियं विगदमाणो।
वारत्तिगो वि कम्मं अकासि जह लंघिया हेदुं॥९०९॥]

अस्य कथा—अहिच्छत्रनगरे ब्राह्मणः शिवभूतिर्भार्या वसुशर्मा, पुत्रौ सोमशर्मशिवशर्मौ च। वेदं पठता ज्येष्ठेन कनिष्ठो वरत्रयाहतः। तत्प्रभृति शिवशर्मणो वारत्रिक इति नाम जातम्। तेन नाम्ना आहूयमानो निर्विण्णो निर्गत्य श्रावस्त्यां दमधराचार्यपार्श्वे मुनिर्भूत्वा महाटव्यां मासोपवासादिविधिना तपः करोति। एकदा

सागरदत्तसार्थवाहस्याग्रे गङ्गदत्तनटपुत्रीं मदनवेगां नृत्यन्तीमालोक्य चर्यां गतो भग्नः। तां परिणीय द्वादशवर्षैस्तद्विज्ञाने ऽप्यतिदक्षो भूत्वा राजगृहनगरे श्रेणिकस्याग्रे वंशोपरि खङ्गपञ्जरे तया सह नृत्यं कुर्वन्नाकाशे विद्याधरयुगलमालोक्य जातिस्मरो जातः। विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां प्रियंकरनगरे राजा प्रियंकरो राज्ञी प्रभावती तत्पुत्रो ऽहं पूर्वभवे प्रियंकरनामा सर्वविद्यापारगः। ततः भोगं भुक्त्वा तपो गृहीत्वा सौधर्मे देवो भूत्वा च्युत्वैष जातः। इयं च मम विद्याधरी देवी च भार्यासीदिति सापि तत्रैव जातिस्मरी जाता। ततस्तयोर्विद्याधरभवविद्याः समायाताः। तास्त्यक्त्वा वारत्रिको दमधराचार्यसमीपे तपो गृहीत्वा केवलमुत्पाद्य निर्वाणं गतः॥

[३०] पादाङ्गुष्ठमसन्तं गणिकायां गोरसंदीप इत्यादि।

[बारस वासाणि वि संवसित्तु कामाउरो य णासीय।
पादंगुट्ठमसंतं गणियाए गोरसंदीवो ॥ ९१५ ॥]

अस्य कथा—कुलालदेशे श्रावस्तीनगर्यां राजा दीपायनः। तेन चैत्रोत्सवे उद्याने मञ्जरिताम्रवृक्षमालोक्य एका मञ्जरी कर्णपूरीकृता। तमालोक्य लोकैः कर्णपूरं कुर्वद्भिश्च आम्रवृक्षो निर्मूलं नाशितः। व्याघुटता राज्ञा तस्य नाशमालोक्य सर्वमनित्यमिति चिन्तयित्वा उदीर्णबलवाहनपुत्राय राज्यं दत्त्वा उत्तरभूतिमुनिसमीपे तपो गृहीत्वा गुरुणा सहोज्जयिन्यां गतः। उद्याने कोकिलालापं श्रुत्वोत्तरमुनिनोक्तम्—यो मुनिरद्योज्जयिन्यां चर्यायां यास्यति तस्य व्रतभङ्गो भविष्यति। तत उपोषिताः केचित्केचिदन्यत्र चर्यार्थं गताः। दीपायनमुनिस्तु गिरौ आतपेन योगं कृत्वा गुरुवचनमश्रुत्वा उज्जयिन्यां चर्यायां प्रविष्टः। तत्रोदीर्णबलवाहनभयेन खातिकायां

खन्यमानायां राजाज्ञया निःसरत्प्रविशत्सर्वलोकः खातिकां खान्यतोऽसावपि भणितः—भट्टारक, खातिकायां घातं देहि। स चागच्छन् दास्यामीत्युक्त्वा अग्रे गतः। अथ वाराणसीनगर्यां राजा श्रीधर्मो, राज्ञी श्रीमती, पुत्री श्रीकान्ता। सा उज्जयिन्यां जितशत्रुणा परिणीता। तस्याः कायसुन्दरी विलासिनी श्रीधर्मराजेन दत्ता। सा जितशत्रोः प्राणप्रिया जाता। श्रीकान्तया पितुः कथितम्—पित्रा च संकेतिनापि तेन कायसुन्दर्याः पादाङ्गुष्ठे नखे विषं संचारितम्। तेन दुर्गन्धो नाडीव्रणो जातः। ततो जितशत्रुणा परिहृता सुवर्णमयाङ्गुष्ठेन गणिकावृत्त्या स्थिता। तां दृष्ट्वा सश्रृङ्गारां तदासक्तचित्तः स मुनिर्व्याघुटितो लोकवचनाद् भूमिविहारिणीजलवाहिनीविद्याभ्यामभिमन्त्र्य कूर्दालेन खातिकायां घातं दत्त्वा गतः। कूर्दालजलेनोपद्रुतां नगरीं तां वार्तां च श्रुत्वा सकललोकैः सह गत्वा राजा तन्मुनेः पादे लग्नः कायसुन्दर्या उपरि सस्नेहां तदीयदृष्टिं दृष्ट्वा राज्ञा तदभिप्रायमालक्ष्य गृहे नीत्वा सा तस्य समर्पिता। प्रधानपदं च दत्तम्। भणिता सा—यद्यस्य किंचिदनिष्टं भवति तदा तव निग्रहं करिष्यामीति। एकदा द्वीपान्तराद्रत्नपादुके राज्ञः प्रभृतेरानीते राज्ञा च ते गौरसंदीपस्य दत्ते तेन च तत्परिधानार्थं कायसुन्दरीचरणसुवर्णाङ्गुष्ठेन धृत्वा आकृष्टः। निःसृते तस्मिन्नाडीव्रणमालोक्य वैराग्यं गतो विमलचन्द्राचार्यसमीपे मुनिर्भूत्वापि तामेव स्मरति। सा च राजनिग्रहभयाद्गले चीरं बद्ध्वा उकल्मनं कृत्वा मृता। राज्ञा च कुपितेन तस्या अग्निदानं निषिद्धम्। ततः श्मशाने घातिता कुथिता च। गुरुणा ज्ञानिना भ्रमणिकायां गतेन तस्यां दिशि गत्वा तले बृहद्वेलां गौरसंदीपमुनिर्धृतः। तद्गन्धेन पीडितः आगतय मुनिनोक्तम्—इयं सा त्वदीया वल्लभा। इदानीमेतस्याः किमिति तव गन्धोऽपि न प्रतिभासत इत्युक्त्वा सा तस्य दर्शिता। ततो निःशल्यं तपः कृत्वा परलोकं गतः॥

[३१] कडारपिङ्गो गतो नरकम् ।

[इहलोए वि महल्लं दोसं कामस्स वसगदो पत्तो ।
कालगदो वि य पच्छा कडारपिंगो गदो णिरयं ॥९३५॥]

अस्य कथा—काम्पिल्यनगरे राजा नरसिंहः, मन्त्री सुमतिः, भार्या धनश्रीः, पुत्रः कडारपिङ्गः, राजश्रेष्ठी कुबेरदत्तः। श्रेष्ठिनी प्रियङ्गुसुन्दरी अतिशयवद्रूपलावण्ययौवनयुक्ता। तां दृष्ट्वा स कडारपिङ्गो विह्वलीभूतो गृहे गत्वा स्थितो मात्रा पृष्टः। किमीदृशी पुत्र तवावस्था जाता। तेन कथितम्—श्रेष्ठिन्या विना म्रियेऽहम्। ततस्तया सुमतिमन्त्रिणः कथितम्। तेन च कपटेन भणितो राजा। देव रत्नद्वीपात्किंजल्पनामा[नं] पक्षिणं श्रेष्ठी समानयतु। तत्प्रभावेन व्याधिमरणपरचक्रादयो न भवन्ति। ततो राज्ञा तमानेतुं स प्रेषितः। तेन च निजगमनं प्रियङ्गुसुन्दर्याः कथितम्। तया भणितम् कडारपिङ्गो मे शीलनाशं कर्तुमिच्छति। तदर्थं तव गमनमिति। एतदाकर्ण्य शुभदिने प्रवहणं प्रेष्य श्रेष्ठी व्याघुट्य प्रच्छन्नो गृहे स्थितः। कडारपिङ्ग आगतो वर्चोगृहे निःसन्धि[1]मञ्चके प्रच्छदपटिकाप्रच्छादिते उपविष्टो वर्चोगृहान्तःपतितः षण्मासांस्तत्र स्थितः। सर्वपिच्छपक्षान् कृत्वा नगरक्षोभेनागते प्रोहणे स कडारपिङ्गो राजसमीपे नीतः। पूर्ववृत्तान्तः कथितः। गर्दभारोहणादिना कडारपिङ्गः कदर्थितो मृतो नरकं गतः ॥

[३२] साकेतपुराधिपतिर्देवरतिरित्यादि ।

[साकेतपुराधिवदी देवरदी रज्जसोक्खपब्भट्ठो ।
पंगुलहेदुं छूढो णदीए रत्ताए देवीए ॥९४९॥]

अस्य कथा—अयोध्यायां राजा देवरतिः, राज्ञी रक्ता। स

---

१) निसिन्धु

तस्यामासक्तः शत्रुभिरभिभूयमानोऽपि राजकार्यं किंचिदपि न चिन्तयति। ततो जयसेनकुमारं राज्ये प्रतिष्ठाप्य मन्त्रिभिः स रक्तया सह निर्द्धाटितोऽटवीं गतः। तस्याः बुभुक्षितायाः निजोरुमांसं संस्कृत्य तेन दत्तम्। तृषितायाश्च निजबाहुसिरारक्तमोषध्या जलं कृत्वा दत्तम्। एवमागत्य यमुनानदीतीरे वृक्षतले तां धृत्वा तस्याः भोजनमानेतुं ग्रामाभ्यन्तरं गतः। तद्वृक्षसमीपे वाटिकासेचनार्थमरघट्टं खेटयन्तं पङ्गुं गीतं कुर्वन्तं दृष्ट्वा सा तस्यासक्ता। ततस्तयोक्तम्—मामिच्छ त्वम्। पङ्गुनोक्तम्—त्वदीयभर्तुर्बिभेमि। तयोक्तम्—विस्रब्धो भव मारयामि लग्ना तम्। एतस्मिन्प्रस्तावे स भोजनं गृहीत्वा आगतः। तया च रोदनं कर्तुमारब्धम्। ततस्तेनोक्तम्—किमर्थं प्रिये रोदनं करोषि। तयोक्तम्—तवायुर्ग्रन्थिदिनेऽद्य हताशा किं करोमि। तेनोक्तम्—किमनेन प्रिये त्वयैव सर्वं मम पूर्यते। तथाप्याचारमात्रं करोमीत्युक्ता तं त्रिग्रन्थितपुष्पैर्यमुनातीरे तं बन्धयित्वा नद्यां प्रक्षिप्य पङ्गुना सह निर्व्याकुला स्थिता। देवरतिश्च नदीप्रवाहेण गत्वा कथमपि नदीतोयान्निःसृत्य मङ्गलपुरे बहिर्वृक्षतले सुप्तः। तत्र व्यपत्यो राजा श्रीवर्धनो मृतः। ततो विधिना मन्त्रिभणितपट्टहस्तिना पूर्णकलशेन स्नापितो राज्ये स्थापितः। स्त्रियं न पश्यति। पङ्गुलानां किंचिन्न ददाति। रक्तापि चोल्लके पङ्गुं कृत्वा स्कन्धेन परिवहन्ती मम परिणीतः पतिरिति लोकानां कथयन्ती लोकैः सती भण्यमाना मङ्गलपुरे समायाता। राजसिंहद्वारे च गता प्रतीहारेण राज्ञो विज्ञप्तः। सतीपङ्गुलौ सुस्वरौ द्वारि तिष्ठतः। काण्डपटान्तर्धानेन[1] तदीयं वचनमाकर्ण्य शब्देन परिज्ञाय सोपहासं तदीयं सतीत्वं प्रशस्य प्रविचार्य तस्यैव जयसेनपुत्रस्य राज्यं समर्प्य दमधराचार्यसमीपे तपो गृहीत्वा स्वर्गं गतः॥

---

१) कण्डपाटां

[३३] विच्छेदेर्ष्यावसतो गोपवतीमस्तकमित्यादि ।

[ईसालुयाए गोववदीए गामकूडधूदियासीसं ।
छिण्णं पहदो तध भल्लएण पासम्मि सीहबलो ॥९५०]

अस्य कथा—पलाशग्रामे विषयिकसिंहबलो, भार्या गोपवती तच्चौरिकया पद्मिनीखेटग्रामे सिंहसेनग्रामकूटस्य पुत्रीं सुभद्रां परिणीतवान् । तच्छ्रुत्वा गोपवती कोपात्तत्र गत्वा तद्गृहं प्रविश्य मातृकाग्रे सुप्तायाः सुभद्राया मस्तकं गृहीत्वा व्याघुटिता । प्रभाते सुभद्रारुण्डं दृष्ट्वा लज्जित्वा पलाशग्रामे आगतः । गोपवत्या चाभ्यागतस्वागतं कृत्वा भोजनं दत्तम् । तच्चोद्वेगान्न रोचते तस्य । ततस्तयोक्तम्—सुभद्राया मुखं पश्य येन भोजनं रोचत इत्युक्त्वा तन्मस्तकं तद्भाजने क्षिप्तम् । ततो राक्षसीयमिति मत्वा भयत्रस्तो नश्यच्छल्येन विदार्य मारितः ॥

[३४] वीरमती संज्ञयेत्यादि ।

[वीरवदीए सूलगदचोरदट्ठोट्ठिगाए वाणियगो ।
पहदो दत्तो य तहा छिण्णो ओट्ठो त्ति आलविदो ॥९५१॥]

अस्य कथा—राजगृहनगरे अतीवेश्वरः श्रेष्ठिधनमित्रः, श्रेष्ठिनी धारिणी, पुत्रो दत्तः । भूमिगृहनगरे आनन्दमित्रवत्योः पुत्रीं वीरवतीं परिणीतवान् । तत्रैव चोरः प्रचण्डो ऽङ्गारनामा तस्यानुरक्ता वीरवती दत्ता । रत्नद्वीपे गत्वा बहुभिर्दिवसैः बहुक्रियाणकानि गृहीत्वा आगतः । भार्याया उत्कण्ठितो निजविडादग्रे [?] भूत्वा श्वशुरगृहं गच्छन्नटव्यां सहस्रभटचोरेण दृष्टः । ततः स कौतूहलात्तदीयं कौतुकं द्रष्टुं तेन सहागतः । श्वशुरेणागतस्य महोत्सवः कृतः । तस्मिन्नेव दिने चौरिकायामङ्गारचोरः प्राप्तो राज्ञा शूलेन प्रोतः ।

रात्रौ सुप्तं दत्तं त्यक्त्वा वीरवत्या चौरसमीपं गच्छन्त्या पृष्ठतः सहस्रभटस्यागच्छतः पादसंचारं ज्ञात्वा मुक्तखड्गघातेन तदीयाङ्गुलिर्विटप्ररोहश्च छिन्नः। चौरेण सा भणिता—प्रिये मम म्रियमाणस्यालिङ्ग्य मुखेन ताम्बूलं देहि। मृतकनिचयं कृत्वा तस्योपरि चटित्वा मुखताम्बूलदानकाले स्रंसितो मृतकनिचयस्तेन म्रियमाणेन खण्डितो ऽधरस्तन्मुखे स्थितः। गृहमागत्य तया दत्तसमीपे पूत्कारः कृतो ऽनेन ममैतत्कृतमिति। राज्ञा दत्तो मार्यमाणः सहस्रभटेन सर्वं वृत्तान्तं कथयित्वा रक्षितः।

[३५] सुरतस्य दयितस्य महिलाया इति।

[साधुं पडिलाहेदुं गदस्स सुरयस्स अग्गमहिसीए।
णट्ठं सदीए अंगं कोढेण जहा मुहुत्तेण॥१०६१॥]

अस्याः कथा—अयोध्यानगर्यां राजा सुरतः, पञ्चशतान्तःपुराग्रमहिषी सती। तस्यामासक्तो महाराजकार्ये महामुन्यागमने च मां विज्ञापयेस्त्वं नान्यथेति प्रतीहारं भणित्वा अन्तःपुरे प्रविश्य स्थितः। दमधरधर्मरुचिमुनी मासोपवासिनौ चर्यायां प्रविष्टौ। सत्या मण्डितमुखे गोरोचनातिलकं कुर्वाणस्य राज्ञः प्रतीहारेण विज्ञप्तम्—यावत्तिलको न शुष्यति तावद्देवि मुनिचर्यां कारयित्वा आगच्छामि लग्नो मा रोषं कुर्यास्त्वमित्युक्त्वा गतः। मुनी स्थापयित्वा चर्यां कारयित्वा शीघ्रमायातः। मुनिनिन्दाफलेन सत्या उदुम्बरकुष्ठगृहीतं शरीरमालोक्य सुरतो मुनिरभूत् सती च दीर्घं संसारं गता।

[३६] व्याघ्रभयादित्यादि।

[वग्घपरद्धो लग्गो मूले य जहा ससप्पबिलपडिदो।
पडिदमधुबिंदुभक्खणरदिओ मूलम्मि छिज्जंते॥

तह चेव मच्चुवग्घपरद्धो बहुदुक्खसप्पबहुलम्मि ।
संसारबिले पडिदो आसामूलम्मि संलग्गो ॥
बहुविग्घमूसगेहिं आसामूलम्मि तम्मि छिज्जंते ।
लेहदि विभयविलज्जो अप्पसुहं विसयमधुबिंदुं ॥१०६३–६५॥]

अस्य कथा—कश्चित्पुरुषोऽटव्यां व्याघ्रेण खेदितोऽन्धकूपे पतितस्तृणस्तम्बे लग्नो व्याघ्राभिहितकूपतटागतवृक्षशाखाकम्पादुच्चलितमधुमक्षिकाभिः खाद्यमानसर्वाङ्गो मुखे पतितमृष्टमधुबिन्दुः स्तम्भमूलं च कृष्णश्वेतमूषिकौ कर्तयतः तले चतुर्दिशासु चत्वारो महासर्पा एतत्सर्वमविगणयन् मधुबिन्दुमेव वाञ्छति ॥

[३७] जातश्च चारुदत्त इत्यादि ।

[जादो खु चारुदत्तो गोट्ठीदोसेण तह विणीदो वि ।
गणियासत्तो मज्जासत्तो कुलदूसओ य तहा ॥१०८२॥]

अस्य कथा—चम्पानगर्यां राजा शूरसेनः, श्रेष्ठी भानुः, श्रेष्ठिनी सुभद्रा पुत्रार्थं कुदेवतानां सेवां करोति । एकदा चैत्यालये चारणमुनिं वन्दित्वा भगवन्मे तपो [?] भविष्यति न वेति तयोक्तम् । कथितं भगवता—तवोत्तमः पुत्रो भविष्यति । पुत्रि, मिथ्यादेवानां सेवां कृत्वा सम्यक्त्वम्लानतां मा कुरु इत्युक्त्वा मुनिर्गतः । तस्याः कतिपयदिनैश्चारुदत्तनामा पुत्रो जातः । सर्वार्थस्य मातुलस्य पुत्री मित्रवती परिणीता परं कामसेवां न करोति । ततः सुभद्रया गणिकाभिः व्यसनिभिश्च सह संसर्गः कारितो मांसादौ प्रवृत्तो वसन्तसेनया गणिकया सह द्वादशवर्षैः षोडशसुवर्णकोटयः खादिताः । ततो मित्रवतीस्वकीयान्याभरणानि प्रेषितानि दृष्ट्वा कलिङ्गसेनया कुट्टिन्या भणितम् । पुत्रि, क्षीणद्रव्योऽयं त्यज्यतां सधनेऽन्यत्र नरे मनः क्रियताम् । ततोऽसौ त्यक्तो भार्याभरणानि गृहीत्वा मातुलेन सहोलू-

खलदेशे उशिरावर्तपत्तनं गतः । कार्पासमादाय तामलिप्तपुरीं गच्छतो ऽटव्यां दवाग्निना कार्पासो दग्धः । उद्वेगान्मातुलस्याकथयत्समुद्रदत्तस्य प्रोहणेन पवनद्वीपं गतो धनमुपार्ज्यागच्छतः प्रोहणः स्फुटितः । एवं सप्तवारान् तस्य प्रोहणः स्फुटितः । फलकेन समुद्रमुत्तीर्य राजपुरपत्तनं गतो विष्णुमित्रपरिव्राजकेन गौरवेण निजमठे धृत्वा भणितः । भीमाटव्यां पर्वतनितम्बे धातुरसस्तिष्ठति । तं ते पुत्र ददामि येन तव दारिद्र्यनाशो भवति । चारुदत्तेनोक्तम्—तातैवं कुरु । ततस्तेन वरत्राबद्धशिक्येन हस्ते तुम्बकं दत्त्वा तत्कूपे प्रवेशितः । रसं गृह्णन्नेकपुरुषेण स निषिद्धः । ततश्चारुदत्तेन पृष्टः कस्त्वम् । उज्जयिन्यां वणिक् धनदत्तो ऽहम् । सिंहलद्वीपाद्व्याघुटितो भिन्नप्रोहणो ऽनेन परिव्राजकेन वञ्चयित्वा रसतुम्बकं गृहीत्वा अत्र वरत्रं कर्तित्वा निक्षिप्तो रसे । न भक्षितः प्राणा मे गच्छन्ति लग्ना इत्याकर्ण्य चारुदत्तेनोक्तम्—तर्हि रसो ऽस्य न दीयते । तेनोक्तम्—यदि न दीयते तदा पाषाणादिनोपसर्गं करिष्यति । अतो रसतुम्बकं दत्त्वा द्वितीयवेलायां शिक्ये पाषाणे धृते दूरमाकृष्य शिक्यवरत्रां कर्तित्वा गतः परिव्राजकः । ततश्चारुदत्तेन स भणितः । त्वया मम जीवितं दत्तं तवेदानीं सुगतिप्राप्त्युपायं ददामीत्युक्त्वा संन्यासं पञ्चनमस्कारांश्च दत्त्वा चारुदत्तेन पृष्टः—अस्ति मे को ऽपि निःसरणोपायः । तेनोक्तं च—रसं पीत्वा अद्य गता गोधा प्रभाते गच्छन्त्यास्तस्याः पुच्छं धृत्वा निःसर त्वम् । ततस्तथा निर्गत्य महाटवीं परित्यज्य गच्छन् चारुदत्तो मातुलेन मिलितेन रुद्रदत्तेन दृष्टो रत्नद्वीपे चालितः । छागयोरारुह्याजपथेन पर्वतस्योपरि गतौ । रुद्रदत्तेन भणितो ऽपि चारुदत्तो निजच्छागं न मारयति । व्रतादुपकारान्न च हतः । सो ऽपि रुद्रदत्तेनैव मारितः चारुदत्तेन तस्य संन्यासपञ्चनमस्काराश्च दत्ताः । छागयोश्चर्मभस्त्रामध्ये प्रविष्टौ तौ रत्नद्वीपायातभेरुण्डपक्षिभ्यां गृहीत्वा रत्नद्वीपाभिमुखं नीयमानयोरन्तराले रुद्रदत्तभस्त्रायां द्वयोर्भेरुण्डयोर्युद्धे समुद्रमध्ये पतितो रुद्रदत्तो मृत्वा

दुर्गतिं गतः। चारुदत्तभस्त्रा तु रत्नद्वीपे रत्नचूलपर्वतस्योपरि मुक्ता। तां पाटयित्वा निर्गतः चारुदत्तः। नष्टो भेरुण्डः। तत्रातपनस्थं मुनिमालोक्य प्रणतवान्। पूर्णयोगेन मुनिनोक्तम्—कुशलं ते चारुदत्त। तेनोक्तम्—भगवन्, क्वाहं त्वया दृष्टः। मुनिः कथयति। अमितविद्याधरो ऽहं चम्पायां कदलीवने वसन्तश्रीभार्यया सह क्रीडितुं गतः। वसन्तश्रियं दृष्ट्वा धूमसिंहविद्याधरो मां छलेन वृक्षे विद्यया कीलित्वा तां गृहीत्वा गतः। तस्मिन्प्रस्तावे त्वया तत्र क्रीडितुं गतेनाहं दृष्टः। मया चोक्तम्—अस्मिन् फरके तिस्र ओषधयः सन्ति। मित्रैताः पिष्ट्वा मे शरीरे देहि येनोत्कीलितो भवामि। तासु तथा दत्तासु गत्वाष्टापदगिरौ धूमसिंहं जित्वा भार्यां मोचयित्वा व्याघुटय त्वं भणितो ऽसि मित्र वरं प्रार्थयेति। त्वया चोक्तम्—न मे वरेण किंचित्प्रयोजनमिति। ततो दक्षिणश्रेण्यां शिवमन्दिरे पुरे कियत्कालं राज्यं कृत्वा सिंहयशोवराहग्रीवपुत्रयो राज्यं समर्प्य चारणमुनिर्भूत्वात्र तपः करोमि। अत्र प्रस्तावे पुत्रयोर्वन्दनाभक्त्यर्थम् आगतयोश्चारुदत्तवृत्तान्तः कथितः। अत्र प्रघट्टके छागचरदेवेनागत्य चारुदत्तस्य प्रणामः कृतः। ततश्चारुदत्तेनोक्तम्—गुरौ सति मम प्रणामः कर्तुं देव तवानुचितः। देवेनोक्तम्—त्वमेव मे गुरुः रुद्रदत्तेन मार्यमाणस्य मे संन्यासपञ्चनमस्काराश्च त्वया दत्तास्तन्माहात्म्यात्सौधर्मे स्वर्गे देवो जात इत्युक्त्वा दिव्यहारादिभिः पूजां कृत्वा स्वर्गं गतः। सिंहयशोवराहग्रीवौ चारुदत्तं चम्पायां नीत्वा अक्षयद्रव्यं दत्त्वा निजनगरं गतौ। चारुदत्तो ऽपि कतिपयदिनैः सुन्दरपुत्राय श्रेष्ठिपदं समर्प्य मुनिर्भूत्वा स्वर्गं गतः॥

[३८] जैनीसंसर्गतः शकट इत्यादि ।

[सगडो हु जइणिगाए संसग्गीए दु चरणपब्भट्ठो ।

अस्य कथा—कौशाम्बीपुर्यां नवतिवार्षिकः पथश्रान्तशकट-मुनिश्चर्यायां प्रविष्टः। अशीतिवर्षिकया सूत्रकर्तनजीविन्या जैनी-ब्राह्मण्या चर्यां कारयित्वा पृष्टः। केन कारणेन मुने त्वया तपो गृहीतम्। कथितं तेन—अस्यां कौशाम्ब्यां ब्राह्मणः सोमशर्मा, ब्राह्मणी काश्यपी तत्पुत्रो ऽहं शकटः, रोहिणी मम भार्या, अतीव वल्लभा मृता। ततो मया तपो गृहीतम्। वृद्धे त्वमपि कथं जीवसि। कथितं तया अत्र ब्राह्मणः शिवशर्मा, ब्राह्मणी सोमिल्ला, अहं तत्पुत्री जैनी शंकर-ब्राह्मणेन परिणीता। मृते तस्मिन्कार्पासं कर्तित्वा जीवामीत्याकर्ण्य शकटेन हसित्वोक्ता सा त्वं स्मरसि यदुपाध्यायगृहे त्वया मया च सह पठितम्। तयोक्तम्—सर्वं स्मरामीति संसर्गस्नेहाद्भग्नः॥

[३९.] कूचवारो ऽपि।

गणियासंसग्गीए य कूववारो तहा णट्ठो ॥११००॥]

अस्य कथा—पाटलिपुत्रनगरे राजा अशोको, राज्ञी अशोका। अशोकराजस्य भ्राता कूचवारनामा अतीव शूरः। एकदा ससंघो वरधर्मनामा गणधरदेवः समायातः। तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्भूत्वा महाटव्यां मध्यमन्दिरपर्वतोपरि महातपः कर्तुं लग्नः। शत्रुभिरागत्य पाटलिपुत्रे वेष्टिते दुःखितेनाशोकराजेनोक्तम्—कूचवारेण विना कीदृशी मे ऽवस्था जाता। ततो वीरमतिविलासिन्या भणितम्—देव, मा दुःखितो भव, तं कूचवारमहमानयामि। राजवचनेन बहुगणि-काभिः सहार्यकारूपेण तत्र पर्वतेन गता कपटेनैकां धूर्तीं पर्वततले धृत्वा तत्समीपं गत्वा वन्दित्वा भणितम्—भगवन्नेकार्यकावग्रहविशे-षेणागता गिरिं चटितुं न शक्नोति गत्वा तस्याः पादान् दर्शय। ततः स आगतो धूर्त्या दर्शितशरीरावयवया नाशितः शत्रूपद्रवं श्रुत्वा आगत्य निर्जिताः शत्रवः॥

[४०] रुद्रपाराशरेत्यादि।

[रुद्दो परासरो सच्चई य रायरिसी देवपुत्तो य।
महिलारूवा लोई णट्ठा संसत्तदिट्ठीए ॥११०१॥]

रुद्रस्य सात्यकिकथा प्रघट्टके कथा भविष्यति। पाराशरस्य लौकी कथा—हस्तिनागपुरे गङ्गभटधीवरेण महामत्सी जालेन धृत्वा तदुदरे विपाट्यमाने रूपवती कन्या दुर्गन्धा निर्गता सत्यवतीति नामा कृत्वा पोषिता। एकदा गङ्गभटेनावशे सत्यवतीं च धृत्वा गङ्गभटो गृहं गतः। मध्याह्ने दूरादागतेन शान्तेन पाराशरमुनिना द्वितीयतटस्थिता आकारिता सा—पुत्रि, शीघ्रमेहि मामुत्तारयेति। आगत्य तया गङ्गामध्ये नीयमानेन तेन तस्या रूपमालोक्य क्षुभितेनोक्तम्—मामिच्छ। तयोक्तम्—दुर्जातिर्दुर्गन्धा चाहं त्वं च महातपस्वी शापानुग्रहसमर्थ इति। ततस्तस्या दुर्गन्धतामपनीय कुवलयगन्धता कृता। पुनरपि तयोक्तम्। लोकाः पश्यन्ति। ततो धूमरी कृता। नौमध्ये कामसेवां कुर्वाणा न जीवामीत्युक्ते तेन द्वीपं कृत्वा परिणीता सेविता च। तत्क्षणे पञ्चकूर्चजटायज्ञोपवीतादियुक्तो व्यासनामा पुत्रो जातो ऽभिवादनं कृतवान् ॥

[४१] सात्यकिरुद्रयोः कथा।

गन्धारदेशे महेश्वरपुरे राजा सत्यंधरो, राज्ञी सत्यवती, पुत्रः सात्यकिः। सिन्धुदेशे विशालानगर्यां राजा चेटको, राज्ञी सुभद्रा, सप्तपुत्र्यः प्रियकारिणी सुप्रभा प्रभावती मृगावती ज्येष्ठा चेलिनी चन्दना चेति। श्रेणिकनिमित्तमभयकुमारेण नीयमानया चेलिन्या सुरङ्गद्वारे आभरणव्याजेन वञ्चिता ज्येष्ठा। चेटकभगिनी यशस्विनी कन्तिकासमीपे आर्यका जाता। सा च सात्यकेर्दत्ता आसीत्। अतः

सात्यकिरपि तां वार्तां श्रुत्वा समाधिगुप्तमुनिसमीपे मुनिरभूत्। एकदा वर्धमानस्वामितीर्थंकरदेववन्दनाभक्त्यर्थं यशस्विनीकन्तिकाप्रभृत्यार्यका गच्छन्त्यो ऽटवीप्रदेशे ऽकालवृष्ट्योपद्रुता इतस्ततो गताः। ज्येष्ठा कालागुहायां प्रविश्य वस्त्रनिपीलनं कुर्वाणा अन्धकारे ध्यानस्थितेन सात्यकिना दृष्टा। क्षुभितेन कामिता। इङ्गितैर्ज्ञात्वा यशस्विनीकन्तिकया चेलिनीसमीपे नीता वार्ता च कथिता। तया प्रच्छन्नस्थाने धृता नवमासैः पुत्रं प्रसूता। श्रेणिकेन चेलिन्याः पुत्र इति प्रघोषः कृतः। एकदा रौद्रभावे परपुत्रकुट्टनात् रुद्र इति चेलिन्या नाम कृतम्। एकदा रुष्टयान्येन जातो ऽन्यं संतापयतीत्युक्तम्। ततो वितर्क्याभोजनं कृत्वा निजपितरौ पृष्टौ महाकष्टेन कथितौ। ततो गत्वा सात्यकिमुनिसमीपे मुनिरभूत्। एकदा एकादशाङ्गदशपूर्वपाठे पञ्चशतमहाविद्याः सप्तशतक्षुल्लकविद्याश्च सिद्धाः। गोकर्णपर्वतापनस्थसात्यकिमुनिवन्दनार्थं गतभव्यजनान् सिंहव्याघ्रादिरूपेण त्रासयति। तदाकर्ण्य सात्यकिना स भणितः। स्त्रीनिमित्तं तव तपोभङ्गो भविष्यतीत्याकर्ण्य सामान्यजनागम्ये कैलासे गत्वा आतापनयोगेन स्थितो यावत्तावत्कथान्तरम्। विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां मेघनिबद्धमेघनिचयमेघनिनादेषु त्रिषु पुरेषु राजा कनकरथो, राज्ञी मनोरमा, पुत्रौ देवदारुविद्युज्जिह्वौ। एकदा राजा देवदारुपुत्राय राज्यं दत्त्वा गणधरमुनिपार्श्वे मुनिरभूत्। कतिपयदिनैर्विद्युज्जिह्वेन युद्धे निर्धाटितो देवदासो गत्वा कैलासे स्थितः। अष्टौ तत्कन्या अप्रतिरूपाः कञ्चुकिरक्षिता महावाप्यां स्नातुमागताः। वापीसमीपस्थातापनस्थेन तेन मुनिना ता आलोक्य तद्रूपासक्तेन तासां वस्त्राभरणानि विद्यया अपहृतानि। स्नात्वा व्याकुलाभिस्ताभिरागत्य मुनिः पृष्टः—अस्माकं वस्त्राभरणानि केन नीतानि। तेनोक्तम्—मामिच्छथ यदि तदा दर्शयामि। ताभिरुक्तम्—यदि पिता ददाति तदेच्छामः। ततः सर्मर्पितानि। ताभिर्गत्वा पितुर्वार्ता कथिता। तेन च मुनिसमीपे

प्रधानः प्रेषितः। यदि विद्युज्जिह्वं हत्वा त्रिपुरीराज्यं ददासि तदा दीयते कन्याः। मुनिनोक्तम्—सर्वं करोमि। ततो देवदारुराजेन स निजगृहे आनीतः। तेन च विजयार्धे गत्वा विद्युज्जिह्वं हत्वा देवदारुस्त्रिपुरेषु राजा कृतः। तेन च ताः कन्यास्तस्मै दत्तास्तथान्याश्च ॥

[४२] राजश्रीकथा

मिथिलानगर्यां राजा मेरुको, राज्ञी धनसेना, पुत्रः पद्मरथो नमिश्च। एकदा मेरुकः पद्मरथाय राज्यं दत्त्वा नमिना सह दमधरमुनिसमीपे मुनिरभूत्। अन्यदा नमिर्जले निजशरीरच्छायां पश्यन् गुरुणा भणितः—स्त्रीनिमित्तेन तव व्रतभङ्गो भविष्यति। एतदाकर्ण्यासौ महाटव्यामेकाकी दुर्धरं तपः कर्तुं लग्नः। एकदा सागरदत्तसार्थवाहस्तत्राटव्यामायातः। तेन सह गोविन्दनट आगतः। स च नटविद्यायामतीव कुशलः। तद्भार्या रुद्रा, पुत्री काञ्चनमाला। मुनिसमीपदेशे गोविन्दो गुणनिकायां काञ्चनमालां नर्तयति। तमालोक्य तद्रूपासक्तेन भणितं नमिमुनिना—न मिलति नृत्यवाद्ययोः। अयं सर्वमिदं जानातीति संप्रधार्य सा काञ्चनमाला तस्मै दत्ता। कतिपयदिनैः पूर्वसमुद्रतटे मुण्डीरस्वामिपत्तने गुर्विणी सा भणिता—प्रसूता मासावसानदिने निजपुत्रमुद्याने अशोकवृक्षतले धरेस्त्वं राजा भविष्यतीत्युक्त्वा पुनर्मुनिरभूत्। तया च पुत्रे जाते तथा कृतम्। तत्र विश्वसेनो राजाऽपुत्रो मृतः। मन्त्रिणा विधिना पट्टहस्ती भणितः—निजस्वामिनं गृहाण। ततस्तेन स गृहीत्वा निजमस्तके धृतो दुर्मुखनामा राजा जातः। स नमिमुनिः कालप्रियपत्तने एकदा गतस्तत्र कुम्भकारगङ्गदेवभार्या विमला, तत्पुत्री विश्वदेवी अतिशयेन रूपवती अकस्मादकालवृष्टौ तेन बहुभाजनानि प्रविष्टुमसमर्थामालोक्य

नमिमुनिनोक्तम्—यदि मामिच्छसि तदा प्रवेशयामि तव भाण्डानि। तयोक्तम्—पितृदत्ता इच्छामि। ततो विद्यया झगिति प्रवेशितानि। आर्तौ पितरौ समायातौ। वार्तामाकर्ण्य सा तस्मै दत्ता। एकदा गुर्विणी भणिता प्रसूता निजपुत्रं मासावसाने नदीतटे आम्रवृक्षतले धरेस्त्वं राजा भविष्यतीत्युक्त्वा मुनिरभूत्। तथा च पुत्रे जाते तथा कृतम्। तत्र देवरतिनामा राजा ऽपुत्रो मृतः। मन्त्रिवचनाद्विधिप्रयुक्त-पट्टहस्तिना निजस्कन्धे धृतः। करकण्डो नाम राजा जातः। स नमिमुनिर्मरुदेशे मूलस्थाननगरे गतः। तत्र राजा सिंहसेनो, राज्ञी सिंहसेना, पुत्री वसन्ततिलका। कुमारीं तां दृष्ट्वा तस्याः स आसक्तो रात्रावादित्यरूपेणागत्य तत्सेवां करोति। आदित्येन गर्भः कृत इति प्रसिद्धौ नग्नकिनामा पुत्रो जातः। एवं नमिरादित्यरूपेण प्रभाते मुण्डीरस्वामिपुरे मध्याह्ने कालप्रिये अस्तमनवेलायां मूलस्थाने भोगान् भुक्त्वा त्रिभिः पुत्रैः सह मुनिरभूत्। ते चत्वारो ऽपि विहरन्तः कुम्भकारग्रामे कुम्भकारपाकबहिःशयनेन स्थिताः। कुम्भकारेणागत्य पाके अग्निर्दत्तः। तम् उपसर्गं प्राप्य निर्वाणं गताः॥

[४३] देवपुत्रो ब्रह्मा तस्य लौकिकी कथा।

यथा इन्द्रादीनुद्दालयित्वा सर्वोत्तमपदान्यात्मनो वाञ्छन् महाटव्यां दिव्यार्धचतुर्वर्षसहस्राणि वायुभक्षणं कुर्वाण एकपादेनोर्ध्वबाहुः स्थितो दिव्यं तपः करोति। तपःशक्त्या महादेववासुदेवेन्द्रादीनामासनानि कम्पितानि। ततो भीतैस्तैर्ब्रह्मणस्तपश्चालनार्थं सपेटिका तिलोत्तमा तस्याग्रे नर्तितुं प्रेषिता। तद्रूपालोकनासक्तो ब्रह्मा क्रमेणैकैकवर्षसहस्रतपस्सामर्थ्येन चतुर्मुखो जातः। उपरि नृत्यन्त्यास्तस्याः पञ्चशतवर्षतपसा गर्दभमस्तकमुपरि जातम्॥

[४४] ग्रन्थो भयं नराणामिति ।

[गंथो भयं णराणं सहोदरा एयरत्थजा जं ते ।
अण्णोण्णं मारेदुं अत्थणिमित्तं मदिमकासी ॥११२८॥]

एतयोः कथा—दशार्णदेशे एकरथ्यनगरे धनदत्तः श्रेष्ठी, भार्या धनदत्ता, पुत्रौ धनदेवधनमित्रौ, पुत्री धनमित्रा । मृते धनदत्ते धनदेवधनमित्रौ दरिद्रौ कौशाम्ब्यां मातुलसमीपं गतौ । तेन धनदत्त-वृत्तान्ते श्रुते अष्टानर्घ्यमणयः समर्पिताः । आगच्छद्भ्यां ताभ्यां मणिनिमित्तं परस्परमारणं चिन्तितम् । निजनगरप्रवेशे पश्चात्तापं कृत्वा स्वभावं कथयित्वा वेत्रवतीनद्यां मणीन् क्षिप्त्वा गृहमागतौ । मणयो मत्स्येन गिलिताः । स धीवरेण हत्वा विक्रीतो धनदत्तया गृहीतः । खण्डयन्त्या मणयो लब्धाः । पुत्रपुत्रीणां मारणं चिन्तयित्वा पश्चात्तापं कृत्वा धनमित्राया दत्ताः । तया भ्रातृमातॄणां मारणं चिन्तयित्वा पश्चात्तापं कृत्वा भ्रात्रोः समर्पिताः । तौ च तान् मणीन्परिज्ञाय त्यक्त्वा च ताभ्यां सह दमधराचार्यसमीपे तपो गृहीतवन्तौ ॥

[४५] धनहेतोर्भयमभवच्चौराणामित्यादि ।

[अत्थणिमित्तमदिभयं जादं चोराणमेक्कमेक्केहिं ।
मज्जे मंसे य विसं संजोइय मारिया जं ते ॥११२९॥]

अत्र कथा—कौशाम्बीनगर्यां धनमित्रधनदत्तादयो द्रव्याढ्या वणिजो वाणिज्येन राजगृहनगरे चलिताः । अटव्यां चौरैर्गृहीताः । ते च चौरा द्रव्यार्थं परस्परमारणनिमित्तं कृतविषाहारं रात्रौ भुक्त्वा मृताः । तेषां मध्ये सागरदत्तो वणिक् रात्रिभोजने निवृत्तो न मृतः । तेषां मृत्युमालोक्य द्रव्यं त्यक्त्वा वैराग्यान्मुनिरभूत् ।

[४६] संगो महाभयमित्यादि।

[संगो महाभयं जं विहेडिदो सावगेण संतेण।
पुत्तेण चेव अत्थे हिदम्हि णिहिदिल्लगे साहुं ॥११३०॥]
दूओ बंभण विग्घो लोओ हत्थी य तह य रायसुयं ।
पहिय णरो वि य राया सुवण्णयारस्स अक्खाणं ॥*११३१॥
वण्णर णउलो विज्जो वसहो तावस तहेव चूदवणं ।
रक्ख सिवण्णी दुंडुह मेदज्जमुणिस्स अक्खाणं ॥*११३२॥

अस्य कथा—मणिवतदेशे मणिवतनगरे राजा मणिवतो, राज्ञी पृथ्वी, पुत्रो मणिचन्द्रः। एकदा पृथिवीदेव्या राज्ञो मस्तके केशान्विरलयन्त्या पलितमेकमालोक्य राज्ञो हस्तेन दत्तम्। ततो वैराग्यात्स मणिचन्द्राय राज्यं दत्त्वा मुनिरभूत्। एकाकी विहरन्नुज्जयिन्या श्मशाने रात्रौ मृतकशय्यायां स्थितः। कापालिकेन भट्टारकसमीपे मृतकद्वयमानीय मस्तकत्रयचुल्ल्यां वेतालविद्यासाधनार्थं मनुष्यकपाले चरुकं राद्धुं प्रारब्धम्। मुनिमस्तके ससादाद्याच्चालिते [?] कपाले पतिते भयान्नष्टः कापालिकः। प्रभाते मुनिः तथा दृष्ट्वा केनचिज्जिनदत्तश्रेष्ठिनः कथितम्। तेन च गृहे समानीतः वैद्य औषधं पृष्टः। तेन कथितम्–सोमशर्मभट्टगृहे लक्षपाकं तैलमस्ति। तैलाभ्यङ्गादग्निदग्धो नीरोगो भवति। गत्वा श्रेष्ठिना तद्भार्या तुङ्कारी तत्तैलं याचिता। भणितं तया–श्रेष्ठिन् घटमेकं गृहाण। तैलघटं गृहीत्वा निर्गच्छतः स्फुटितो घटः। भीतेन तुङ्कार्याः कथितम्। ततस्तयोक्तमन्यं तैलघटं गृहाण। तथा द्वितीयस्तथा तृतीयोऽपि स्फुटितः। पुनस्तयोक्तम्। श्रेष्ठिन्मा भयं कुरु यावता प्रयोजनं तावद् गृहाण इति। चिन्तितं श्रेष्ठिना–अहो अस्या अद्वितीया क्षमा। पृष्टा च–किं कारणं कोपं न करोषि त्वम्। कथितं तया—श्रेष्ठिन् कोपस्य फलं मया प्राप्तं तेन तं न करोमि।

तद्यथा—आनन्दपुरे भट्टः शिवशर्मा, भार्या कमलश्रीः, शिवभूत्या पुत्राः शिवभूत्यादयो ऽष्ट, अहं नवमी पुत्री भट्टा नाम, न क्वापि मां तुं भणति। एकदा शिवशर्मणा नगरमध्ये घोषणा दापिता—मा को ऽपि भट्टां चुंचुं करोतु। ततश्चुंकारिकेति नाम जातम्। न कदाचिदपि चुं करोमीति व्यवस्थया सोमशर्मब्राह्मणेन परिणीयोज्जयिनीमानीता। एकदा सोमशर्मा रात्रौ नाट्यमालोक्य वेलातिक्रमे समायातः। कपाटमुद्धाटयेति भणिते मया कोपात्ते नोद्घाटिते। ततो बृहद्वेलायां रोषात्तेन चुंकारिता रुष्टा द्वारमुद्घाट्य निर्गताहं नगराद्बहिर्गच्छन्ती चौरैराभरणमादाय पल्लिकायां विजयसेनभिल्लस्य दर्शिता। स मे शीलखण्डनं कुर्वाणो वनदेवतयोपसर्गं कृत्वा निवारितः। भीतेन तेन पूजयित्वा सार्थवाहस्य समर्पिता। तेनापि मम शीलखण्डनं कर्तुं न शक्तम्। परतीरं नीत्वा कृमिरागकम्बलविक्रयिणो दत्ता। तेन तत्कम्बलनिमित्तं जलूकाभिर्मद्रुधिरं बहुदिनान्याकर्षितम्। उज्जयिनीराजेन यो मे भ्राता धनदेवः पारसकुलराजपार्श्वे दूतः प्रेषितस्तेन कृतकार्येणाहं दृष्ट्वा तं राजानं याचयित्वा आनीय पुनः सोमशर्मणः समर्पिता। रक्तक्षयान्मे शरीरं वातेनाभिभूतं वैद्येन शतसहस्रतैलं पक्वम्। तेन नीरोगा जाता। मुनिसमीपे धर्माधर्ममाकर्ण्य च सम्यक्त्वं व्रतं च गृहीत्वा न कस्याप्युपरि मया कोपः कर्तव्य इति व्रतं गृहीतम्। श्रेष्ठिस्तैलं नीत्वा भट्टारकं नीरोगं कुरु। श्रेष्ठिना तां प्रशस्य तैलघटमानीय भट्टारको नीरोगः कृतः। तेन मुनिना तस्यैव चैत्यालये वर्षाकाले योगो गृहीतः। श्रेष्ठिना अनर्घ्यरत्नपूर्णस्ताम्रकलशः सप्तव्यसनाभिभूतकुबेरदत्तनिजपुत्रभयान्मुनिसंस्तरसमीपे निखन्य धृतः। मुनिना कुबेरदत्तेन च स दृष्टः। एकदा कुबेरदत्तेन चैत्यालयप्राङ्गणे स कलशो निखन्य धृतः। मुनिरुदासीनः स्थितः। पूर्णयोगे श्रेष्ठिनं पृष्ट्वा मुनिश्चलितः। पत्तनाद्बहिः स्वाध्यायं गृहीत्वा उपविश्य स्थितः। श्रेष्ठी च तं कलशं

ग्रहीतुं गतो न पश्यति। भट्टारक एव जानाति तं गृहीत्वा गत इति संचिन्त्य पृष्ठतो लग्नः। त्वया विना भगवन्मम न रतिरिति मायया व्यावर्त्यानीतः। श्रेष्ठिना मुनिः सद्धर्मकथां पृष्टो मुनिनोक्तम्—त्वमपि कथय चिरश्रावकत्वात्। ततोऽभिमतार्थं कटाक्षयता तेन कथा कथ्यते। यदा पद्मरथनगरे वसुपालराज्ञा कोशलाधिपतेर्जितशत्रोर्दूतः प्रेषितः स महाटव्यां तृषितो मूर्च्छया वृक्षतले पतितो वानरेण तं कण्ठगतप्राणमालोक्य स्वच्छसरोवरे निमज्ज्यागत्य तस्योपरि निजशरीरं विधूयाग्रे गत्वा तेन तस्य जलं दर्शितम्। स च जलं पीत्वाग्रे गमननिमित्तं तं वानरं हत्वा जलखल्लां कृत्वा गतः। भगवन् किं तस्य वानरमारणं कर्तुं युक्तम्॥ न युक्तमित्युक्त्वा आत्मना निर्दोषत्वं कथयन्मुनिः कथामाह॥

कौशाम्ब्यां नगर्यां ब्राह्मणः शिवशर्मा, ब्राह्मणी कपिला ऽपुत्रा। ब्राह्मणेनाटव्यां नकुलपिल्लिको दृष्ट आनीय कपिलायाः पुत्र इति समर्पितः। शिक्षितो भणितं करोति। कपिलाया यः पुत्रो जातस्तं मञ्चके सुप्तं नकुलस्य समर्प्य सा तण्डुलान् खण्डितुं गता। सर्पेण पुत्रो भक्षितो मृतः। नकुलः सर्पं मारयित्वा रक्तलिप्तमुखः कपिलायाः समीपे गतः। तया पुत्रो ऽनेन मारित इत्याशङ्क्य मुसलेनाहत्य मारितः। गृहे आगत्य मारितं सर्पं दृष्ट्वा पश्चात्तापः कृतः। श्रेष्ठिन् किं सर्पापराधे नकुलमारणं युक्तं तस्याः स्यात्॥ न युक्तमिति पुनः श्रेष्ठी कथां कथयति॥

वाणारस्यां राजा जितशत्रुर्वैद्यो धनदत्तो, भार्या धनदत्ता, पुत्रौ धनमित्रधनचन्द्रौ न पठितौ। मृते वैद्ये जीवनमन्यवैद्यस्य दत्तम्। धनमित्रधनचन्द्रौ चम्पायां शिवभूतिवैद्यपार्श्वे वैद्यशास्त्रं ज्ञात्वा व्याघुटितौ। अटवीमध्ये अक्षिरोगपीडितं व्याघ्रमालोक्य लघुना ज्येष्ठः निषिद्धेनापि परीक्षणार्थमौषधं लोचनयोर्दत्तम्। तत्क्षणान्नीरोगेण तेन स एव भक्षितः। एतत्किं तस्य युक्तम्॥

मुनिः कथयति। चम्पायां सोमशर्मब्राह्मणस्य द्वे ब्राह्मण्यौ, सोमिल्या सोमशर्मा च। सोमिल्यायाः पुत्रो जातः। तत्रैको वृषभो भद्रो गृहे ऽशनघासं लभते कस्यापि कथमपि न घासं ददाति। वन्ध्यया सोमशर्मया एकदा तं बालं मारयित्वा तस्य शृङ्गे प्रोतश्चानेन बालो मारित इति। ब्राह्मणजातिभिः स सर्वैस्त्यक्तः। क्वापि प्रवेशं न लभते। एकदा जिनदत्तराजश्रेष्ठिनो भार्या परदारदोषं प्राप्यात्मशुद्धिं कुर्वाणा दिव्यग्रहणार्थं तप्तफालसमीपे बहुजनमध्ये स्थिता प्रस्तावं प्राप्य भद्रवृषभेणात्मविशुद्ध्यर्थं फालो मुखेन गृहीतः। ततः सर्वैर्निर्दोषो भणितः। अपर्यालोच्य तस्य दोषो दातुं किं युक्तो जनस्य॥

जिनदत्तः कथयति। गङ्गोपकण्ठे लघुकलभो गर्तायां पतितो विश्वभूतितापसेन दृष्टो निजपल्लिकायां नीत्वा प्रतिपालितः। महान् हस्ती सर्वलक्षणोपेतो जातः। श्रेणिकेनाकर्ण्यागत्य याचयित्वा नीतो बन्धनाङ्कुशाभिघातं दृष्ट्वा स्तम्भं भङ्क्त्वा तापससमीपमायातस्तत्पृष्ठे समायातलोकानां संबोध्य समर्प्यमाणेन मारितस्तापसः। तत्किं हस्तिनस्तापसमारणं युक्तम्॥

मुनिः कथयति। हस्तिनागपुरे पूर्वस्यां दिशि विश्वसेनेन राज्ञा उद्यानवनं कारितम्। सर्पं गृहीत्वा सौलिका आम्रवृक्ष उपविष्टा। सर्पविषं फले पतितम्। तच्च फलं विषोष्मणा पक्वमुद्यानपालेन तद्राज्ञो दर्शितम्। तेन च धर्मसेनाया राज्ञ्या दत्तम्। तद्भक्षणात् सा मृता। रुष्टेन राज्ञा सर्वमुद्यानं खण्डितम्। परदोषेण किं युक्तं च तस्य कर्तुं खण्डनम्॥

जिनदत्तः कथयति। कश्चित्पुरुषो महाटव्यां गच्छन् सिंहमागच्छन्तमालोक्य भयात्सन्नपल्लीवृक्षं महान्तमारुह्य स्थितः। गते सिंहे मार्गे गच्छता भेरीनिमित्तं महान्तं काष्ठमन्वेषयतां राजपुरुषाणां सन्नवृक्षो दर्शितः। तैश्च स खण्डितः। एतत्किं तस्य युक्तम्॥

मुनिः कथयति। कौशाम्ब्यां राजा गान्धर्वानीकस्तस्य सुवर्णकारो ऽङ्गारदेवो रत्नसंस्कारकः। तेनैकदा राजकीयमुकुटाग्रपद्मरागमणिमुज्ज्वालयता चर्यायां प्रविष्टो मेदज्जमुनिः स्थापितः। कर्मशालायां मुनिः प्रवेशितः। तत्समीपे मणिं धृत्वा भार्याया वार्तां कथयितुं गतः। स मणिः क्रौञ्चपक्षिणा मांसं मत्वा भक्षितो गले लग्नः। आगतेन तेन मणिमपश्यता मुनिः पृष्टः। मुनिना दयापरेण तं जानतापि मौनं कृतम्। पुनस्तेनोक्तम्—मम सकुटुम्बस्य मरणं भविष्यतीति कथय त्वम्। तथापि मौनमेव मुनेः। ततो रुष्टेन तेन चौरो ऽयमिति मुनिर्बद्धः आहतश्च काष्ठैः। प्रहरतश्च एकं काष्ठं क्रौञ्चगले लग्नम्। निर्गतो मणिः। गृहीतो हाहाकारं कृत्वा मुनिपादयोर्लग्न इति। यथा तेन स क्रौञ्चभक्षितो मणिर्न कथितः तथाहं जानन्नपि न कथयामि तं येन नीतः कलशः। ततः कुबेरदत्तेन महामुनेः कियन्तमुपसर्गं करिष्यतीति भणित्वा आनीय पितुः कलशः समर्पितः। ततो मुनिं क्षमापयित्वा जिनदत्तकुबेरदत्तौ तत्पार्श्वे मुनी जातौ ॥

[४७] पिण्याकगन्धः।

[अत्थणिमित्तं घोरं परितावं पाविदूण कंपिल्ले।
लल्लक्कं संपत्तो णिरयं पिण्णागगंधो क्खु ॥११४०॥]

अस्य कथा—काम्पिल्यनगरे राजा रत्नप्रभो, राज्ञी विद्युत्प्रभा, राजश्रेष्ठी जिनदत्तश्रावकः। अपरश्रेष्ठी पिण्याकगन्धो द्वात्रिंशत्कोटिद्रव्येश्वरः। लोभात्पिण्याकः खलं भक्षयति। तस्य भार्या सुन्दरी, पुत्रो विष्णुदत्तः। तत्रैकदा राजकीयतडागं खनतैकेन वृद्धोड्डेन किट्टम्रक्षितसुवर्णकुशीशतमंजूषा लब्धा। एका कुशी जिनदत्तेन लोहमयीति मत्वा लोहमूल्येन गृहीता सुवर्णं ज्ञात्वा जिनप्रतिमा कारिता।

प्रतिष्ठापिता च। द्वितीया कुशी जिनदत्तेन न गृहीता। पिण्याकगन्धेन गृहीता तेन तां सुवर्णमयीं ज्ञात्वा स भणितो ऽन्या अपि देहि। ततो ऽष्टानवतिदिनैरष्टानवतिकुश्यो दत्ताः। अन्यस्मिन्दिने पिण्याकगन्धस्य या भगिनी सुमित्रा पिप्पलग्रामे सागरदत्तश्रेष्ठिना परिणीता। सा निजपुत्री सूर्यमित्रपरिणयनसमये पिण्याकगन्धं निमन्त्रयितुमायाता। स च कुशीलोभात्पुत्रं कुशीग्रहणे निरूप्य तत्र गतः। उड्डे कुशीं गृहीत्वा आयाते किमनया प्रयोजनमिति विष्णुदत्तेन न गृहीता। उड्डस्यान्यत्र गच्छतो राजपुरुषेण खननार्थमुद्दालिता सा। खनता च सुवर्णकुशीशतमित्यक्षराण्यवलोक्य राज्ञः कथितम्। स आनीतः। तेन च कथितम्—जिनदत्तस्यैका कुशी दत्ता पिण्याकगन्धस्याष्टानवतिः। आकारितो जिनदत्तो यथार्थं कथयित्वा प्रतिमां दर्शयित्वा राजपूजितो गृहं गतः। पिण्याकगन्धस्य गृहं गृहीतं कुटुम्बं च खोटके निक्षिप्तम्। विवाहानन्तरं पिण्याकगन्धेन शीघ्रमागच्छता मार्गे गृहवार्तां श्रुत्वा इमौ पादौ ग्रामं गताविति पाषाणेन तौ चूर्णयित्वा महतार्तेन मृत्वा षष्ठनरके लल्लकप्रस्तरके नारको जातः॥

[४८] लुब्धस्य सर्वधनिनः फटहस्तस्येत्यादि।

[पडहत्थस्स ण तित्ती आसी य महाधणस्स लुद्धस्स।
संगेसु मुच्छिदमदी जादो सो दीहसंसारी॥११४४॥]

अस्य कथा—चम्पानगर्यां राजा अभयवाहनो, राज्ञी पुण्डरीका, वणिक् लुब्धश्रेष्ठी, श्रेष्ठिनी नागवसुः, पुत्रौ गरुडदत्तनागदत्तौ। लुब्धश्रेष्ठिना लक्ष्मीयक्षगजतुरङ्गादीनां सुवर्णमययुगलानि कर्णाक्षिपुच्छखुरादिषु रत्नखचितानि गृहे कारितानि। बलीवर्द एक एव। द्वितीयबलीवर्दनिमित्तमेकदा सप्ताहोरात्रवृष्टौ जातायां गङ्गाप्रवाहमध्यात्काष्ठान्यानयन्तं प्रासादोपरि राजसमीपे उपविष्टया पुण्डरीकया

तं लुब्धश्रेष्ठिनमालोक्य भणितम्—देव तवापि राज्ये को ऽपि महादरिद्रः पश्येत्थं काष्ठान्याकर्षति धनं दीयतामस्य। एतदाकर्ण्याकार्य पुनः स भणितो राज्ञा—वर्तनार्थं यावता प्रयोजनं तावद्द्रव्यं गृहाण। तेनोक्तम्—ममैको बलीवर्दस्तिष्ठति द्वितीयबलीवर्देन प्रयोजनम्। राज्ञोक्तम्—अस्मदीयबलीवर्देषु मध्ये गृहाण। राजकीयबलीवर्दानवलोक्य तेनोक्तम्—नास्ति देवास्मद्बलीवर्दसमानो ऽत्र बलीवर्दः। कीदृशो भवद्बलीवर्दो मे दर्शयेत्युक्ते राज्ञो गृहे बलीवर्दो दर्शितः। विस्मयेन [1]राज्ञा तवेदृशो बलीवर्द इत्युक्तम्। नागवसुश्रेष्ठिन्या महार्घरत्नसुवर्णपूर्णस्थालं श्रेष्ठिनो दत्तं भणितं च—राज्ञः समर्पय। तत्समर्पयतस्तस्य कृपणस्य हस्ताङ्गुलयः फटासदृशास्तथा जाताः। ततो राज्ञा स्थालं त्यक्त्वा स फटहस्तो भणितः। एकदा तेन फटहस्तेन द्वितीयबलीवर्दार्थं प्रोहणेन द्वादशवर्षैः सिंहलद्वीपादिषु गच्छता चतस्रः सुवर्णकोट्यो ऽर्जिताः। सिन्धुविषये सिन्धुसागरे प्रोहणे ब्रुडिते मृत्वा निजगृहे निधिपालकसर्पो जातः। कस्यापि ग्रहीतुं न ददाति। रुष्टेन गरुडदत्तेन मारितश्चतुर्थनरके नारको जातः॥

[४९] चक्के यथा विशिष्ट इत्यादि।

[कुद्धो वि अप्पसत्थं मरणे पत्थेदि परवधादीयं।
जह उग्गसेणघादे कदं णिदाणं वसिट्ठेण ॥१२१८॥]

अस्य कथा—मथुरानगर्यां राजा उग्रसेनो, राज्ञी रेवती, श्रेष्ठी जिनदत्तः, तद्दासी प्रियङ्गुलता। यमुनातीरे तापसो विशिष्टो जलमध्ये बुड्डिकां दत्त्वा पञ्चाग्निसाधनं करोति। ततो नगरजनो अतिभक्तो जातः। पानीयहारिकाश्च नित्यं तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमन्ति। प्रियङ्गुलता च ताभिर्भण्यमानापि न प्रणमति। हस्तपादे धृत्वा

1.) राज्ञोक्तम्

ताभिस्तस्य पादयोः पात्यमानया तया भणितम्—यद्यस्य प्रणमामि तदा बृहद्धीवरस्य किं न प्रणमामि। एतदाकर्ण्य सर्वासां तापसो रुष्टस्ताश्च नष्टाः। तापसेनोग्रसेनस्य कथितम्—जिनदत्तश्रावकेणाहं धीवरो भणितः। आनीतो जिनदत्तः। देवायं तापसः प्रमाणं यदि मया भणितः। तापसेनोक्तम्—अस्य चेटिकया भणितः। मुनेः सत्यवचनं हसित्वा राज्ञा साप्याकारिता। तां दृष्ट्वा कुपितेन तापसेनोक्तम्—ब्राह्मणकुलोत्पन्नं वायुभक्षं कथं धीवरसमानं मां भणसि रण्डे। तयोक्तम्—धीवरो ऽपि मत्स्यान् मारयति, त्वमपि इति कस्ततो विशेषस्तवेति। जटाभारं झाटय। झाटिते तस्मिन् पतिता नानाप्रकारा मत्स्याः। ततो राज्ञा जिनधर्मप्रशंसां कृत्वा तापसो निःसारितः। गङ्गागन्धवत्योः संगमे गत्वा पञ्चाग्निसाधनं कर्तुं लग्नः। पञ्चशतयतिभिः सह तत्र वीरभद्राचार्यः समायातः। तत्रैकेन मुनिनोक्तम्—तापसस्योग्रं तपः। आचार्येणोक्तम्-दयाहीनमज्ञानिनां तपः किं प्रशस्यते। रुष्टेन तेनोक्तम्—कथमहमज्ञानी। आचार्येणोक्तम्-यदि त्वं ज्ञानी तदा तव गुरुर्मृत्वा क्व संजातः। तेनोक्तम्—स्वर्गे। आचार्येणोक्तम्—अस्य त्वया दह्यमानकाष्ठस्याभ्यन्तरे स सर्पो दह्यमानस्तिष्ठति। रुष्टेन तेन काष्ठे स्फाटिते सर्पो दृष्टः। ततो गर्वं मुक्त्वा धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः। मथुरायां गोवर्धनगिरौ मासोपवासाद्युग्रतपः कुर्वाणस्य विद्यादेवताः सिद्धाः, भणन्ति ताः—भगवन् किं कुर्मः। तेनोक्तम्-यदा मे प्रयोजनं तदा आगच्छत यूयम्। मासोपवासे पूर्णे आदरवतोग्रसेनेन घोषणा दापिता—मा को ऽपि वसिष्ठमुनिं स्थापयतु। अहं स्थापयिष्यामि। तत्र प्रथमपारणके मदादुद्भ्रान्तः पाटवर्धनहस्ती स्तम्भमुन्मूल्य निर्गतः। अतस्तद्व्याकुलो राजा जातः। नगरे राज्यकुले च भ्रमित्वा मुनिरलाभेन गतः। द्वितीयमासोपवासपारणके नगर्यामग्निदाहे राजा व्याकुलः। तृतीयमासोपवासपारणके जरासन्धप्रेषितराजादेशो राजा व्याकुलः।

अलाभेन नगर्या निर्गच्छन्तं[1] मूर्च्छाविह्वलं तं मुनिं दृष्ट्वा एकडोकरिकया भणितम्—स्थापयन्तो लोका निवारिताः स्वयं च न स्थापयति मारितो ऽनेनायं महातपाः। एतदाकर्ण्य रुष्टेन गोवर्धनं गत्वा भणितास्ता विद्याः—पापमुग्रसेनं मारयत। भणितं ताभिः—भगवन्न युक्तमिदं तवानेन रूपेण। जन्मान्तरे तर्हि मदीया आज्ञा कर्तव्या। अमुमुग्रसेनमन्यभावे मारयिष्यामीति निदानं कृत्वा मृत्वा रेवतीगर्भे ऽवतीर्णः क्षीयमाणशरीरां रेवतीं महादेवीं दृष्ट्वा पृष्टा—केन कारणेन तव शरीरं क्षीयते। कथितम्—पापिष्ठ दोहलकवशात्। कीदृशो दोहलकः। देव कथयितुं नायाति। अत्याग्रहेण पृष्टया कथितम्—यथा तव हृदयं विदार्य हस्तद्वयेन रक्तं पिबामीति। लेप्यमयदोहलके तथाभूते पुत्रो जातः। उग्रसेनस्य तन्मुखमवलोकयतः क्रूरां दृष्टिं कृत्वा मुष्टिर्बद्धा। तत उग्रसेननामाङ्कितमुद्रिकारत्नकम्बलाभ्यां सह कंसं मञ्जूषायां धृत्वा यमुनायां प्रवाहितः। कौशाम्ब्यां गङ्गभट्टकल्पपालस्य रञ्जोदर्या भार्यया जलार्थं गतया आनीता सा मञ्जूषा। कंसनामा पुत्रः पोषितः। अष्टवार्षिकः परपुत्रपिट्टनोपालम्भान्निर्धाटितः। शौरिपुरे वसुदेवस्य शिष्यः सर्वशास्त्रदक्षो ऽभूत् वरं च लब्धवान्। अथ यथार्थनामा सिंहरथो राजा जरासन्धस्य न सिध्यति। ततः सर्वसामन्तानां जरासन्धेन घोषणा दापिता। यः सिंहरथं बन्धयित्वा आनयति तस्मै जीवद्यशापुत्रीं वाञ्छितदेशं च ददामि। ज्येष्ठभ्रातृसमुद्रविजयादेशेन सर्वबलसमेतो वसुदेवो गतः। पोदनपुरसमीपे कटकं धृत्वा सार्थवाहरूपेण पोदनपुरे गत्वा सिंहानां गूथमूत्राण्यानीय निजबलस्य तद्गूथसहनं कारयित्वा संग्रामे सिंहरथं विरथं कृत्वा वसुदेवेन कंससारथिर्भणितः—सिंहरथं बन्धय। तेन च बद्धः। तमादाय गतो वसुदेवो जरासन्धेन

१) नगर्यादिनि°

भणितः—मत्पुत्रीमभिमतदेशं च गृहाण। तेनोक्तम्—कंसेनायं बद्धो ऽस्मै देहि। कुलं पृष्टेन कल्पपाली निजजननी कथिता। तमालोकयन् तस्याः पुत्रो ऽयमिति न निर्णयः। साप्यानीता। भीतायान्ती मञ्जूषामादाय गतया भणितम्—देवास्या मञ्जूषायाः पुत्रो ऽयम्। तत्र रत्नकम्बलम् उग्रसेननामाङ्कितमुद्रिकां च दृष्ट्वा स ज्ञातो मम भागिनेय इति। राजपुत्रीं परिणीय रुष्टेन तेनोग्रसेनदेशं गृहीत्वा संग्रामे स धृतो नगरीगोपुरसमीपे पञ्जरमध्ये धृतो ऽलवणकञ्जिकेन कोद्रवकूरं भोजितो ऽतिमुक्तककुमारो ऽनिष्टान्मुनिरभूत्। कंसेन वसुदेवो गुरुरात्मसमीपमानीतः। मृत्तिकावतीपुर्यां कुरुवंश्यो राजा, देवकी भार्या, धनदेवी पुत्री, देवकी सा प्रतिपन्नभगिनी कंसेन वसुदेवाय दत्ता। एकदा देवक्याः प्रथमपुष्पचीरं शिरसि गृहीत्वा तूर्येण पुरीमध्ये नृत्यन्त्या जीवद्यशसा चर्यागतो ऽतिमुक्तकमुनिर्दिव्यज्ञानी दृष्टो भणितः। देवत्वमपि[1] महोत्सवे नृत्यं कुरु। मुनिनोक्तम्—न मे कल्पते नृत्यम्। ततो मार्गं रुद्ध्वा स्थिता सा। अतिकदर्थितेन मुनिनोक्तम्—मूढे किं नृत्यसि देवक्याः पुत्रेण तव भर्ता हन्तव्य इत्याकर्ण्य तच्चीरं तया पादेन मर्दितम्। पुनर्मुनिनोक्तम्—तव पिता तेनैव हन्तव्य इत्याकर्ण्य तच्चीरं स्फाटितम्। पुनरुक्तं मुनिना—तव कुलमपि निर्मूलयितव्यं तेनैव। इत्याकर्ण्य दुःखिता गृहे आगत्य पतित्वा स्थिता। कंसेन पृष्टया तन्मुनिवचनं कथितम्। नान्यथा मुनिभाषितमिति संचिन्त्य मत्वा प्रणम्य कंसेन वसुदेवः पूर्ववरं याचितो लब्धश्च। देवकीजातपुत्रो मया हन्तव्यः। देवकी च मम गृहे प्रसूतिं कुर्यादिति। तदाकर्ण्य देवक्या वसुदेवो भणितः—अहं तपो गृह्णामि पुत्रमरणदुःखं द्रष्टुं न शक्नोमि। ततो देवक्या सह गत्वा वसुदेवेनोद्याने फलिताम्रतले स्थितो ऽतिमुक्तक-

---

१) देवरत्नमपि

मुनिः पृष्टः—भगवन्, केन मत्पुत्रेण कंस-जरासन्धौ हन्तव्यौ। तत्प्रस्तावे हस्तधृताम्रशाखा देवक्या मुक्ता। तस्यास्त्रीणि फल-युगलान्यूर्ध्वं गतानि। एकं च फलं भूमौ पतितम्। पुनरेकमूर्ध्वं गतम्। तन्निमित्तमालोक्योक्तं मुनिना—देवक्यास्त्रीणि पुत्रयुगलानि निर्वाणगामीनि। सप्तमपुत्रेण हन्तव्यौ। अष्टमो ऽपि निर्वाणगामी पुत्रो भविष्यति। एवमेकदा देवकी कंसगृहे पुत्रयुगलं प्रसूता। तच्च देवतया भद्रिलपुरे श्रुतदृष्टिश्रेष्ठिनो ऽलकाश्रेष्ठिन्यास्तत्समये प्रसूतायाः समर्पितं तत्प्रसूतं मृतपुत्रयुगलं च देवक्यग्रे धृतं तच्च कंसेन शिलायामाहतम्। एवं तस्यास्त्रीणि पुत्रयुगलानि तत्र नीतानि। रोहिण्याष्टम्यां रात्रौ जले पतति सप्तममासे ऽपि सप्तमपुत्रं प्रसूता। वसुदेवेन स गृहीतः। बलभद्रेण छत्रं धृतम्। वृषभरूपेण शृङ्ग-दीपिका सा देवताग्रे चलिता। वासुदेवपादाङ्गुष्ठस्पर्शात्प्रतोलीक-पाटयुगलमुद्घाटितम्। जलभृतां यमुनां दत्तमार्गामुत्तीर्य मातृकागृहे प्रविश्य तस्याः पृष्ठे बालकं धृत्वा प्रच्छन्नौ स्थितौ। विवाहकाले देवक्याः क्षीरगृहं दत्तम्। तत्र यो महत्तरो नन्दनामा ऽपुत्रया तद्भार्यया यशोदया गन्धपुष्पादिभिर्मातृका पुत्रार्थमाराधिता। तस्यां रात्रौ तस्याः पुत्री जाता। रुष्टा यशोदा मातृकाग्रे तां धृत्वा निःसरन्ती वसुदेवेन बालिकां मातृकापृष्ठे धृत्वा बालकं चाग्रे धृत्वा भणिता—हे यशोदे, पुत्रं गृहाण। तं गृहीत्वा तुष्टा गता। प्रभाते देवक्यग्रे तां पुत्रिकामालोक्य कंसेन नासिका तस्या भग्ना न मारिता। अथ गोष्ठे वासुदेवे वर्धमाने कंसेन निजगृहे नक्षत्रपाता-द्युत्पातानालोक्य शकु[न]शर्मनामा नैमित्तिकः पृष्टः—किमुत्पाता जाताः। तेनोक्तम्—येन त्वं हन्तव्यः स गोष्ठे वर्धमानस्तिष्ठतीति। ततः पूर्वभवसिद्धा विद्यादेवताः स्मरणमात्रादेवागताः। भणिताश्च कंसेन—गोष्ठे मम शत्रुं मारयथ। बालकाले पूतना विद्या विषदुग्ध-स्तनी समायाता पीत्वा निर्धाटिता। काकदेवी चञ्चुपक्षत्रोटनेन

निर्धाटिता। यमलार्जुना देवी चैकपादबद्धोलूखलेन भग्ना। शकटादेवी पादप्रहारेण। तरुणकाले वृषभदेवी गलभञ्जनेन। अश्वदेवी गलमोटनेन। मेघदेवी सप्तदिने गोवर्धनोद्धरणेन। काली नागदेवी दमने पद्मानयनम्। चाणूरमल्लदेवी मर्दनैः। कंसो मारितः। उग्रसेनो राज्ये धृतः॥

[८०] लक्ष्मीमतिर्मानात्।

[कुणदि य माणो णीयागोदं पुरिसं भवेसु बहुगेसु।
पत्ता हु णीयजोणी बहुसो माणेण लच्छिमदी ॥१२३६॥]

अस्याः कथा– मगधदेशे लक्ष्मीग्रामे सोमदेवब्राह्मणस्य ब्राह्मणी लक्ष्मीमतिः रूपयौवनसौभाग्यैश्वर्यगर्विता सदा मण्डप्रिया। एकदा पक्षोपवासिनं समाधिगुप्तमुनिं चर्यायां धृत्वा प्रिये मुनिं भोजयेत्युक्त्वा प्रयोजनान्तरेण बहिर्गतः। सा चासनस्था मुखमादर्शे पश्यन्ती गर्विता मुनेर्दुर्वचनानि दत्त्वा[1] विचिकित्सां कृत्वा द्वारं पिधाय स्थिता। तत्पापात्सप्तदिनैरुदुम्बरकुष्ठिनी जाता। सर्वैस्त्यक्ता अग्निं प्रविश्य मृता। तत्रैव रजकस्य गर्दभी जाता। दुग्धपानरहिता मृता। तत्रैव गर्तायां सूकरी। तत्रैव कुर्कुटी। पुनस्तत्रैव कुर्कुरी वने दवाग्निना दग्धा मृता। भृगुकच्छे नर्मदातीरे धीवरपुत्री दुर्गन्धा काणानामा जाता। नावा लोकमुत्तारयति। एकदा तं समाधिगुप्तमुनिं नदीतीरे दृष्ट्वा तया प्रणम्योक्तम्–भगवन्मया क्वापि दृष्टो ऽसि। मुनिना कथितः पूर्ववृत्तान्तः। ततो जातिस्मरीभूय धर्ममादाय क्षुल्लिका जाता। मृत्वा स्वर्गं गता। तत आगत्य नर्मदातटे कुण्डिनपुरे राजा भीष्मो, राज्ञी यशस्वती, तयोः पुत्री रूपिणी जाता, वासुदेवेन परिणीतेति॥

---

१) मुने दुर्वचनानीता

[५१] मायाशल्याद्बभूव पूतिमुखी इत्यादि ।

[पब्भट्ठबोधिलाभा मायासल्लेण आसि पूदिमुही ।
दासी सागरदत्तस्स पुप्फदंता हु विरदा वि ॥१२८६॥]

अस्याः कथा—अजितावर्तनगरे राजा पुष्पचूलो, राज्ञी पुष्पदत्ता । अमरगुरुमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य राजा मुनिरभूत् । ब्रह्मिलार्यिकासमीपे राज्ञी आर्यिका जाता । सा राज्ञी कुलैश्वर्यमदेनार्यिकानां वन्दनां न करोति । सुगन्धद्रव्येण शरीरसंस्कारं कुर्वाणा निषिद्धापि मायया उत्तरं ददाति । कन्तिके स्वभावेन सुगन्धि शरीरं मे । एवं मायादोषेण मृत्वा चम्पायां राजश्रेष्ठिसागरदत्तस्य पूतिमुखी दासी बभूव ।

[५२] मरीचिभ्रमितश्चिरकालम् ।

[मिच्छत्तसल्लदोसा पियधम्मो साधुवच्छलो संतो ।
बहुदुक्खे संसारे सुचिरं पडिहिंडिओ मरीची ॥१२८७॥]

अस्य कथा—एकदा समवसरणे भरतेन वृषभदेवः पृष्टः । योऽयोध्यायां भरतचक्रवर्तिनः पुत्रो मरीचिः वृषभदेवेन सह मुनिरभूत् । अग्रे त्रयोविंशतितीर्थंकरा भविष्यन्ति । तेषां मध्ये को ऽपि जीवस्तव समवसरणे किमस्ति न वा । कथितं देवेन—तव पुत्रो ऽयं मरीचिमुनिरन्तिमतीर्थंकरो भविष्यति । तदाकर्ण्य सम्यक्त्वं व्रतं च परित्यज्य परिव्राजकादिरूपेण सांख्यादिमतं प्रवर्त्य संसारे बहुतरकालं भ्रान्तः ॥

[५३] अयोध्यानगरे स गन्धमित्रो ऽपीत्यादि ।

[सरजूए गंधमित्तो घाणिंदियवसगदो विणीदाए ।
विसगंधपुप्फमग्घाय मदो णिरयं च संपत्तो ॥१३५५॥]

अस्य कथा—अयोध्यायां राजा विजयसेनो, राज्ञी विजयमतिः, पुत्रौ जयसेनगन्धमित्रौ। वैराग्याज्जयसेनाय राज्यं दत्त्वा गन्धमित्राय युवराजपदं च दत्त्वा सागरसेनमुनिसमीपे मुनिरभूत्। गन्धमित्रेण राज्यमुद्दाल्य निर्धाटितो जयसेनः। स च तस्य मारणोपायं चिन्तयति। गन्धमित्रश्च घ्राणेन्द्रियासक्तः स्त्रीभिः सह सरयूनद्यां नित्यं जलक्रीडां करोति। तेन ज्ञात्वा जयसेनेन विषवासितनानासुगन्धकुसुमानि उपर्युपायेन मुक्तानि। तान्याघ्राय मृतो गन्धमित्रो नरकं गतः॥

[८४] पञ्चालगीतशब्देन मूर्च्छिता गन्धर्वसेना इति।

[पाडलिपुत्ते पंचालगीदसद्देण मुच्छिदा संती।
पासादादो पडिदा णट्ठा गंधव्वदत्ता वि ॥१३५६॥]

अस्याः कथा—पाटलिपुत्रे राजा गन्धर्वदत्तो, राज्ञी गान्धर्वदत्ता, पुत्री गान्धर्वसेना गान्धर्वमदगर्विता। यो मां गान्धर्वेण जेष्यति स मे भर्ता भविष्यतीति गृहीतप्रतिज्ञा। ततो बहवः क्षत्रियादयस्तया जिताः। तां वार्तां श्रुत्वा पोदनपुरात्पाञ्चालोपाध्यायः पञ्चशतच्छात्रैः सह वादार्थी पाटलिपुत्रमायातः। बहिरुद्याने स्थित्वा यदि को ऽपि परिचितः समायाति तदा मामुत्थापयिष्यथेति छात्रान् भणित्वा श्रान्तो ऽशोकतले सुप्तः। छात्राः पुरं द्रष्टुं गताः। सा गान्धर्वसेना विलासिनी तं द्रष्टुमायाता। एकच्छात्रं पृष्ट्वा वीणासमूहमध्ये तं च सुप्तं परिज्ञाय लालाप्रवाहार्दितविकृताननमदन्तुरमालोक्य विरक्ता गन्धवस्त्रादिभिरशोकं पूजयित्वा गता। पाञ्चालेनाशोकं पूजितमालोक्य वृत्तान्तमाकर्ण्य विरूपकं जातमित्युक्त्वा राजानं दृष्ट्वा गान्धर्वसेनासमीपे प्रासादो याचितः। तत्र स्थित्वा परमेश्वरारार्तौ वीणायाः सुस्वरं गीतमारब्धम्। गान्धर्वसेना च

तदाकर्ण्य सक्ता तत्सन्मुखमागच्छन्ती प्रासादात्पतिता मृता संसारं दीर्घं गता ॥

[५८] मानुषमांसासक्त इत्यादि ।

[माणुसमंसपसत्तो कंपिल्लवदी तदेव भीमो वि ।
रज्जं भट्ठो णट्ठो मदो य पच्छा गदो णिरयं ॥१३५७]

अस्य कथा—काम्पिल्यनगरे राजा भीमो, राज्ञी सोमश्रीः, पुत्रो भीमदासः । कुलक्रमेण नन्दीश्वराष्टदिनेषु जीवघातनिषिद्धघोषणायां दापितायां तेन भीमेन जिह्वेन्द्रियासक्तेन सूपकारो मांसं याचितः । तेन च श्मशानान्मृतं बालकमानीय संस्कृत्य दत्तम् । तेन च तुष्टेन पृष्टः—किं कारणमिदं मृष्टम् । लब्ध्वा ऽभयेन सत्यं कथितम् । तेनेदमेव मे देहीत्युक्तम् । ततः सूपकारो लडुकेन प्रपञ्चेन नित्यनित्यमेकैकं बालं मारयित्वा ददाति । जनेन ज्ञात्वा मन्त्रि[णः] कुमारेण कथितम् । ततो भीमदासो राज्ये प्रतिष्ठापितः । भीमः सूपकारेण सह निःसारितः । विन्ध्यमध्ये सूपकारो ऽपि तेन भक्षितः । मेखलपुरे गतो वासुदेवेन मारितो नरकं गतः ॥

[५९] चोरो बली सुवेग इत्यादि ।

[चोरो वि तह सुवेगो महिलारूवम्मि रत्तदिट्ठीओ ।
विद्धो सरेण अच्छीसु मदो णिरयं च संपत्तो ॥१३५८॥]

अस्य कथा—भद्रिलपुरे इभो धनपतिः, भार्या धनश्रीः, पुत्रो भर्तृमित्रस्तस्य भार्या देवदत्ता । एकदा भर्तृमित्रादयो द्वात्रिंशदीश्वर-वणिक्पुत्राः सभार्याः क्रीडितुमुद्यानं गताः । तत्र वसन्तसेनस्य श्रेष्ठिपुत्रस्योत्सङ्गे मस्तकं धृत्वा वसन्तमालाभार्या सुप्ता । तथा भर्तृ-मित्रस्य देवदत्ता वसन्तमालया वसन्तसेनो भणितः—चूतमञ्जरी-

मिमां देहि कर्णपूरं करोमि। तेनोक्तम्—किमेवं स्थितो ददामि। [1]उद्धो भूत्वा वा एवं स्थितो देहीत्युक्ते तेन बाणः पुङ्खपरम्पराविधिनानीय दत्ता। तमालोक्य देवदत्तया भर्तृमित्रो ऽपि मञ्जरीं तथा याचितः। स च धनुर्वेदमजानन् लज्जितो ऽलीकोत्तरं दत्त्वा निजोत्तरीयं वस्त्रं तस्याः गण्डूकं कृत्वा निर्गतो द्रोणाचार्यसमीपे बहुरत्नानि दत्त्वा विशिष्टो धनुर्वेदः शिक्षितः। मेघपुरपत्तने राजा मेघसेनो, राज्ञी मेघवती, पुत्री मेघमाला सुरूपा सकलकलाकुशला। नैमित्तिकादेशात्तस्याश्चन्द्रवेधो रचितः। न को ऽपि तद्वेद्धुं समर्थः। भर्तृमित्रेणागत्य चन्द्रवेधं कृत्वा मेघमालां परिणीय द्वादशवर्षाणि तत्र स्थितः। धनपतिधनश्रीभ्यां वार्तां ज्ञात्वा भर्तृमित्रस्यानयनाय लेखाः प्रेषिताः। मेघमालया गृहीत्वा ते तस्य न दर्शिताः। धूर्तैकलेखवाहकेन बहिर्निर्गतस्य दर्शितो लेखस्तमवधार्य विधिनैकरथेन मेघमालया सहागच्छन्महाटव्यां सुवेगभिल्लाधिपतिचौरेण ग्रहीतुमारब्धः। युद्धे सर्वायुधक्षये हस्ते बाणमेकमालोक्य भर्तृमित्रेण मेघमाला भणिता। प्रिये, रथादवतर त्वम्। तस्या अवतरन्त्याः सुवेगो रूपं पश्यन्नासक्तो भर्तृमित्रेणाक्ष्णोर्बाणेन विद्धो मृतो नरकं गतः॥

[५७] गृहपतिगृहिणीत्यादि।

[फासिदिएण गोवे सत्ता गिहवदिपिया वि णासक्के।
मारेदूण सपुत्तं धूसाए मारिदा पच्छा ॥१३५९॥]

अस्य कथा—आभीरदेशे नासिक्यनगरे गृहपतिः सागरदत्तो, भार्या नागदत्ता, पुत्रः श्रीकुमारः, पुत्री श्रीषेणा। निजेन नन्दगोपालकेन सह नागदत्ता कुकर्मरता जाता। एकदा नागदत्तासंकेतितो नन्दः शरीरकारणमिषं कृत्वा गृहे स्थितः। सागरदत्तः पश्चिमरात्रौ

---

१) रुद्धो भूत्वा

गोधनं गृहीत्वा अटव्यां गतस्तत्र सुप्तश्च नन्देन गत्वा मारितः। ततो नागदत्तानन्दौ कामासक्तौ स्थितौ। श्रीकुमारो नागदत्ताया उपरि नित्यं जूरयति। ततो रुष्टया नागदत्तया भणितो नन्दः—श्रीकुमारमपि मारय। श्रीषेणयापि तच्च ज्ञातम्। एकदा नन्दो गृहे शरीरकारण-व्याजेन स्थितः। श्रीकुमारः पश्चिमरात्रौ गोधनं गृहीत्वा गच्छन् भगिन्या भणितः—यथा तव पिता नन्देन मारितः तथा नागदत्ता-वचनेनाद्य त्वमपि मार्यसे लग्नो यत्नं कुर्याः। ततोऽटव्यां काष्ठमेकं निजवस्त्रेण प्रच्छाद्य श्रीकुमारस्तिरोहितः स्थितः। नन्देनागत्य खड्गेनाहतो काष्ठे। पृष्टे सेल्लेनाहत्य नन्दो मारितः। प्रभाते दो-हनार्थं गोधनं गृहीत्वा श्रीकुमारो गृहमागतो जनन्या पृष्टः—मया नन्दस्त्वां गवेषयितुं प्रेषितः। स क्व तिष्ठति। तेनोक्तम्—मे सेल्लोऽयं जानाति। सेल्लं रक्तलिप्तमालोक्य रुष्टया तया स उपविष्टो मुसले-नाहत्य मारितः। श्रीषेणया च सा मुसलेनाहत्य मारिता। सर्वे नरकं गताः॥

[५८] दग्धा द्वीपायनेत्यादि।

[बारवदी य असेसा दड्ढा दीवायणेण रोसेण।
बद्धं च तेण पावं दुग्गदिभयबंधणं घोरं॥१३७४॥]

अस्य कथा—द्वारावतीनगर्यां राजानौ नवमबलभद्रवासुदेवौ। एकदोर्जयन्तपर्वते ऽरिष्टनेमिं समवसरणस्थं वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य बलभद्रेण पृष्टम्—भगवन्, कियत्कालमीदृशी विभूतिर्वासुदेवस्य भविष्यति। भगवतोक्तम्—द्वादश वर्षाणि। ततो मद्याद् यादवानां विनाशो भविष्यति। तव मातुलद्वीपायनकुमारकोपाग्निना द्वारा-वत्या दाहः। अनया तव क्षुरिकया जरत्कुमारहस्तेन वासुदेवस्य मरणम्। एतदाकर्ण्य गत्वा मद्यमूर्जयन्तगुहायां निक्षिप्तम्। द्वीपायनो

मुनिर्भूत्वा पूर्वदेशं गतः। बलभद्रेण क्षुरिका अतीव घृष्ट्वा सूक्ष्मा समुद्रे निक्षिप्ता मत्स्येन गृहीता। तस्मात्पारम्पर्येण विन्ध्यप्रविष्ट-जरत्कुमारेण प्राप्य बाणाग्रे दत्ता। ततो द्वादशवर्षेषु गतेषु द्वीपायन-मुनिरधिकमासान्नजानन्नागत्य गिरिनगरसमीपे उष्ट्रग्रीवपर्वते आताप-नेन स्थितः। तस्मिन्नेव दिने शम्बुकुमारादिभिः क्रीडार्थमूर्जयन्ते गतैस्तृषितैर्मद्यजलं पीत्वा मत्तैरागच्छद्भिर्बलदेववासुदेवाभ्यां द्वीपायनमुने रक्षार्थं कृतपाषाणवृत्तिमालोक्य तैः स मुनिः पाषाणैः पूरितः। तस्यातीव रुष्टस्य निर्गतकोपाग्निना द्वारवती प्रज्वालिता। वार्तामाकर्ण्य बलभद्रवासुदेवाभ्यामागत्य प्रणम्य क्षमां कारितः। बृहद्वेलायां द्वे अङ्गुली दर्शिते। ततस्तौ द्वौ मुक्तावन्यत्सर्वं दग्धम्। जरत्कुमारेणाटव्यां तेनैव बाणेन सुप्तो हतो वासुदेवः। बलभद्र-स्तन्मृतकं वहमानः पूर्वभवमित्रेण देवेन संबोधितस्तुङ्ग्यां तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गे देवो जातः॥

[५९] सगरस्य राजसिंहस्येत्यादि।

[सट्ठि साहस्सीओ पुत्ता सगरस्स रायसीहस्स।
अदिबलवेगा संता णट्ठा माणस्स दोसेण ॥१३८१॥]

अस्य कथा—जम्बूद्वीपे अपरविदेहे रत्नसंचयपुरे राजा जय-सेनो, राज्ञी जयसेना, पुत्रौ रतिषेणधृतिषेणौ। एकदा रतिषेणमरणे जयसेनोऽतिशोकं कृत्वाशातनकं कर्म बद्ध्वा धृतिषेणाय राज्यं दत्त्वा महारुतनाम्ना सामन्तेन सह तपो गृहीत्वा संन्यासेन मृत्वाऽच्युते महाबलनामा देवो जातः। महारुतसामन्तोऽपि तत्रैव मणिकेतुनामा देवो जातः। तत्र परस्परं ताभ्यां भणितम्—यः प्रथमं मानुष्यभवं प्राप्नोति स इतरेण संबोधनीयः। अथा-

---

1) °शाजनकं।

योध्यायां राजा समुद्रविजयो, राज्ञी विजया, महाबलदेवश्च्युत्वा तत्पुत्रः सगरश्चक्रवर्ती जातः। एकदा सगरकारितवसतिकायां जनक्षोभकार्यातिशयेन सुन्दरं नवयौवनभरं मुनिरूपमादाय मणिकेतुदेवेन संबोधितः सगरो, न वैराग्यं गतः। पुनरपि अयोध्यासमीपे चतुर्मुखमुनिकेवलज्ञानोत्पत्तौ समवसरणे तेन संबोधितो, न वैराग्यं गतः। एकदा षष्टिसहस्रपुत्रैरतुलबलवीर्यैरतिगर्वितैः कीर्त्यर्थिभिः सगरो भणितः—देव, आदेशं देहि असाध्यं च साधयामः। भणितं तेन—न किमप्यसाध्यं ममास्ति, सर्वं सिद्धम्। पुनरपि तैरुक्तम्—तथापि किमप्यादेशं देहि। ततस्तेनोक्तम्—कैलासगिरौ भरतचक्रवर्तिकारितरत्नसुवर्णमयप्रतिमानां रक्षार्थं खातिकां कुरुत। इत्याज्ञां प्राप्य गतास्ते। दण्डरत्नेन गङ्गाखातिकायां कृतायां तेन मणिकेतुदेवेन भणितास्ते—मदीयं भवनं भवद्भिरात्मनाशार्थं विनाशितम्। इत्युक्त्वा तन्मिषं कृत्वा भीमभगीरथौ मुक्त्वा मायया सर्वे च भस्मीकृताः। भीमभगीरथौ सिंहासनस्थौ दृष्ट्वा अन्येषां मन्त्रिवचनान्मरणं ज्ञात्वा सगरो वैराग्यं गतः। मणिकेतुदेवेन ब्रह्मचारिरूपमादाय संबोधितः। भगीरथाय राज्यं दत्त्वा भीमसेनेन सह तपः कृत्वा मोक्षं गतः। मणिकेतुदेवेनोत्थापितास्ते सगरपुत्रास्तां वार्तामाकर्ण्य तपो गृहीत्वा मोक्षं गताः। भगीरथोऽप्येकदा वरदत्तपुत्राय राज्यं दत्त्वा तपो गृहीत्वा गङ्गातटे कायोत्सर्गेण स्थितः। क्षीरसमुद्रजलेन देवैस्तस्य पादौ धौतौ। तज्जलं देवैर्वन्द्यमानं गङ्गायां पतितम्। ततः वन्द्या पवित्रा भागीरथी जाता। भगीरथश्च तत्रैव निर्वाणं गतः॥

[६०] भरतग्रामस्य कुम्भकारेणेत्यादि।

[सस्सो य भरधगामस्स सत्त संवच्छराणि णिस्सेसो।
दड्ढो डंभणदोसेण कुंभकारेण रुट्ठेण ॥१३८८॥]

अस्य कथा—अङ्गदेशे वटग्रामे कुम्भकारः सिंहनामा भाजनानि विक्रेतुं बलीवर्दान्भृत्वा भरतग्रामं गतः। तत्रत्यनारोभिः मायया परकीयगृहाणि तस्य दर्शयित्वा प्रभाते मूल्यं दास्याम इति भणित्वा सर्वभाजनानि नीतानि। प्रभाते कतिपयधूर्तैरागत्य गीतवादादिभिस्तं मोहयित्वा बलीवर्दा अपि नीताः। भाजनमूल्यं तस्य याचयतो न मया गृहीतमिति सर्वस्त्रीभिर्भणितम्। ततः सप्त वर्षाणि खलीकृतं धान्यं ग्रामममहितमत्यन्तकुपितेन दग्धम् ॥

[६१] साकेतपुरे सीमंधरस्य पुत्रो मृगध्वजो नामेत्यादि।

[सव्वे वि गंथदोसा लोभकसायस्स हुंति णादव्वा।
लोभेण चेव मेहुणहिंसालियचोज्जमाचरदि ॥१३९२॥]

अस्य कथा—अयोध्यायां राजा सीमंधरो, राज्ञी अजितसेना, पुत्रो मृगध्वजः। राजकीयो भद्रमहिषो भणितो गच्छत्यागच्छति पादयोश्च पतति। तं राजकीयोद्याने पुष्करिण्यां क्रीडन्तं दृष्ट्वा तेन मृगध्वजकुमारेण मन्त्रिश्रेष्ठिपुत्राभ्यां सह क्रीडितुं तत्रागतेन मांसासक्तेनोक्तम्—पश्चिमचट्टुकमस्य महिषस्य मे देहीति। भृत्येन च चट्टुके छिन्ने भद्रमहिषस्त्रिभिः पादैर्गत्वा राजाग्रे पतितः संन्यासं पञ्चनमस्कारांश्च नृपतः प्राप्य सौधर्मे देवो जातः। तं वृत्तान्तं ज्ञात्वा रुष्टेन राज्ञा सिद्धार्थमन्त्री भणितस्त्रीनपि तान् मारय। त्रिभिरपि तां वार्तामाकर्ण्य मुनिदत्ताचार्यसमीपे तपो गृहीत्वा परमवैराग्यात् घातिक्षयं कृत्वा मृगध्वजेन केवलमुत्पादितम् ॥

[६२] रामस्य जामदग्न्यस्येत्यादि।

[रामस्स जामदग्गिस्स वजं घित्तूण कत्तिविरिओ वि।
णिधणं पत्तो सकुलो ससाहणो लोभदोसेण ॥१३९३॥]

अस्य कथा—अयोध्यायां राजा कार्तवीर्यो राज्ञी पद्मावती। अटव्यां तापसपल्लिकायां तापसो जमदग्निर्भार्या रेणुका पुत्रौ श्वेतराममहेन्द्ररामौ। एकदा रेणुकाया भ्राता वरदत्तमुनिः पल्लिका-समीपे वृक्षमूलं गृहीतवान्। तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य रेणुकया सम्यक्त्वं गृहीतम्। भगिन्यां स्नेहाद् वरदत्तमुनिः परशुविद्यां कामधेनुविद्यां च दत्त्वा गतः। एकदा कार्तवीर्यो राजा हस्तिधरणार्थं वनमागतो जमदग्निना कामधेनुमाहात्म्येन महाविभूत्या भोजनं कारितः। स च लोभात्संग्रामे जमदग्निं व्यापाद्य कामधेनुं कार्तवीर्यो गृहीत्वा गतः। समिधादिकं गृहीत्वा श्वेतराममहेन्द्ररामौ समायातौ। श्वेतरामेणालोक्य रेणुका पृष्टा—किमिति दुःखिता तिष्ठसि। रेणुकया कथिते वृत्तान्ते पुत्रौ योद्धुं चलितौ। रेणुकया दत्तां परशुविद्यां गृहीत्वा ऽयोध्यायां गत्वा श्वेतरामेण सबलवाहनः कार्तवीर्यो मारितो नरकं गतः। ततः श्वेतरामः परशुरामनामा सार्वभौमो राजा जातः॥

[६३] नित्यं च खाद्यमानो भल्लूकेत्यादि।

[भल्लुंकीए तिरत्तं खज्जंतो घोरवेदणट्टो वि।
आराधणं पवण्णो झाणेणावंतिसुकुमालो ॥१५३९॥]

अस्य कथा—कौशाम्बीनगर्यां राजा अतिबलः, पुरोहितः सोमशर्मनामा, भार्या काश्यपी, पुत्रावग्निभूतिवायुभूती। सोमशर्मणि मृते गोत्रिभिर्गृहीतं तत्पदं मूर्खत्वात्तयो राज्ञा न दत्तं पदम्। ततो ऽभिमानाद्राजगृहनगरे निजपितृव्यसूर्यमित्रसमीपं गतौ। वार्ता च कथिता। तेन च भिक्षाभोजनेन॥

"षडङ्गानि चतुर्वेदा मीमांसान्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या एताश्चतुर्दश॥"

कतिपयदिनैः पाठितौ। कौशाम्बीमागत्य पितुः पदे स्थितौ। अथ राजगृहसूर्यमित्रपुरोहितस्यैकदा सन्ध्यायामादित्यार्घ्यं ददतस्तडागे पद्मोपरि जलेन सह राजकीयमुद्रिका पतिता। रात्रौ भीतेन सुधर्ममुनिः पृष्टः। अवधिज्ञानेन ज्ञात्वा तेन कथिता। प्रभाते तेन गृहीता। केवलीलोभेन सुधर्ममुनिसमीपे सूर्यमित्रो मुनिरभूत्। केवलीं पुनः पुनः पृच्छन् क्रियामागमं च पाठितो धर्मपरिणतो भूत्वा एकाकी विहरन् कौशाम्ब्यां चर्यार्थमुच्चनीचगृहान् भ्रमन्नग्निभूतिगृहे गतः। अग्निभूतिना च सूर्यमित्रमुनेः परमभक्त्या दानं दत्तम्। वायुभूतिना भणितेनापि वन्दना न कृता प्रत्युत निन्दा कृता। सूर्यमित्रमुनिमनुव्रजता[1]ग्निभूतिना धर्ममाकर्ण्य तपो गृहीतम्। अग्निभूतिभार्यया सोमदत्तया तां वार्तामाकर्ण्य दुःखितया वायुभूतिर्भणितः—रे निकृष्ट, सूर्यमित्रमुनेः प्रणामो न कृतः, निन्दा च कृता, तेन कारणेनाग्निभूतिना तपो गृहीतम्। इत्येवं वदन्ती सा वायुभूतिना पादेन मुखे हत्वा भणिता—त्वमपि तस्यैवाशुचेर्नग्नस्य पार्श्वे गच्छ। तया रोषान्निदानं कृतम्। जन्मान्तरे तव पादं सपुत्राहं भक्षयामीति। स वायुभूतिर्मुनिनिन्दाप्रभवपापात्सप्तदिनैरुदुम्बरकुष्टेन मृत्वा कौशाम्ब्यां नटस्य गर्दभी जाता। मृत्वा तत्रैव गर्तासूकरी। मृत्वा चम्पानगर्यां चाण्डालगृहे कुर्कुरी। पुनस्तत्रैव चाण्डालपुत्री अतीव विरूपका दुर्गन्धान्धा च जाता। जम्बूवृक्षतले महता कष्टेन जम्बूफलानि प्राप्तानि भक्षयन्ती अग्निभूतिमुनिना दृष्टा। भणितं च तेन—केनापि कर्मणा वराकिका कीदृशी जाता महता कष्टेन जीवति। तच्छ्रुत्वा सूर्यमित्रमुनिनोक्तम्—तवायं भ्राता वायुभूतिर्गर्दभी शूकरी कुर्कुरी भूत्वा चाण्डाली भूता। ततस्तेन संबोध्य पञ्चाणुव्रतानि ग्राहिता। मृत्वा चम्पायां पुरोहितनागशर्म-

१) °व्रजतोऽ .

पुत्री नागश्रीर्जाता। नागोद्याने श्रेष्ठिमन्त्र्यादिकन्याभिः सह नागपूजां कृत्वा नागश्रीः सूर्यमित्रमुनेर्विहरमाणस्य तत्रागतस्य समीपे गता। तामालोक्याग्निभूतिमुनेः स्नेहो जातः। पृष्टेन सूर्यमित्राचार्येण स्नेहकारणं कथितम्। ततोऽग्निभूतिना संबोध्य सम्यक्त्वमणुव्रतानि च ग्राहिता भणिता—हे पुत्रि, यदि तव पिता व्रतानि त्याजयति तदागत्य व्रतानि मम समर्पयेस्त्वमिति। कन्याभिर्नागशर्मणो वार्तायां कथितायां तेनोक्तम्—पुत्रि ब्राह्मणानां सर्वोत्तमवर्णानां न युक्तं क्षपणकधर्मानुष्ठानं कर्तुमतस्त्यज त्वम्। तयोक्तम्—तर्हि तस्यैव मुनेः समर्पयामि। ततस्तां हस्ते धृत्वा मुनिसमीपं चलितः। मार्गे लोकवेष्टितो बद्धः पटहेन वाद्यमानेन शूलिकासमीपं नीयमानः पुरुषो दृष्टः। नागश्रिया पिता पृष्टः—तात, किमर्थमयं बद्धः। कथितं तेन—वसन्तसेनो वणिक्कुलं भाडद्रव्यं याचमानोऽनेन मारितः। ततो निगृह्यते लग्नः। नागश्रियोक्तम्—जीववधे एवंविधो निग्रहो भवति। तत्रैव मया निवृत्तिर्गृहीता। ततस्तेनोक्तम्—तिष्ठत्विदं व्रतं वेदेषूक्तमास्तेऽन्यानि त्यज॥ अग्रे गच्छन्त्या तयापरः पुरुषो बद्धो दृष्टः। पिता पृष्टश्च। तेन कथितम्—यथा वणिक् नारदनामा व्यलीकवचनैः परं प्रतार्यैव सार्टि करोति। एकदा साटिकेन सह राज्ञोऽग्रे झकटके जाते राज्ञा मृषावादित्वं अस्य ज्ञात्वा जिह्वाहस्तपादादिच्छेदनमस्य भणितम्। शेषं पूर्ववत्॥ एवं चौर्यपरदारातिलोभदोषान्निगृह्यमाणपुरुषान् दृष्ट्वा नागशर्मणा भणितम्—पुत्रि, तिष्ठन्तु व्रतान्येतानि किंतु तं क्षपणकं गर्हित्वा आगच्छामि येन स बालानां व्रतं न ददाति। तत्र गत्वा दूरस्थेन तेनोक्तम्—हे मुने, किं मत्पुत्रिका व्रतादिदानेन प्रतारिता त्वया। सूर्यमित्रमुनिनोक्तम्—भो भट्ट, मदीया पुत्री नागश्रीरियं न त्वदीया। एहि पुत्रीति भणिते नागश्रीर्भट्टारकसमीपे गत्वोपविष्टा। ततो भट्टेनान्यायमिति कुर्वता चन्द्रवाहनराजस्य कथितम्। ततः सोऽपि

सर्वनगरजनेन सह मुनिसमीपमागतः। ततो मुनिभट्टयोर्मदीया मदीयेति विवादे मुनिनोक्तम्—चतुर्दशविद्यास्थानानि मया पाठिता मदीयेयम्। राज्ञोक्तम्—तर्हि पाठय। मुनिनोक्तम्—वायुभूते पठ। ततो नागश्रिया यथास्थानं चतुर्दशविद्यास्थानानि पठितानि। विस्मितेन राज्ञोक्तम्—भगवन्, संबन्धं कथय। ततः पूर्वकथासंबन्धः कथितः। तं श्रुत्वा राजा बहुराजपुत्रैः सह प्राव्राजीत्। नागशर्मा ऽपि मुनिर्भूत्वा अच्युते देवो जातः। नागश्रीरपि तपः कृत्वा अच्युते देवो जातः। अग्निमन्दरगिरौ सूर्यमित्राग्निभूती तु निर्वाणं तगौ॥

तथावन्तिदेशे उज्जयिन्यां नगर्यां इन्द्रदत्तेभ्यस्य गुणवत्यां नागशर्मचरो देवो ऽच्युतादागत्य सुरेन्द्रदत्तनामा पुत्रो जातः। तत्रैव सुभद्रेभ्यस्य पुत्रीं यशोभद्रां परिणीतवान्। तया चैकदावधिज्ञानी मुनिः पृष्टः—मम पुत्रो भविष्यति न वेति। मुनिनोक्तम्—तव पुत्रो भविष्यति। तन्मुखं दृष्ट्वा श्रेष्ठी तपो ग्रहीष्यति। सो ऽपि मुनिं दृष्ट्वा तपो ग्रहिष्यतीति नागश्रीचरो देवस्तत्पुत्रः सुकुमालनामा जातः। सुरेन्द्रदत्तस्तस्य श्रेष्ठिपदं बन्धयित्वा मुनिरभूत्। सुकुमालश्रेष्ठी च यौवनस्थो द्वात्रिंशत्प्रासादेषु अप्रतिरूपद्वात्रिंशत्कुलपुत्रिकाभिः सह भोगाननुभवन् स्थितः। निमित्तिना च पूर्वं तस्य आदेशः कृतः। मुनिदर्शनेनायं मुनिर्भविष्यतीति। ततो गृहे मुनीनां प्रवेशो निषिद्धः। एकदा प्रद्योतराज्ञो भ्रमातुकेनानर्घ्यो रत्नकम्बलो दर्शितो राज्ञा ग्रहीतुं न शक्तः। सुकुमालजनन्या तं गृहीत्वा द्वात्रिंशद्वधूनां प्राणहिताः कारिताः। तत्रैका प्राणहिता मांसखण्डं मत्वा सौलिकया नीत्वा चञ्च्वा हत्वा घातिता। राज्ञो गणिकया राज्ञो दर्शिता सुकुमालभार्याप्राणहितेयमिति श्रुत्वा जाताश्चर्यो राजा सुकुमालस्वामिनं द्रष्टुं गृहे गतः। तज्जनन्या अभ्युत्थानं कृतम्। एकस्मिन्पट्टे राज्ञा सहोपविष्टस्य मुहुर्मुहुः कण्ठहारारात्रिकोद्द्योतादक्षिगलनं सह भुञ्जानस्यैकैकसिक्थभक्षणं दृष्ट्वा राज्ञा तज्जननी पृष्टा तया

कारणं कथितम् । ततो विस्मितेन राज्ञा भणितम् । अवन्तिसुकुमाल इति नाम कृतम् । भुक्तोत्तरं क्रीडनवाप्यां जलक्रीडां कुर्वतो राज्ञो मुद्रिका वाप्यां पतिता। गवेषयता राज्ञा तत्रानेकमणिकुण्डलाभरणानि दृष्टानि। ततो विस्मितो लज्जयित्वा स्वगृहे गतः। सुकुमालस्वामिमातुलेन गणधराचार्येण सुकुमालस्वामिनः स्वल्पमायुर्ज्ञात्वा तदीयोद्याने आगत्य योगो गृहीतः। यशोभद्रया गृहे प्रवेशः स्वाध्यायघोषश्च योगपरिसमाप्ति यावन्निषिद्धः। योगनिष्ठापनक्रियां कृत्वा ऊर्ध्वलोकप्रज्ञप्तिं पठताच्युतस्वर्गे देवानामायुरुत्सेधसौख्यादिव्यावर्णनं कर्तुमारब्धम्। तच्छ्रुत्वा सुकुमालस्वामी जातिस्मरो भूत्वा मुनिसमीपे आगतः। मुनिनोक्तम्—त्रीणि दिनानि तवायुर्यज्जानासि तत्कुरु। ततस्तयोर्गृहीत्वा संन्यासं च पादोपयानमरणे स्थितः। या अग्निभूतेर्भार्या कृतनिदाना सा संसारे परिभ्रम्य तत्रैव शृगाली जाता। ततस्तया चतुःपुत्रया पूर्वभववैरसंबन्धेन पादाभ्यामारभ्य खादन्त्या तृतीयदिने परमसमाधिना कालं कृत्वाच्युते देवो जातः। देवैर्महाकाल इति घोषणान्महाकाल यत्र गन्धोदकवर्षस्तत्र गन्धवती नदी। यत्र भार्याभिरागत्य कलकलः कृतस्तत्र कलकलेश्वरो जात इति॥

[६४] मौद्‌गिल्लगिरावित्यादि।

[मोग्गिल्लगिरिम्मि य सुकुसलो वि सिद्धत्थदइयभयवंतो ।
वग्घीए वि खज्जंतो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५४०॥]

अस्य कथा—अयोध्यायां राजा प्रजापालः, श्रेष्ठी सिद्धार्थ-इभ्यः। तस्य द्वात्रिंशद्भार्या अपुत्रास्तासां मध्ये अतीव वल्लभा जयावती। सा पुत्रार्थं यक्षाणां पूजां कुर्वाणा दिव्यज्ञानिमुनिना भणिता—पुत्रि,

कुदेवभक्तिं परित्यज्य निश्चला जिनधर्मे भव। येन तव सप्तदिनमध्ये गर्भसंभूतिर्भवतीति। ततस्तुष्टा दृढा जिनधर्मे सा स्थिता। कतिपयदिनैः सुकोशलनामा पुत्रो जातः। तन्मुखं दृष्ट्वा श्रेष्ठी नयंधरमुनिसमीपे मुनिरभूत्। मां बालपुत्रिकां मुक्त्वा गत इति मत्वा सिद्धार्थमुनेरुपरि जयावती अत्यर्थं कुपिता। मुनिना च किमस्य तपो दातुं युक्तमिति कोपाद्गृहे प्रवेशो निषिद्धः। सुकोशलेन क्रमेण वृद्धिं गतेन द्वात्रिंशद्भार्याः परिणीताः। एकदा प्रासादोपरि भूमिस्थितेन जननीधात्रीभार्यासमन्वितेन नगरशोभां पश्यता दिग्देशान्तरं विहृत्यागतश्चर्यायां प्रविष्टः सिद्धार्थमुनिमजानता तेन पृष्टः। को ऽयम्। जयावत्या कुपितयोक्तम्—रंकः को ऽप्ययं याति। सुकोशलेनोक्तम्—नायं रङ्कः सर्वोत्तमलक्षणयुक्तत्वात्। ततः सुनन्दाधात्र्या श्रेष्ठिनी भणिता। तव कुलप्रभोः परममुनेश्च निन्दावचनं वक्तुं न युक्तम्। ततः श्रेष्ठिन्या सा भणिता—मौनेन तिष्ठ। अक्षिसंज्ञया च सा वारिता। प्रतारितो ऽहमनयेति चिन्तयन्सुकोशलः सूपकारेण भणितः—भोजनवेला संजातेति। ततो जननीधात्रीभार्याभिर्भणितो भोजनं क्रियतामिति। तेनोक्तम्—मयास्योत्तमपुरुषस्य स्वरूपं ज्ञात्वा भोक्तव्यमिति। ततः सुनन्दया यथार्थे पूर्ववृत्तान्ते कथिते सुकोशलो मुनिसमीपे गतो निजभार्यायाः सप्रभाया गर्भस्थितपुत्रस्य श्रेष्ठिपट्टं बन्धयित्वा सिद्धार्थसमीपे मुनिर्जातः। आर्तेन मृत्वा जयावती मगधदेशे मौद्गिल्लगिरौ व्याघ्री त्रिपुत्रा जाता। तौ द्वौ मुनी विहरमाणौ मौद्गिल्लगिरौ चतुर्मासोपवासेन योगं गृहीत्वा योगावसाने चर्यायां प्रविष्टौ तां व्याघ्रीमालोक्य संन्यासेन स्थितौ तया क्रमेण भक्षितौ सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नौ सुकोशलहस्ते लाञ्छनमालोक्य व्याघ्री जातिस्मरी जाता। हा त्यक्तजिनधर्माः प्राणिनः संसारे परिभ्रमन्तः पुत्रादीनपि भक्षयन्तीति संसारनिन्दां कृत्वा संन्यासेन मृत्वा सौधर्मं गता ॥

[६५] आर्द्रजिनमिवेत्यादि ।

[भूमीए समं कीलाकोट्टिददेहो वि अल्लचम्मं व ।
भयवं पि गयकुमारो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५४१॥]

अस्य कथा—द्वारवतीनगर्यां राजा वासुदेवो, राज्ञी गान्धर्वसेना, पुत्रो गजकुमारः । पोदनपुरे राजा अपराजितो वासुदेवस्य न सिध्यति । ततो वासुदेवेन घोषणादायि, यो ऽपराजितं बन्धयित्वा आनयति तस्मै वरमीप्सितं ददामीति । गजकुमारेण पोदनपुरं गत्वा युद्धे जित्वा ऽपराजितं बन्धयित्वा आनीय वासुदेवस्य समर्पितः । ततः कामचारं वरं वरयित्वा द्वारावतीस्त्रीजनं सेवमानः पांसुलश्रेष्ठिनो या सुरपतिनामा भार्या तस्यामासक्तः । पांसुलः कोपेन प्रज्वलन्तिष्ठति । एकदारिष्टनेमिजिनागमेन गजकुमारो धर्ममाकर्ण्य तपो गृहीत्वा विहृत्योर्जयन्तोद्याने पादोपयानमरणमुररीकृत्य संन्यासेन स्थितः । पांसुलो लोहकीलैस्तं सर्वतः कीलयित्वा नष्टः । तां वेदनामगणयित्वा परमसमाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गतः ॥

[६६] अरुचिद्धरेत्यादि [?]

[कच्छुजरखाससोसो भत्तच्छद्धच्छिकुच्छिदुक्खाणि ।
अधियासियाणि सम्मं सणक्कुमारेण वाससयं ॥१५४२॥]

अस्य कथा—हस्तिनागपुरे राजा विश्वसेनो, राज्ञी सहदेवी, पुत्रः सनत्कुमारश्चतुर्थचक्रवर्ती । एकदा सौधर्मेन्द्रस्य सभायामीशानस्वर्गात्संगमनामो देवः समायातः । तत्तेजसा सभास्थितदेवानां तेजो लुप्तमादित्ये समुत्थिते नारकाणामिव । तैर्देवैरिन्द्रः पृष्टः—किं देवानामेवैवं तेजो रूपं च किंवा मनुष्याणामपि संभवतीति । कथितमिन्द्रेण । सनत्कुमारचक्रवर्तिनस्तेजोरूपे देवेभ्यो ऽप्यधिके । ततः कौ-

तुकाद्ब्राह्मणवेषेणागत्य विजयवैजयन्तदेवाभ्यां प्रतीहारप्रवेशिताभ्यां सगन्धतैलाभ्यङ्गं कृत्वा पादविक्षेपं कुर्वतस्तस्य तेजोरूपे दृष्ट्वा भणितम्—भो चक्रवर्तिन्, यथाभूते सौधर्मेन्द्रेण व्यावर्णिते त्वदीये तेजोरूपे तथाभूते सत्ये। तच्छ्रुत्वा चक्रवर्तिनोक्तम्—किं दृष्टं भवद्भ्याम्। प्रतीक्षेथांम् दर्शयामि। ततः स्नात्वा मण्डनं भूषणं च गृहीत्वा सिंहासने स्थित्वा देवौ समाहूय दर्शितमात्मरूपम्। तं दृष्ट्वा देवाभ्यां भणितम्—प्रथमावलोकने संपूर्णं दृष्टं रूपादिकं तवेदानीं किंचिदूनं जातं जलपूर्णघटे गतबिन्दुमात्रमिव न लक्ष्यते। इत्युक्त्वा देवौ गतौ। देवकुमारपुत्राय राज्यं दत्त्वा सनत्कुमारो मुनिरभूत्। षष्ठाष्टमाद्युपवासान् कृत्वा कञ्जिकाहारादिना पारणकं कुर्वाणस्य कण्ड्वादयो रोगाः संजाताः। उग्रतपो ऽनुतिष्ठतो जल्लोषध्यादय ऋद्धयो जाताः। पुनः सौधर्मेण मुनिगुणव्यावर्णनं कुर्वता सनत्कुमारस्य शरीरनिःस्पृहत्वं व्यावर्णितम्। पुनस्तौ देवौ वैद्यरूपेणाटव्यां तत्समीपमायातौ व्याधीन् स्फेटयाम इति पुनः पुनर्भणन्तौ मुनिनोक्तौ—मे संसारव्याधिं स्फेटयथः। अमी रोगाः मम करस्पर्शादेव नश्यन्ति। किमेभिर्नष्टैः। तथा प्रतीतिश्च कृता। तयोः संसारव्याधिं त्वमेव भगवन् स्फेटयितुं समर्थ इति भणित्वा प्रकटीभूय प्रशस्य च प्रणम्य च गतौ। कतिपयदिनैः स सनत्कुमारमुनिः कर्मनिर्जरां कृत्वा मोक्षं गतः॥

[६७] मध्ये गङ्गमित्यादि।

[णावाए णिब्बुडाए गंगामज्झे अमुज्झमाणमदी।
आराधणं पवण्णो कालगओ एणियापुत्तो ॥१५४३॥]

अस्य कथा—पणीश्वरनगरे राजा प्रजापालः, श्रेष्ठी सागरदत्तः, श्रेष्ठिनी पणिका, तत्पुत्रः पणिको नामा। स वर्धमानस्वामिनं पृष्टवा

निजायुः स्तोकं ज्ञात्वा तपोगृहीत्वैकविहारी जातः। गङ्गामुत्तरतस्तस्य नौर्बुड्डा। स च केवलज्ञानमुत्पाद्य निर्वाणं गतः॥

[६८] अवमोदरेण तपसेत्यादि।

[ओमोदरिए घोराए भद्दबाहू असंकिलिट्ठमदी।
घोराए तिगिंछाए पडिवण्णो उत्तमं ठाणं॥१५४४॥]

अस्य कथा—पुण्ड्रवर्धनदेशे कोटीनगरे राजा परथः, पुरोहितः सोमशर्मा, भार्या श्रीदेवी, पुत्रो भद्रबाहुः। मौञ्जीबन्धे कृते बहुब्रह्मचारिभिः सह बहिः क्रीडता तेनैकदिवसोपरि क्रमेण त्रयोदश वट्टा वृताः। वर्धमानस्वामिनि मोक्षं गते पञ्चानां चतुर्दशपूर्वधारिणां मध्ये यश्चतुर्थश्चतुर्दशपूर्वधरो गोवर्धननामा मुनिस्तेनोर्जयन्ते वन्दनार्थं गच्छता तद्वट्टविज्ञानमालोक्योक्तम्। पश्चिमपञ्चचतुर्दशपूर्वधरो ऽयं भद्रबाहुः श्रुतकेवली भविष्यतीत्युक्त्वा पितृहस्तान्नीत्वा सर्वशास्त्राणि पाठयित्वा गृहं प्रेषितः। पुनरागत्य कुमारो ऽपि गोवर्धनमुनिसमीपे मुनिर्भूत्वा चतुर्दशपूर्वाणि पठित्वा संघधरो भूत्वा गोवर्धनगुरौ देवलोकं गते संघेन सह विहरन्नुज्जयिन्यामागतः चर्यायां प्रविष्टो खोल्लिकायां स्थितेनाव्यक्तबालेन भणितः—भगवन् मठं गच्छ। तच्छ्रुत्वा द्वादशवर्षानवृष्टिर्दुर्भिक्षं भविष्यतीति ज्ञात्वालाभेन गतः। अपराह्णे सकलमुनीनां कथितम्—अत्र देशे द्वादशवर्षाणि दुर्भिक्षं भविष्यति। स्वल्पायुरहमत्र तिष्ठामि। यूयं दक्षिणापथं गच्छत। इत्युक्त्वा स्वशिष्यो दशपूर्वधरो विशाखाचार्यः स सर्वसंघेन सह दक्षिणापथे प्रेषितः। तत्रत्यश्चन्द्रगुप्तो राजा गुरुवियोगमसहमानो भद्रबाहुसमीपे मुनिरभूत्। तीव्रबुभुक्षातृष्णाश्चानुभूयोज्जयिन्यां भद्रबाहुर्भगवान् भद्रवरसमीपे संन्यासात्स्वर्गं गतः॥

[६९] कौशाम्ब्यां ललितघटेत्यादि ।

[कोसंबीललियघडा वूढा णइपूरएण जलमज्झे ।
आराधणं पवण्णा पाओवगदा अमूढमदी ॥१५४५॥]

अस्याः कथा—कौशाम्बीनगर्यामिन्द्रदत्तादयो द्वात्रिंशदिभ्यास्तेषां समुद्रदत्तादयो द्वात्रिंशत्पुत्राः परस्परं मित्रत्वमागताः । सम्यग्दृष्टयः केवलीसमीपे ऽतिस्वल्पं निजजीवितं ज्ञात्वा तपो गृहीत्वा ते समुद्रदत्तादयो यमुनातीरे पादोपयानमरणेन स्थिताः । अतिवृष्टौ जातायां जलप्रवाहेण यमुनाद्रहे पातिताः । परमसमाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गताः ॥

[७०] कृतमासक्षपणविधिरित्यादि ।

[चंपाए मासखमणं करित्तु गंगातडम्मि तण्हाए ।
घोराए धम्मघोसो पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥१५४६॥]

अस्य कथा—चम्पायां मासोपवासं कृत्वा धर्मघोषो मुनिरुद्भगमुनेर्गोष्ठे पारणकं कृत्वा चलितः । मार्गे नष्टे हरितकायोपरि गमनमकुर्वन् तृषापीडितो गङ्गातटे वटवृक्षतले विश्रान्तः । तं दृष्ट्वा गङ्गादेव्या प्रासुकजलभृतं कलशं गृहीत्वा आगत्य प्रणम्योक्तम्—भगवन् पानीयं पिबेति । तेनोक्तम्—न कल्पते । ततो गङ्गादेवतया पूर्वविदेहं गत्वा केवलज्ञानी पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा पृष्टः । केन कारणेन पानीयं न पीतम् । तेन मुनिना कथितं केवलिनां । देवहस्तेनाहारो न कल्पते मुनीनाम् । ततः शीघ्रमागत्य सुगन्धशीतलगन्धोदकवृष्टौ कृतायां केवलज्ञानमुत्पाद्य धर्मघोषमुनिर्मोक्षं गतः ॥

[७१] चिरवैरसुरविनिर्मितेत्यादि ।

[सीदेण पुव्ववइरियदेवेण विकुव्विएण घोरेण ।
संतत्तो सिद्धिदिण्णो पडिवण्णो उत्तमं अत्थं ॥१५४७॥]

अस्य कथा—इलावर्धननगरे राजा जितशत्रुर्भार्या इला, पुत्रः श्रीदत्तः । अयोध्यायामंशुमतो राज्ञः पुत्रीमंशुमतीं स्वयंवरे परिणीतवान् । अंशुमत्याः सहैकः शुकः समायातः । स श्रीदत्तांशुमत्योर्द्यूते रममाणयोः श्रीदत्तजये[1] एकां रेखां ददाति । अंशुमतीजये द्वे रेखे ददाति । ततः श्रीदत्तेन कोपाद् ग्रीवायां चम्पितो मृतो व्यन्तरदेवो जातः । श्रीदत्तो ऽप्येकदा प्रासादस्थो मेघविनाशमालोक्य वैराग्यान्मुनिर्भूत्वा विहरन्नेकाकी निजनगरमायातः । शीतकाले बहिः कायोत्सर्गेण स्थितः । तेन व्यन्तरदेवेन घोरशीतवातौ कृत्वा शीतलजलेन सिक्तः परमसमाधिना निर्वाणं गतः ॥

[७२] उष्णमित्यादि ।

[उण्हं वादं उण्हं सिलादलं आदवं च अदिउण्हं ।
सहिदूण उसहसेणो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५४७॥]

अस्य कथा—उज्जयिन्यां राजा प्रद्योत एकदा गजधरणार्थमटव्यां गतो मत्तगजारूढः । तेन च वनगजेन दूरमटवीं प्रवेशितः । वृक्षशाखामवलम्ब्यावतीर्णो व्याघुटयैकाकी खेटग्रामे कूपतटे समुपविष्टः । ग्रामकूटजिनपालः तस्य पुत्री जिनदत्ता पानीयं भर्तुमायाता । तेन जलं पातुं याचिता महापुरुषं ज्ञात्वा जलं पाययित्वा तया पितुः कथितम् । तेन गत्वानीय स्नानभोजनादौ कारिते

---

१) जये ऽसि एकां

भृत्यलोकाः मिलिताः। जिनदत्ता राज्ञा परिणीता वल्लभा पट्टराज्ञी जाता। कतिपयदिनैर्यस्यां रात्रौ तस्याः पुत्रोत्पत्तिर्जाता तस्यां रात्रौ राज्ञा स्वप्ने वृषभो दृष्टः। ततस्तस्य वृषभसेन इति नाम कृतम्। एवमष्टवर्षेषु गतेषु राज्ञा तपो गृहीतुकामेन पुत्र, राज्यं प्रतिपालय अहं परलोकं साधयामीत्युक्तम्। तेनोक्तम्—राज्यं कुर्वता किं परलोकसिद्धिर्न भवति। पुत्र, न भवति तपःसाध्यत्वात्परलोकस्य। यद्येवं तात, ममापि राज्यकरणे निवृत्तिरस्ति। ततो भ्रातृव्यस्य राज्यं दत्त्वा द्वावपि मुनी जातौ। वृषभसेन एकाकी विहरन् कौशाम्बीपुरीसमीपे हतवातपर्वतशिलायां ज्येष्ठमासे नित्यमातापनं ददाति। सर्वे लोका जिनधर्मे ऽतीव रता जाताः। तत ईर्ष्यावशाद् बुद्धदासोपासकेनाग्निवर्णा शिला कृता। चर्यां कृत्वा आगत्य मुनिना शिलामालोक्य संन्यासं गृहीत्वा तत्रातापनस्थिते केवलज्ञानमुत्पादितम् ॥

[७३] क्रौञ्चेनेत्यादि।

[रोहेडयम्मि सत्तीए हओ कोंचेण अग्गिदइदो वि।
तं वेदणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५४९॥]

अस्य कथा—कार्तिकपुरे राजाग्निर्भार्या वीरमतिः, पुत्री कृत्तिका। एकदा नन्दीश्वराष्टम्यामुपवासं कृत्वा जिनपूजां विधाय पितुर्देवशेषां दत्त्वा गच्छन्त्यास्तस्या रूपं दृष्ट्वा ऽग्निराजेनासक्तेन सर्वलिङ्गिनो द्विजा व्यवहारिणश्च पृष्टाः। मम गृहे रत्नमुत्पन्नं कस्य तद्भवति। सर्वैर्भणितम्—तवैव भवति। मुनिभिरुक्तम्—कन्यारत्नं वर्जयित्वान्यत्तव भवति। ततो ऽनिष्टांस्तान्देशान्निर्घाट्य कृत्तिका परिणीता। कतिपयदिनैः कार्तिकेयः पुत्रो वीरमती पुत्री च तस्या

जाता। रोहेडनगरे क्रौञ्चेन राज्ञा सा परिणीता। कार्तिकेयस्य नमिप्रभृतिकुमारैः सह क्रीडां कुर्वतश्चतुर्दशवर्षाणि गतानि। सर्वकुमाराणां मातामहप्रेषितवस्त्राभरणान्यालोक्य तेन माता पृष्टा—को मे मातामहः, किं न किमपि प्रेषयति। कथितं तयाश्रुपातं कुर्वत्या। मम तवाप्येक एव पिता। पुनः पृष्टं तेन अयं किं केनापि न निषिद्धो राज्ञा। कथितं तया—मुनिभिर्निषिद्धः। ते च देशान्निर्द्धाटिताः। पुनः पृष्टम्—कीदृशास्ते, क्व तिष्ठन्ति। निर्ग्रन्थाः पिच्छकमण्डलुधारिणः परदेशेषु तिष्ठन्ति। इत्याकर्ण्य निर्गतो मुनीनालोक्य मुनिर्भूतः। माता तदार्तेन मृत्वा व्यन्तरदेवी जाता। कार्तिकेयमुनिर्विहरन् रोहेडनगरे ज्येष्ठामावास्यायां चर्यायां प्रविष्टो वीरमतिभगिनी प्रासादोपरिमभूमिस्था मम भ्रातेति परिज्ञायोत्संगस्थं भर्तुः शीर्षं परित्यज्य शीघ्रं गत्वा तत्पादयोर्लग्ना। क्रौञ्चेन तां तथा दृष्ट्वा संजातकोपेन मुनिः शक्त्या हतो मूर्च्छितो जननीचरव्यन्तरदेव्या मयूररूपेण शीतलस्वामिगृहे धृतः। समाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गतः। देवैः पूजा कृता। ततः स्वामिकार्तिकेय इति तीर्थं जातम्। वीरमतीसंबन्धेन भाउआइका [?] पर्व संजाता॥

[७४] यतिरभयघोषनामेत्यादि।

काइंदि अभयघोसो वि चंडवेगेण छिण्णसव्वंगो।
तं वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५०॥]

अस्य कथा—काकन्दीनामनगर्यां राजा अभयघोषो राज्ञी अभयमतिः। एकदा बहिर्गतेन राज्ञा चतुःपादेषु बद्ध्वा जीवन्तं कच्छपं स्कन्धे यष्ट्यावलम्ब्यागच्छन् धीवरो दृष्टः। राज्ञा चक्रेण कच्छपस्य चत्वारः पादाः छिन्नाः। कच्छपो ऽतिदुःखेन मृत्वा तस्यैव राज्ञः पुत्रश्चण्डवेगनामा जातः। एकदा चन्द्रग्रहणमालोक्याभयघोषश्चण्ड-

वेगाय राज्यं दत्त्वा मुनिर्भूत्वैकाकी विहृत्य काकन्द्यासुद्याने वीरसेनेन स्थितः। पूर्ववैराच्चण्डवेगेन चक्रेण हस्तौ पादौ च छिन्नौ। परसमाधिना केवलज्ञानमुत्पाद्य मुनिर्मोक्षं गतः ॥

[७८] दंशैरपीत्यादि ।

[दंसेहि य मसएहि य खज्जंतो वेदणं परं घोरं ।
विज्जुच्चरो धियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५१॥]

अस्य कथा—मिथिलानगर्यां राजा वामरथः, तलारो यमदण्डः, चोरो विद्युच्चरनामा नानाविज्ञानोपेतः। दिवसे शून्यदेवकुले शूनहस्तपादकुष्ठी रङ्को भूत्वा तिष्ठति। रात्रौ चोरिकायां भोगानुभवनं च दिवि दिव्यरूपेण करोति। एकदा वामरथराजस्य हारस्तेन हृतः। प्राते [ता] राज्ञा यमदण्डो भणितः। रात्रौ दिव्यरूपेण चोरेण मां मोहयित्वा हारो नीतः। तं हारं सप्तरात्रेणानयान्यथा तव निग्रहं करिष्यामीति। सप्तमदिने ऽनाथशालायाः स कुष्ठी धृत्वा तलारेण राजाग्रे नीतः। चौरो ऽयमिति भणितम्। तेनोक्तम्—नाहं चौरः। तलारेणोक्तम्। देवायमेव चौरः। ततो लोकैरुक्तम्। देव तलारश्चौरमप्राप्नुवन् रङ्कं पर्यटकं मारयति। तलारेण निजगृहं नीत्वा माघमासे रात्रौ सेचनबाधनताडनदाहनादिद्वात्रिंशत्कदर्थनाभिः कदर्थितः। तथापि नाहं चौर इति वदति। प्रभाते राजाग्रे नीत्वा तलारेणोक्तम्—देव चौरो ऽयमिति। चौरेणोक्तम्—नाहं चौर इति। अभयप्रदानं दत्त्वा राज्ञा स भणितः। किं त्वं चौरो न वा। ततस्तेनोक्तम्—चौरो ऽहम्। पुनः पृष्टं राज्ञा—कथं त्वया द्वात्रिंशत्कदर्थनाः दुःसहाः सोढाः। कथितं तेन—मया मुनिपार्श्वे नरकदुःखं श्रुतम्। तस्मात्कोटिभागमिदं न भवतीति संचिन्त्य सोढं दुःखम्। तुष्टेन राज्ञा वरं प्रार्थयेत्युक्तः। भणितं तेनास्य तलारस्य मम मित्रस्याभय-

प्रदानं दीयताम्। राज्ञा पृष्टम्—कथं तव मित्रमेषः। स कथयति। दक्षिणापथे ऽभीरदेशे वेनानदीतीरे वेनातटनगरे राजा जिनशत्रुर्भार्या जयावती तत्पुत्रो ऽहं विद्युच्चौरः। तत्र तलारो यमपाशो, भार्या यमुना, तत्पुत्रो ऽयं यमदण्डः। एकोपाध्यायपार्श्वे मया चौरशास्त्रं शिक्षितमनेन च तलारशास्त्रम्। द्वाभ्यां प्रतिज्ञा कृता। मयोक्तम्—यत्र त्वं तलारस्तत्रावश्यं मया चोरिका कर्तव्या। अनेन चोक्तम्—यत्र त्वं चौरस्तत्रावश्यं मया रक्षितव्यम्। एकदा राजा मम निजपदं समर्प्य मुनिर्जातः। तलारो ऽप्यस्य निजपदं समर्प्य मुनिर्जातः। मदीयभयादागत्य तवायं तलारो जातः। अमुं गवेषयितुमत्रागत्याहं प्रतिज्ञावशाच्चौरो जातः। पत्तनद्रव्यं हारपर्यन्तं सर्वं कथयित्वा पञ्चशतमुनिभिः सह विहरन् तामलिप्तपत्तनं गतः। पत्तनप्रवेशे स चामुण्डया आगत्य वारितः—भगवन्मम पूजा यावत्समाप्यते तावत्पत्तनं मा प्रविश त्वम्। शिष्यैः प्रेरितस्तत्र प्रविश्य पश्चिमदिशि प्राकारसमीपे रात्रौ प्रतिमायोगेन स्थितः। चामुण्डया कपोतप्रमाणदंशमशकैस्तस्योपसर्गं कृतः। विद्युच्चरमुनिस्तमुपसर्गमनुभूय मोक्षं गतः॥

[७६] हस्तिनागपुरगुरुदत्त इत्यादि।

[हत्थिणपुरगुरुदत्तो संबलिथाली व दोणिमंतम्मि।
उज्झंतो अधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं॥१५५२॥

अस्य कथा—हस्तिनागपुरे राजा विजयदत्तो, राज्ञी विजया, पुत्रो गुरुदत्तः। तस्मै राज्यं दत्त्वा विजयदत्तो मुनिरभूत्। लाटदेशे द्रोणीपर्वतसमीपे चन्द्रपुरीनगर्यां राजा चन्द्रकीर्तिर्भार्या चन्द्रलेखा, पुत्री अभयमतिः गुरुदत्तेन परिणेतुं याचिता न दत्ता। कोपाद् गुरुदत्तेन गत्वा चन्द्रपुरी वेष्टिता। अभयमत्या वार्तामाकर्ण्य जाता-

नुरागया चन्द्रकीर्तिर्भणितः—तात मां गुरुदत्ताय देहि। ततो दत्ता गुरुदत्तस्य। लोकैः कथितम्—द्रोणीमतिपर्वते व्याघ्रस्तिष्ठति। तेन समस्तो देश उद्वासितः। तच्छ्रुत्वा सर्वजनेन सह गत्वा वेष्टितो व्याघ्रः। स च गुहायां प्रविष्टः। गुहायामभ्यन्तरे काष्ठानि प्रक्षिप्याग्निः प्रज्वालितः। चन्द्रपुरीनगर्यां ब्राह्मणो भरतो, भार्या विश्वदेवी, व्याघ्रो मृत्वा तत्पुत्रः कपिलनामा जातः। गुरुदत्ताभयमत्योः सुवर्णभद्रनामा पुत्रो जातः। तस्मै राज्यं दत्त्वा गुरुदत्तो मुनिरभूत्। विहरत्कपिलक्षेत्रसमीपे कायोत्सर्गेण स्थितः। कपिलो ऽपि निजभार्यां कपिलां भोजनं गृहीत्वा शीघ्रं त्वमागच्छेत्युक्त्वा तत्क्षेत्रे गतः। तत्क्षेत्रं कर्षणायोग्यं मत्वा भट्टारको भणितस्तेन। मदीयब्राह्मण्याः कथयेस्त्वं तव भर्तान्यक्षेत्रं गत इति भणित्वा गतः। ब्राह्मण्या आगत्य पृष्टो मुनिर्मौनेन स्थितो ब्राह्मणी गृहं गता। बृहद्वेलायां कपिलेनागत्य ब्राह्मणी निर्भर्त्सिता। भट्टारकं पृष्ट्वा किं नायातासि। तयोक्तम्—पृष्टो ऽपि स न कथयति। ततो रुष्टेन तेन गत्वा शाल्मलितूलेन वेष्टयित्वाग्निः प्रज्वालितः। मुनिना परमध्यानेन केवलज्ञानमुत्पादितम्। देवागमने जाते आत्मानं निन्दयित्वा तस्यैव समीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः॥

[७७] गाढप्रहारविद्ध इत्यादि।

[गाढप्पहारविद्धो मूइंगलिया हि चालणी व कदो।
तध वि य चिलादपुत्तो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५३॥

अस्य कथा—राजगृहनगरे राजा प्रश्रेणिक एकदा वाह्यालयागतो दुष्टाश्वेन महाटवीं नीतः। तत्राटविकयमदण्डराजेन तिलकावत्याः पुत्रस्य त्वया राज्यं दातव्यमिति भणित्वा निजपुत्रीं तिलकावतीं परिणय्य राजगृहं प्रेषितः। तिलकावत्याश्चिलातपुत्रनामा

पुत्रो जातः। एकदा राज्ञा मम बहुपुत्राणां मध्ये को राजा भविष्यतीति संचिन्त्य नैमित्तिकः पृष्टः। कथितं तेन—सिंहासनस्थो भेरीं ताडयन् कुक्कुराणां क्षैरेयीं ददानो यो भुङ्क्ते अग्निदाहे च यो हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं निःसारयति स राजा भविष्यति। शुभदिने परीक्षार्थमेकदा सिंहासनभेरीसमीपे सर्वेषां राजकुमाराणां भोक्तुमुपविष्टानां क्षैरेयीं परिवेषयित्वा पञ्चशतानि कुर्कुराणां मुक्तानि। ततः सर्वे ते नष्टाः। श्रेणिकेन सर्वाणि क्षैरेयीभृतभाजनान्यात्मसमीपे धृत्वा एकैकं भाजनं कुर्कुराणां मुञ्चता भेरीमाताडयता सिंहासने उपविश्य क्षैरेयीं भुङ्क्त्वा अग्निदाहे च जाते हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं निःसारितं ज्ञात्वा राजा शत्रुभयात्कुर्कुरविट्टालणादिदोषं दत्त्वा देशान्निर्धाटितो द्राविडदेशे काञ्चीपुरे गत्वा स्थितः। एकदा चिलातपुत्राय राज्यं दत्त्वा प्रश्रेणिको मुनिरभूत्। चिलातपुत्रो ऽन्यायपरः। ततः श्रेणिकेनागत्य निर्धाटितो महाटव्यां दुर्गं कृत्वा देशकरं गृहीत्वा कालं गमयति। अस्य सखा भर्तृमित्रः। तस्य मातुलो रुद्रदत्तो भर्तृमित्रस्य निजपुत्रीं सुभद्रां न ददाति। ततो भर्तृमित्रवचनात्पञ्चशतसुभटैः सह राजगृहमागत्य चिलातपुत्रो विवाहस्नानकाले तां छलेन हृत्वा गतः। तच्छ्रुत्वा सर्वबलेन सह श्रेणिकः पृष्ठे लग्नः। पलायितुमसमर्थेन तेन मारिता सुभद्रा व्यन्तरदेवी जाता। चिलातपुत्रेण नश्यता वैभारपर्वतस्योपरि पञ्चशतमुनिसमन्वितं दत्तमुनिं दृष्ट्वा तेनोक्तम्—भगवन्मे तपो देहि। स्वकार्यं साधयामि। मुनिनोक्तम्—पुत्र गृहीत्वा तपः स्वकार्यं शीघ्रं साधय अष्टदिनान्येव तवायुरस्ति। ततस्तपो गृहीत्वा पादोपयानमरणे स्थितः। श्रेणिकस्तं तथा स्थितं दृष्ट्वा वन्दित्वा प्रशस्य च व्याघुट्य गतः। सुभद्रया च व्यन्तरदेव्या पूर्ववैरात्सौलिकारूपेण तन्मस्तके स्थित्वा लोचने तस्योत्पाटिते स्थूलशिरो मधुमक्षिकारूपं विकृत्याष्टदिनान्यनवरतं भक्ष्यमाणो ऽपि समाधिना मृत्वा सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नः॥

[७८] धन्यो यमुनाचक्रेणेत्यादि ।

[धण्णो जउणावंकेण तिक्खकंडेहिं पूरिदंगो वि ।
तं वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५४॥

अस्य कथा—जम्बूद्वीपपूर्वविदेहे वीतशोकपुरे राजा अशोको धान्यगाह[ल]नकाले बलीवर्दानां मुखबन्धनं कारयति । महानसे च पाकं कुर्वन्तीनां स्तनबन्धं कारयित्वा बालानां स्तनं पातुं न ददाति । एकदा शिरसि मुखे च तस्य रोगोऽभूत् । ततस्तस्य स्फेटनार्थं वरौषधं पाचयित्वा भाजने भोजनाय गृहीतम् । तत्प्रस्तावे चर्यागतमुनये तदौषधं दिव्यपथ्यं च दत्तं यो मे रोगः सोऽस्यापीति ज्ञात्वा । ततो द्वादशवार्षिको रोगो मुनेर्नष्टः । भरतक्षेत्रे आमलकण्ठनगरे राजानिष्टसेनो राज्ञी नदीमतिः । अशोकराजो मृत्वा तद्दानफलात्पुत्रो धन्यनामा जातः । अरिष्टनेमितीर्थंकरपादमूले धर्ममाकर्ण्य स्वल्पायुर्ज्ञात्वा मुनिर्जातः । पूर्वकर्मोदयाद्भिक्षामलभमानोऽप्युग्रोग्रं तपः कुर्वाणः संवरीपुरे यमुनायाः पूर्वतटे आतापनस्थः पापर्द्धिगतेन व्याघुटितेन यमुनाचक्रेण राज्ञा अपशकुनाद् बाणैः पूरितोऽपि समाधिना सिद्धिं गतः ॥

[७९] अर्धसहस्रप्रमिता इत्यादि ।

[अभिणंदणादिगा पंच सया णयरम्मि कुंभकारकडे ।
आराधणं पवण्णा पीलिज्जंता वि जंतेण ॥१५५५॥]

एतेषां कथा—दक्षिणापथे भरतदेशे कुम्भकारकटनगरे राजा दण्डको, राज्ञी सुव्रता, मन्त्री बालकः । तत्राभिनन्दनादयः पञ्चशतमुनयः समायाताः । खण्डकमुनिना बालकमन्त्री वादे जितः । ततो रुष्टेन तेन भण्डो मुनिरूपं कारयित्वा सुव्रतया समं रममाणो राज्ञो दर्शितः । भणितं च तेन—देव, दिगम्बरेषु भक्त्यातिमुख्योऽसि येन

भार्यामपि तेभ्यो दातुमिच्छसि। ततो रुष्टेन राज्ञा मुनयो यन्त्रे निःपीलिताः। ते तमुपसर्गं प्राप्य परमसमाधिना सिद्धिं गताः॥

[८०] गोष्ठे प्रायोपगत इत्यादि।

[गोट्ठे पाओवगदो सुबंधुणा गोव्वरे पलिविदम्मि।
डज्झंतो चाणक्को पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥१५५६॥]

अस्य कथा—पाटलिपुत्रनगरे राजा नन्दः, काविसुबन्धुशकटालास्त्रयो मन्त्रिणः, पुरोहितः कपिलो, भार्या देविला, पुत्रश्चाणक्यो वेदपारगः। एकदा काविमन्त्रिणा नन्दस्य कथितम्—देव, तवोपरि प्रत्यन्तवासिनो राजानश्चलिताः। नन्देनोक्तम्—द्रव्यं दत्त्वा तान्निवारय। ततः काविना यथायोग्यं द्रव्यं दत्त्वा ते निवारिताः। एकदा नन्देन भाण्डागारिको भाण्डागारे द्रव्यं पृष्टः। तेनोक्तम्—काविना सर्वं द्रव्यं प्रत्यन्तवासिनां दापितं वर्तते। रुष्टेन नन्देन सकुटुम्बः काविरन्धकूपे निक्षिप्तः। संकटद्वारे तत्रैकैकं भक्तशरावं स्तोकजलं च वरत्राबन्धं तस्य दीयते। काविना भणितम्—सकुटुम्बं नन्दं यो विनाशयति स भुञ्ज्यादिति।[1] सर्वैर्भणितम्—त्वमेवात्र समर्थः। ततः कूपतटे बिलं कृत्वा तत्र भोजनं कुर्वाणस्त्रीणि वर्षाणि स्थितः। मृतं कुटुम्बम्। प्रत्यन्तवासिनां क्षोभे जाते नन्देन स्मृत्वा काविः कूपान्निःसार्य मन्त्रिपदे धृतः। एकदा नन्दवंशविनाशार्थं पुरुषमन्वेषयंता काविनाटवीमध्ये सच्छात्रं दर्भसूचीं खनन्तं चाणाक्यं दृष्ट्वा पृष्टः। किमर्थमिमां खनसि। कथितं तेन। विद्धो ऽहमनयेति। काविनोक्तम्—पूर्यते बहु क्षमां कुरु। चाणाक्येनोक्तम्—न च खनेद्यस्य न मूलमुद्धरेन्न तद्वध्येद्यस्य शिरो न कृन्तयेदिति। एतदा-

---

१) भुंक्तादिति।

कर्ण्यं चिन्तितं काविना नन्दवंशविनाशने ऽयं योग्य इति । यशस्वत्या चाणाक्यभार्यया चाणाक्यो भणितः—देव नन्दः कपिलां ददाति तां त्वं गृहाण । तेनोक्तम्—गृह्णामि । तं ज्ञात्वा काविना नन्दो भणितः-कपिलासहस्रं देहि । तेनोक्तं ददामि । ब्राह्मणानानय । तन्निमित्तं काविना नन्दो भणितः । चाणाक्यो ऽग्रासने धृतस्तेन च कुडीभिः [?] बहून्यासनानि स्वीकृतानि । तमालोक्य काविना स भणितो भट्टः । नन्दो भणति बहवो ब्राह्मणाः समायाता एकमासनं मुञ्च त्वम् । तेन च मुक्तमेकमेव । सर्वासनानि मोचयित्वा तेनोक्तम्—भट्ट किमहं करोमि नन्दो निर्विवेकी भणत्यग्रासनं त्यजान्यस्याग्रासनं दत्तं गच्छ त्वमित्युक्त्वा गले धृत्वा निर्धाटितः । ततश्चाणाक्यो नन्दवंशं निर्मूलयामीति चिन्तयन् यो नन्दराज्यमिच्छति स मे पृष्ठे लगत्विति भणित्वा निर्गतः । एकपुरुषः पृष्ठतो लग्नस्तं गृहीत्वा प्रत्यन्तवासिनां राज्ञां मिलितः । ते च भणिता द्रव्यादिकं दत्त्वा नन्दस्य मन्त्रिणां सामन्तानां च भेदं कुरुत । तथा सर्वे ऽपि भेदिताः । तैर्नन्दो द्रव्यं याचयित्वा धाटकेन नन्दं मारयित्वा बहुकालं राज्यं कृत्वा महीधर-मुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य चाणाक्यो मुनिर्भूत्वा पञ्चशतशिष्यैः सह बहुतरकालं दक्षिणापथे वनवासदेशे क्रौञ्चपुरे पश्चिमदिशि गोष्ठे पादोपयानमरणे स्थितः । नन्दे मारिते यो नन्दस्य मन्त्री सुबन्धुनामा स चाणक्यस्योपरि क्रोधं वहन् क्रौञ्चपुरीयसुमित्रराजस्य पार्श्वे आगत्य स्थितः । सुमित्रराजो मुनीनां वन्दनां पूजां च कृत्वा गृहमागतः । सुबन्धुरपि करीषं मुनीनां समीपे कृत्वाग्निं दत्त्वा समायातः । तस्मिन्नुपसर्गे समाधिना मुनयः सिद्धिं गताः ॥

[८१] वसतौ प्रदीपितायामित्यादि ।

[वसदीए पलिविदाए रिट्ठामच्चेण उसहसेणो वि ।
आराधणं पवण्णो सह परिसाए कुणालम्मि ॥१५५७॥]

अस्य कथा—दक्षिणापथे कुणालपुरे राजा वैश्रवणो, मन्त्री रिष्टामत्यो मिथ्यादृष्टिः। एकदा संघेन सह वृषभसेनगणधरः समायातः। राज्ञा सर्वलोकैर्गत्वा वन्दितः। रिष्टामात्येन वादः कृतः। स वादेन जितः। ततोऽभिमानात्तेन रात्रौ प्रच्छन्नेन वसतिका प्रज्वालिता तमुपसर्गमनुभूय मुनयः परमसमाधिना स्वर्गापवर्गं गताः ॥

[८२] आहारार्थं मत्स्या इत्यादि।

[अवधिट्ठाणं णिरयं मच्छा आहारहेदु गच्छंति।
तत्थेवाहारभिलासेण गदो सालिसित्थो वि ॥१६४९॥]

अस्य कथा—स्वयंभूरमणसमुद्रे महामत्स्यः सहस्रयोजनदीर्घः पञ्चयोजनशतविस्तारः पञ्चाशदधिकद्वियोजनशतोच्छ्रायः। तस्य कर्णे शालिसिक्थप्रमाणः शालिसिक्थनामा लघुमत्स्यस्तस्य कर्णमलं भक्षयति। बहुजीवभक्षणं कृत्वा महामत्स्यस्य मुखं विकास्य षण्मासान्निद्रां कुर्वाणस्य योजनादिप्रमाणाः मत्स्यकच्छपादयो मुखदंष्ट्रान्तरे प्रविश्य गच्छन्ति। तांस्तथा दृष्ट्वा स लघुमत्स्यः प्रतिदिनं चिन्तयति—महामूर्खोऽयमिति। मम यदीदृशी सामग्री भवति तदैकोऽपि न गच्छति। एवं बहुना कालेन मृत्वा द्वावपि सप्तमनरकमवधिष्ठानसंज्ञकं गतौ ॥

[८३] चक्रधरोऽपि सुभौम इत्यादि।

[चक्कधरो वि सुभूभो फलरसगिद्धीए वंचिओ संतो।
णट्ठो समुद्दमज्झे सपरिजणो तो गओ णिरयं ॥१६५०॥]

अस्य कथा—ईर्ष्यावतीनगर्यां राजा कार्तवीर्यो, राज्ञी रेवती, पुत्रः सुभौमो अष्टमचक्रवर्ती, माहानसिको विजयसेनः। तेनैकदोष्णपायसं भौमस्य भोक्तुं दत्तम्। तेन दग्धो रुष्टेन चक्रिणा मस्तके

पायसं घातयित्वा मारितः। विजयसेनो लवणसमुद्रे व्यन्तरदेवो जातः। रोषात्तापसरूपेण मृष्टफलान्यानीय सुभौमः समुद्रमध्ये नीत्वा पञ्चनमस्कारान्पादेन भञ्जयित्वा प्रचार्य मारितः सप्तमनरकं गतः ॥

[८४] जननी वसन्ततिलकेत्यादि ।

[जणणी वसंततिलया भगिणी कमला य आसि भज्जाओ ।
धणदेवस्स य एक्कम्मि भवे संसारवासम्मि ॥१८००॥]

अस्य कथा—उज्जयिन्यां राजा विश्वसेनः, श्रेष्ठी सुदत्तः षोडशकोटिद्रव्यस्वामी, गणिका वसन्ततिलका, सा सुदत्तेन गृहवासे धृता। कतिपयदिनैस्तस्याः गर्भसंभूतौ कण्डूकासश्वासादयो रोगा जाताः। ततः सुदत्तेन त्यक्ता निजगृहेषु पुत्रपुत्रीयुगलं प्रसूता। उद्विग्नया तया रत्नकम्बलेन वेष्टयित्वा पुत्री नगरोदक्षिणप्रतोल्यां मुक्ता। प्रयोगादागत्य तत्र स्थितेन सुकेतुसार्थवाहेनानीय सा निजभार्यायाः सुप्रभायाः समर्पिता। कमलानामा वृद्धिं गता। उत्तरप्रतोल्यां पुत्रो मुक्तः। सो ऽपि साकेतपुरादागत्य तत्र स्थितेन सुभद्रसार्थवाहेनानीय निजभार्यायाः सुव्रतायाः समर्पितः। स च धनदेवनामा वृद्धिं गतः बहुदिवसैः पुनरागत्योज्जयिन्यां सार्थवाहाभ्यां तयोः कमलाधनदेवयोर्विवाहः कारितः। ततः साकेतपुरं गत्वा कतिपयदिनानि भोगान्भुक्त्वा कमलां तत्रैव धृत्वा धनदेवः पुनरुज्जयिन्यामागतो वसन्ततिलकायां निजजनन्यां भोगमनुभवन्पुत्रमुत्पादितवान्। अयोध्यायां च कमलया मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य सम्यक्त्वं व्रतं गृहीत्वा धनदेवस्य कुशलवार्ता पृष्टा। कथितं मुनिना—जनन्या वसन्ततिलकया सहोज्जयिन्यां भोगान्भुञ्जानः कुशलेन तिष्ठति। पुनः कमलया पृष्टम्—कस्मिन् भवे सा तस्य जननी। कथितं मुनिना पूर्वभवे पिता अत्रभवे जननी ॥

अत्र कथा—उज्जयिन्यां ब्राह्मणः सोमशर्मा, भार्या काश्यपी, पुत्रावग्निभूतिसोमभूती। द्वावपि बहिः पठित्वा आगच्छद्भ्यां जिनदत्तपुत्रमुनेर्जननीं जिनमतिकां पादमर्दनं कुर्वतीमालोक्य जिनभद्रश्वशुरमुनेश्च वधूटिकां सुभद्रार्यिकां पादमर्दनं कुर्वतीमालोक्योपहासः कृतः। तरुणस्य वृद्धा वृद्धस्य तरुणी विधिना भार्या कृतेति। तयोपार्जितकर्मवशात् कालेन सोमशर्मा मृत्वोज्जयिन्यां वसन्तसेनायाः पुत्री वसन्ततिलका जाता। अग्निभूतिसोमभूती मृत्वा वसन्ततिलकायाः शिशुयुगलं कमलाधनदेवौ जातौ। काश्यपी मृत्वा वसन्ततिलकाधनदेवयोरिदानीं पुत्रो वरुणनामा जात इति मुनिवचनमाकर्ण्य जातिस्मरी भूत्वोज्जयिन्यामागत्य वसन्ततिलकागृहं प्रविश्य पालणकस्थं वरुणदत्तबालकमनेन सुभाषितेनान्दोलयति ॥

बालय णिसुणसि वयणं तुज्झ सरिस्साइ अट्ठदह णत्ता।
पुत्तु भतिज्जउ भायउ देवरु पित्तियउ पोत्तज्जु[1] ॥१॥
तुहु पियरो मह पियरो पियामहो तह य हवइ भत्तारो।
भायउ तह विय पुत्तो सुसुरो हवई स बालया मज्झ ॥२॥
तुव जणणी महु भज्जा पियामही तह य मायरी सवई।
हवइ वहू तह सासू एक्कहिया अट्ठदह णत्ता ॥३॥

एतदाकर्ण्य वसन्ततिलकादिभिः पृष्टया सर्वो वृत्तान्तः कथितः। कमलावसन्ततिलकाधनदेवा जातिस्मरीभूताः जिनधर्मे परमरुचिं कृत्वा तपो गृहीत्वा स्वर्गं गताः ॥

[८६] कुलरूपभोगतेजो ऽधिको ऽपि राजेत्यादि।

[कुलरूवतेयभोगाधिगो वि राया विदेहदेसवदी।
वच्चघरम्मि सुभोगो जाओ कीडो सकम्मेहिं ॥१८०२॥]

---

१) पुत्तु

अस्य कथा—मिथिलानगर्यां राजा शुभो, राज्ञी मनोरमा, पुत्रो देवरतिः। एकदा संघेन सह देवगुरुर्गणधरस्तत्र समायातः। राज्ञा वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य क्व मे जन्म भविष्यतीति पृष्टः। कथितं मुनिना—निजवर्चोगृहे महाक्रुमिर्भविष्यसि त्वम्। साभिज्ञानं च नगरीप्रवेशे मुखे गूथप्रवेशः छत्रभङ्गः सप्तमे दिने अशनिपातान्मरणम्। प्रविशतोऽश्वरथचरणाहतो गूथो मुखे प्रविष्टः। महावात्याभिहतं छत्रं भग्नम्। ततस्तेन पुत्रो भणितः—अहं वर्चोगृहे पञ्चवर्णो महाक्रुमिर्भविष्यामि तं मारयेस्त्वम्। अशनिभयाद् गङ्गामहाद्रहे लोहमञ्जूषां कारयित्वा प्रविष्टः। महामत्स्येनोच्छालिता मञ्जूषा। तस्मिन्नेव क्षणे अशनिपातान्मृतो वर्चोगृहे क्रुमिर्जातः। पुत्रेण मार्यमाणः प्रणश्य गूथे प्रविष्टो देवरतिवचनात्तं वृत्तान्तमाकर्ण्य बहवो जिनधर्मे रताः। देवरतिःसंसारनिन्दां कृत्वा मुनिरभूत्।

[८६] विमला चक्रेण मारित इत्यादि।

[विमलाहेदुं वंकेण मारिदो णिययभारियागब्भे।
जादो जादो जादिंभरो सुदिट्ठी सकम्मेहिं ॥१८०६॥]

अस्य कथा—उज्जयिन्यां राजा प्रजापालो, राज्ञी सुप्रभा, रत्नविज्ञानिकसुदृष्टिर्भार्या विमला। सुदृष्टेः छात्रो वंकः। तेन सह विमला कुकर्म करोति। एकदा विमला संकेतितेन वंक्रेण सुरतेः सेवां कुर्वाणो मारितः सुदृष्टिर्निजशुक्रेण विमलागर्भे पुत्रो जातः। सुदृष्टेः पदं वंक्रस्य विज्ञानिनः समर्पितम्। अन्यदा चैत्रमासे रमणीयोद्याने राज्ञा सह क्रीडन्त्याः सुप्रभायाः क्रीडाविलासनामोत्तमहारः त्रुटितः। केनापि सुवर्णकारेण तथा न रचितुं शक्यः। विमलापुत्रेण हारं दृष्ट्वा जातिस्मरेण जातेन पूर्वहेतुना रचितः। राज्ञा स पृष्टः। कथं सुदृष्टेर्हारो रचितस्त्वया। कथितं तेनाहमेव स सुदृष्टिरिति।

पूर्ववृत्तान्ते कथिते राजा मुनिरभूत्। विमलापुत्रो ऽपि मुनिर्भूत्वा विहृत्य संवरीपुरोत्तरदिशि यमुनानदीतटे निर्वाणं गतः ॥

[८७] कोसलकधर्मसिंह इत्यादि ।

[कोसलयधम्मसीहो अट्ठं साधेदि गिद्धपुट्ठेण ।
णयरम्मि य कोल्लगिरे चंदसिरिं विप्पजहिदूण॥*२०७३॥]

अस्य कथा—दक्षिणापथे कोसलगिरिपत्तने राजा वीरसेनो, राज्ञी वीरमतिः, पुत्रश्चन्द्रभूतिः, पुत्री चन्द्रश्रीः। कोशलदेशे कोशलपुरे धर्मसिंहराजेन परिणीता। एकदा धर्मसिंहो दमधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य प्रियसेनपुत्राय राज्यं दत्त्वा मुनिरभूत्। चन्द्रश्रीभगिनीमतिदुःखितामालोक्य चन्द्रभूतिना धर्मसिंहो गवेषयित्वा आनीय चन्द्रश्रियः समर्पितः। पुनरपि गत्वा मुनिर्जातः। पुनश्चन्द्रभूतिमागच्छन्तमालोक्य पुनर्व्रतभङ्गं करिष्यतीति संचिन्त्य मृतहस्तिकलेवरे प्रविश्य संन्यासेन मृत्वा स्वर्गं गतः ॥

[८८] मातुलकृतोपसर्ग इत्यादि ।

[पाडलिपुत्ते भूदाहेदुं मामयकदम्मि उवसग्गे ।
साधेदि उसभसेणो अट्ठं विक्खाणसं किच्चा ॥२०७४॥]

अस्य कथा—पाटलिपुत्रनगरे श्रेष्ठी वृषभदत्त इभ्यो, भार्या वृषभश्रीः, पुत्रो वृषभसेनस्तस्य मातुलको धनपतिरिभ्यो भार्या श्रीकान्ता, पुत्रो धनश्रीः। वृषभसेनो धनश्रियं परिणीय भोगमनुभूय दमधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिरभूत्। धनश्रीः दुःखिता रोदिति। ततो धनपतिमामेन गवेषयित्वा आनीय व्रतभङ्गं कारितः। कतिपयदिनानि स्थित्वा पुनर्मुनिर्जातः। पुनर्मामेन

वञ्चयित्वा आनीय गृहाभ्यन्तरे शृङ्खलायां घातयित्वा धृतः। पुनर्मे व्रतभङ्गं कारयिष्यतीति पर्यालोच्य संन्यासं गृहीत्वा श्वासं निरुध्य मृत्वा स्वर्गं गतः ॥

[८९] अहिमारकेण नृपतौ निपातिते इत्यादि ।

[अहिमारएण णिवदिम्मि मारिदे गहिसमणलिंगेण ।
उड्डाहपसमणत्थं सत्थग्गहणं अकासि गणी ॥२०७५॥]

अस्य कथा—श्रावस्तीनगर्यां राजा जयसेनो, राज्ञी वीरसेना, पुत्रो वीरसेनः, शिवगुप्तवन्दको जयसेनस्य गुरुः । एकदा संघेन सह यतिवृषभनामा भट्टारकस्तत्र समायातः । तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य बौद्धधर्मे मतिं त्यक्त्वा जयसेनः श्रावको जातः। तेन जिनभवनैर्नगरीमण्डलं च भूषितम् । शिवगुप्तवन्दकः कुपितो जयसेनस्य मारणोपायं चिन्तयति । पृथिवीपुरे राजा सुमतिर्बौद्धधर्मरतः । शिवगुप्तेन गत्वा तस्य सर्वं कथितम् । ततस्तेन जयसेनस्य लेखः प्रेषितः—यथा त्वया विरूपकं कृतमद्यापि बौद्धधर्मं गृहाण यदि मामभिलषसि । जयसेनेनोक्तम्—जिनधर्म एव मे। रुष्टेन सुमतिना किमचलसहस्रभटौ जयसेनं हन्तुं प्रेषितौ । तौ च श्रावस्तीं प्रविश्य स्थितौ । अवकाशमलभमानौ व्याघुट्य गतौ। ततः सुमतिना शिवगुप्तेन चोक्तम्—नास्ति स कोऽपि पुरुषो यो जयसेनं मारयति । ततोऽहिमारनाम्ना राजपुत्रेणोपासकेनोक्तम्—देव, किं विसूरयसि अहं तं मारयामीत्युक्त्वा तत्र गत्वा यतिवृषभमुनिसमीपे मायया कायक्लेशकरी [रो] मुनिरभूत्। एकदा जयसेनो देवमुनिवन्दनां कृत्वा सर्वलोकं चैत्यालयाद् बहिर्धृत्वा किंचित्पृष्टम् । चैत्यालयाभ्यन्तरे यतिवृषभमुनिसमीपे प्रविष्टः । तत्र राजाहिमाराचार्यास्त्रयो ऽप्येकान्ते स्थिताः । उत्तिष्ठता भूमिलग्नं मस्तकं कृत्वा वन्दना कृता। तत्प्रस्तावे ऽहिमारःक्षुरिकया ग्रीवां छित्वा

नष्टः। तमालोक्य यतिवृषभाचार्यो राज्ञो रक्तेनाक्षराणि भित्तौ लिखित्वाहिमारेणायं मारित इति दर्शनोद्द्रोह[?]प्रशमनार्थं क्षुरिकया जठरं विदार्य संन्यासं कृत्वा समाधिना मृत्वा स्वर्गं गतः। वीरसेन-कुमारेण द्वौ मृतौ दृष्ट्वा लिखितान्यक्षराणि चावलोक्याचार्यप्रशंसां कृत्वा जिनधर्मे राज्ये च स्थिरः स्थितः॥

[९०] शकटालेनापीत्यादि।

[सगडालएण वि तधा सत्थग्गहणेण साधिदो अत्थो।
वररुइपओगहेदुं रुट्ठे णंदे महापउमे ॥*२०७६॥]

अस्य कथा—पाटलिपुत्रनगरे राजा नन्दो, मन्त्री शकटालो, विचारको वररुचिस्तौ परस्परविरुद्धौ सर्वदान्योन्यापकारप्रवृत्तौ। एकदा संघेन सह महापद्माचार्यः पाटलिपुत्रमायातः। तत्पार्श्वे धर्म-माकर्ण्य शकटालो मुनिर्भूत्वा ग्रन्थार्थं परिज्ञाय आचार्यो भूत्वा पुनः पाटलिपुत्रमायातः। नन्दान्तःपुरे चर्यां कृत्वा निजस्थाने गतः। पूर्ववैराद्वररुचिना नन्दस्य कोपप्रवर्धनप्रयोगः कृतः। देव भिक्षामिषेण शकटालस्तवान्तःपुरं सर्वं विध्वंस्य गत इति। ततो नन्देन शकटाले महापद्माचार्ये च रुष्टेन धाटकः प्रेषितः। शकटालमुनिर्द्धाटकमा-लोक्य वररुचेर्दुष्टं चेष्टितं ज्ञात्वा च्छुरिकया निजोदरं विपाट्य समाधिना मृत्वा स्वर्गं गतः। नन्दो ऽपि परीक्षां कृत्वा मुनिं निर्दोषं ज्ञात्वा महापद्माचार्यसमीपे जिनधर्ममाकर्ण्य निन्दां गर्हां च कृत्वा जिनधर्मे रतः॥

यैराराध्य चतुर्विधामनुपमामाराधनां निर्मलां
प्राप्तं सर्वसुखास्पदं निरुपमं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।
तेषां धर्मकथा प्रपञ्चरचना स्वाराधनासंस्थिता
स्थेया कर्मविशुद्धिहेतुरमला चन्द्रार्कतारावधिः ॥१॥

सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः
पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः ।
कल्याणकाले ऽथ जिनेश्वरस्य
सुरेन्द्रदन्तीव विराजते ऽसौ ॥२॥

श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपञ्चपरमेष्ठि-प्रणामोपार्जितामलपुण्यनिराकृतनिखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्र-पण्डितेनाराधनासत्कथाप्रबन्धः कृत इति ॥

[९०*१] सद्दहयापत्तिययारोचयफासंतया ।

[सद्दहयया पत्तियया रोचयफासंतया पवयणस्स ।
सयलस्स जेण एदे सम्मत्ताराहया होंति ॥*४८*१॥]

अत्र कथा—कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे राजा विनयंधरो, राज्ञी विनयवती, श्रेष्ठी वृषभसेनो, गृहिणी वृषसेना, पुत्रो जिनदासः । कामासक्तस्य राज्ञो व्याधिर्जातः । वैद्यास्तं चिकित्सितुं कथमपि न शक्नुवन्ति । श्रावकसिद्धार्थमन्त्रिणा पादौषधमुनेः पादप्रक्षालनजलं राज्ञे दत्तं । श्रद्धादिगुणोपेतो राजा पीत्वा नीरोगो जातः । एवं धर्मपानीयं साधुनापि पातव्यम् ॥

[९०*२] अपवादिलिङ्गकटो ऽपि ।

[अववादियलिंगकदो विसयासत्तिं अगूहमाणो य ।
णिंदण-गरहण-जुत्तो सुज्झदि उवधिं परिहरंतो ॥८७॥]

[I] अत्रात्मनिन्दा कथा—काशीदेशे वाणारसीनगर्यां राजा विशाखदत्तो, राज्ञी कनकप्रभा, चित्रकरो विचित्रो, गृहिणी विचित्रपताका, पुत्री बुद्धिमती। विचित्रकरस्य राजगृहं चित्रयतो बुद्धिमत्या भोजनं गृहीत्वागतया तया मणिकुट्टिमलिखितं मयूरपिच्छं गृह्णन् राजातिमूर्खो भणितः ॥ तथा अन्यदिने राज्ञश्चित्रं दर्शयन् स तया

आहूतः—तात, शीघ्रमागच्छ । रत्नस्य यौवनं याति लग्नम् । तद्वचनाद्राजा पश्यन्नतिमूर्खो भणितः । तथान्यदिने विचित्रित-कुड्यप्रच्छादनेऽपनीते द्वितीये कुड्ये विचित्रावलोकने राजा महामूर्खो भणितः । तया राज्ञः पूर्वकारणे कथिते तेन परिणीता सा सर्वान्तः-पुरप्रधाना कृता । सेवागतमन्तःपुरं तस्याः शिरसि टोल्लकान् प्रदाय गच्छति । सा दुर्बला जाता । जिनालये प्रविश्य आत्मनिन्दां करोति । जघन्यकुलजाताहम् । पृष्टा राज्ञापि न कथयति दौर्बल्यकारणम् । जिनभवने पूर्वं प्रविष्टेन राज्ञा दौर्बल्यकारणं गर्हणं श्रुत्वा अन्तःपुरं भणित्वा सा सुतरां प्रधानत्वं प्रापिता । एवं क्षुल्लकादिनात्यात्म-निन्दा कर्तव्या । हीनकुलादिकारणेन मनोत्कृष्टलिङ्गलब्धिः ॥

[९०*३] गरिहण अक्खाणं ।

[II] अयोध्यायां राजा दुर्योधनो, राज्ञी श्रीदेवी, ब्राह्मणः सर्वोपाध्यायो ऽतिवृद्धो, ब्राह्मणी प्रिया, वीरा तरुणी अग्निभूति-च्छात्रेण सहासक्ता उपाध्यायं मारयित्वा छत्रिकायामारोप्य कृष्णरात्रौ श्मशाने निक्षेप्तुं गता । श्मशाने देवतया मस्तके छत्रिकां कीलयित्वा भणिता सा—'प्रभाते नगरीं प्रविश्य निजदुःकर्म गृहे गृहे नारीणां कथय त्वं येन पतति छत्रिका । तथा कृते पतिता छत्रिका मस्तकात् । सा लोकमध्ये शुद्धा जाता ॥

आलोचनैः गर्हणनिन्दनैश्च
व्रतोपवासैः स्तुतिसंकथाभिः ।
एभिस्तु योगैः क्षपणं करोमि
विषप्रतीघातमिवाप्रमत्तः ॥

[९०*४]

[आणक्खिदा य लोचेण अप्पगो होदि धम्मसड्ढा य ।
उग्गो तवो य लोचो तहेव दुक्खस्स सहणं च ।।९२।।]

अत्र कथा—पूर्वविदेशे वरेन्द्रविषये देवीकोट्टपुरे ब्राह्मणः सोमशर्मा चातुर्वेदः, ब्राह्मणी सोमिल्या, पुत्रावग्निभूतिवायुभूती । तत्रैव विष्णुदत्तोऽपरब्राह्मणो व्यवहारकः, पत्नी विष्णुश्रीः । ऋणं विष्णुदत्तस्य गृहीत्वा एकदा सोमशर्मा मुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्भूत्वा विहृत्य कोट्टपुरमायातो विष्णुदत्तेन दृष्टो धृत्वा द्रव्यं याचितः । तव पुत्रौ दरिद्रौ त्वं द्रव्यं धर्मं वा देहि । ततो वीरभद्राचार्योपदेशेन श्मशाने रात्रौ धर्मं विक्रीणतः सोमशर्ममुनेः प्रत्याख्याद्देवतया पृष्टं कीट[दृश]स्ते धर्मः । कथितस्तेन मूलोत्तरगुणक्षमादियुक्तः । भणितं देवतया—

धम्मो जयवसियरणं धम्मो चिंतामणी य अग्घे उ ।
धम्मो सुहवसुधारा धम्मो कामद्दुहाधेणू ।।१।।
किं जंपिएण बहुणा जं जं दीसइ य सुम्मई लोए[1] ।
इंदियमणोहिरामं तं तं धम्मफलं सव्वं ।।२।।
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च नारद ।
सर्वतीर्थाभिषेकश्च यः कुर्यात्प्राणिनां दया ।।३।।

इति सर्वोत्तमधर्मस्य नास्ति मूल्यम् । किंतु सर्वोपसर्गनिवारणार्थमेकवारोत्पाटित–एकचिमुटी केशानां मूल्यं ददामीत्युक्त्वा रत्नराशिः कृतः । तथा प्रभाते तत्तपोऽतिशयमालोक्य तस्यैव समीपे विष्णुदत्तो मुनिर्भूत्वा स्वर्गापवर्गं साधितवान् । अन्ये लोका जिनधर्मे लग्नाः । कोटितीर्थनामा चैत्यालयः ।।

---

१) सुम्मुतियालोए ।

[९०*५] काले विणये उवहाणेत्यादि ।

[काले[1] विणए[2] उवहाणे[3] बहुमाणे[4] तह अणिण्हवणे[5] ।
वंजण[6] अत्थ[7] तदुभयविणओ णाणम्मि अट्ठविहो ॥११३॥]

कालस्याख्यानम्—एको वीरभद्रो ऽस्थनिरटव्यामकाले ऽहोरात्रं पठन् श्रुतदेवतया दृष्टः । प्रतिबोधनार्थितया गोकुलिकारूपेण आगत्य रात्रौ सुगन्धमधुरमित्यादितक्रं गृहीथेति तस्य पार्श्वे बहुवारं भणितम् । मुनिना सोक्ता ग्रहिलासि त्वमत्र । को रात्रौ तक्रं गृह्णाति । त्वं ग्रहिलो ऽसि जिनागममकाले पठसि । नक्षत्रमालोक्य प्रबुद्धो गुरुसमीपं गत्वालोच्य द्रव्यादिशुद्धया पठनतया पुनर्देवतयैकदा दृष्टः पूजितश्च परलोकं गतः ॥

[९०*६] (१) अकालस्याख्यानम् ।

शिवनन्दीमुनिरेकदा श्रवणनक्षत्रोदये स्वाध्यायकालो भवतीत्युपदेशं प्राप्याकाले पठन् मिथ्यात्वासमाधिमरणेन गङ्गायां मत्स्यो जातः । एकदा पुलिने साधुपाठमाकर्ण्य जातिस्मरो भूत्वात्मनिन्दां कृत्वा सम्यक्त्वाणुव्रतात् स्वर्गे देवः ॥

[९०*७] (२) विनयस्याख्यानम् ।

वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां राजा धनसेनो भगवद्भक्तः, राज्ञी धनश्रीः श्राविका । सुप्रतिष्ठनामा न गतो राजाग्रासने भुङ्क्ते यमुनानद्यां जलस्तम्भिनीविद्यासामर्थ्येन जापं करोति । लोके विस्मयो जातः । अथ विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां रथनूपुरचक्रवालपुरे

विद्याधरो राजा, विद्युत्प्रभः श्रावकः, राज्ञी विद्युद्वेगा भगवद्भक्ता। एकदा वन्दनार्थं तौ कौशाम्बीमागतौ। माघमासे यमुनानद्यां तस्य स्नानं जलोपरि जापं चालोक्य विद्युद्वेगयातिप्रशंसा कृता। ततो राज्ञा सह तस्या वादः। भणितं विद्युत्प्रभेण—आगच्छास्य दृढत्वमज्ञानित्वं च दर्शयामि। ततश्चाण्डालरूपेण यमुनोपरि गत्वा द्वाभ्यां कृतचर्ममांसप्रक्षालनेन सर्वं जलं दूषितम्। ततो रुष्टेन दुष्टं भणित्वा नद्युपरि गत्वा तेन स्नानादिकं प्रारब्धम्। पुनरपि गत्वा चाण्डालाभ्यां तथा जलं दूषितम्। पुनः सो ऽपि तथोपरि गतः। एवं बहुवारान् चाण्डालाभ्यां दूषिते जले स्नानजपगर्वसुशुचित्वानि त्यक्त्वासौ मोहं गतः। चाण्डालाभ्यां तत उद्यानप्रासाददोलाभोजनगीतवाद्यादिगगनगमनं दर्शितम्। तस्मादेव विद्याधराणामपीदृशी विद्या नास्ति यादृशी चाण्डालानाम्। अनयाहं सर्वं जगद्वञ्चयामीति ध्यात्वा तत्समीपं गत्वा पृष्टं तेन—यूयं कस्मादागताः कथमीदृशमाश्चर्यं कुरुतः। कथितं मातङ्गेन—त्वमपि न जानासि। मातङ्गो ऽहं नमस्कर्तुमागतस्य मम गुरुणा तुष्टेन मे विद्या दत्ता। तया सर्वमिदं करोमि। तेनोक्तम्—प्रसादं कृत्वा मह्यं विद्यामिमां देहि। चाण्डालेनोक्तम्—त्वमुत्तमकुलो ऽकृत्रिमवेदपाठकः। विद्या विनयेन सिध्यति। यत्र मां पश्यसि तत्र यदि मे साष्टाङ्गप्रणामं करोषि भवतां प्रसादेन जीवामीति जल्पसि च तदा तव सिध्यति विद्या। यद्येवं न करोषि तदा नश्यत्येव सिद्धापि। तेनोक्तम्—यथाज्ञापयथः तथा करोमि। इत्युक्ते विधिना विद्यां दत्त्वा निजवसतिं तौ चाण्डालौ गतौ। सो ऽपि तया विद्यया विकुर्वाणां कृत्वा सिद्धा विद्येति ज्ञात्वा बृहद्वेलायां भोजनार्थं राजसमीपं गतः। पृष्टो राज्ञा—भगवन्, किमद्य वेलातिक्रमः। कथितं तेन बहुकाले तपोमाहात्म्यादद्य हरिहरब्रह्मादिदेवा मां पूजयितुमागताः। तेन बृहती वेलेति गगने गमनागमनादिकमपि मे जाता।

राज्ञा भणितम्—भगवन् प्रभाते तत्सर्वं मे दर्शय। मठिकायां प्रभाते दर्शयिष्यामीत्युक्त्वा भोजनं कृत्वा गतः। स प्रभाते मठिकायां राजादीनां ब्रह्मादिकं दर्शयतस्तस्य चाण्डालौ समायातौ। निकृष्टचाण्डालावित्यादिकेन भणितेन नष्टा सा विद्या। पृष्टं राज्ञा—भगवन्, किमत्र कारणम्। तेन च यथार्थमेव कथिते राज्ञा प्रणम्य चाण्डालो विद्या याचितः। चाण्डालेन पूर्वविधाने कथिते त्रिः परीत्य प्रणम्य दिव्यां गृहीत्वा परीक्ष्य राजा नगरीं प्रविष्टः। अन्यदास्थानस्थिते राज्ञि स चाण्डालः समायातो राज्ञा कथितविधिना प्रणतः। तथा विद्याधरत्वं प्रकटीकृत्य विद्युत्प्रभेणान्या विद्या दत्ता। धनसेनस्य पश्चात्स धनसेनो विद्युद्वेगा अन्ये च श्रावका जाताः। एवं साधुनापि विनयं कर्तव्यः॥

[९०*८] (३) उपधानाख्यानम्।

अहिच्छत्रनगरे राजा वसुपालो, राज्ञी वसुमती, वसुपालकारितसहस्रकूटचैत्यालये तद्वचने श्रीपार्श्वनाथप्रतिमायां मद्यादिसेविनो लेपकारा दिवसे मृत्तिकां ददति। रात्रौ सा पतति। लेपकारा कदर्थ्यन्ते निर्धाट्यन्ते। अन्येन लेपकारेण देवताधिष्ठितां प्रतिमां ज्ञात्वा मुनिपार्श्वे मद्यादीनां समाप्तिदिनं यावदवग्रहं गृहीत्वा समारि[पि]ता सा प्रतिमा। स च राज्ञा पूजितः। एवं मुनिनाप्यवग्रहो गृहीतव्यः॥

[९०*९] (४) बहुमानाख्यानम्।

काशीदेशे वाराणसीपुर्यां राजा वृषभध्वजो, राज्ञी वसुमती, गङ्गानदीतटे पलाशकूटग्रामे अशोकनामा गोकुलिको घृतकुम्भसहस्रं

प्रतिवर्षं ददाति । तस्य भार्या नन्द्या [न्दा] वन्ध्या । पुत्रार्थं द्वितीया सुनन्दा परिणीता । तयोर्झंकटके संजाते अर्धार्धं सर्वं तयोर्दत्तम् । नन्दा गोपालगोभाजनानां दुग्धादिखलादिप्रक्षालनादि पूजां क्रमेण करोति । सुनन्दा सौभाग्यगर्विता न करोति । तस्य गोपालाः स्वयं दुग्धं पिबन्तीत्यादयो दोषाः । पूर्णं नन्दाघृतम् । सुनन्दाया न किमपि । नन्दया अन्यघृतं दत्तम् । निर्द्धाटिता सुनन्दा पुनः सर्वगृहव्यापिनी जाता । एवं मुनिना पूजा कर्तव्या ॥

[९०*१०] (५) अनिह्नवाख्यानम् ।

अवन्तीदेशे उज्जयिन्यां राजा धृतिषेणो, राज्ञी मलयावती, पुत्रश्चण्डप्रद्योतनः । दक्षिणापथे वेनातटनगरे ब्राह्मणः सोमशर्मा, ब्राह्मणी सोमा, पुत्रः कालसंदीवः सर्वविद्यापारगः । अष्टादशलिपयस्तेनोज्जयिन्यां चण्डप्रद्योतं पाठयता मस्तके पादेनाहत्य एका यवनलिपिः पाठिता । तेनोक्तम्—यदाहं राजा तदा तव पादं खण्डयिष्यामि । दक्षिणापथं गत्वा कालसंदीवो मुनिर्जातः । चण्डप्रद्योतनाय राज्यं दत्त्वा धृतिषेणो मुनिरभूत् । चण्डप्रद्योतनस्य एकदा यवनदेशराजेन लेखः प्रेषितः । तं कोऽपि न वाचयति । चण्डप्रद्योतनेन स्वयं वाचयित्वोपाध्यायं स्मृत्वा समानीय च पूजितः । स श्वेतसंदीवस्य तपो दत्त्वा विहरन् विपुलगिरौ वर्धमानसमवसरणं प्रविष्टः । कालसंदीवः समवसरणबाहिरे श्वेतसंदीव आतापनस्थो निर्गच्छता श्रेणिकेन गुरुः पृष्टः । वर्धमानस्वामी मे गुरुरिति भणिते पाण्डुरं शरीरं तत्र क्षणे कृष्णं जातम् । तस्य व्याघुट्य श्रेणिकेन गौतमस्तच्छरीरकृष्णत्वकारणं पृष्टः । कथितं तेन गुरुनिह्नवात् । स श्रेणिकेन संबोधितो निन्दालोचनायुक्तो मोहक्षयात्केवलज्ञानी जातः । एवमन्येनापि न निह्नवः कर्तव्यः ॥

[९०*११] (६) व्यञ्जनहीनाख्यानम् ।

मगधदेशे राजगृहनगरे राजा वीरसेनो, राज्ञी वीरसेना, पुत्रः सिंह एक एव। तस्योपाध्यायः सोमशर्मा। उत्तरापथे सुरम्यदेशे पोदनपुरे राजा सिंहरथो, राज्ञी सिंहरथा च। वीरसेनेन सिंहरथस्योपरिगतेन पोदनपुराद् वीरसेनाया राज्ञादेशः प्रेषितः। यथा सिंहो ऽध्यापयितव्यः। अत्र राजाभिप्रायः। इङ् अध्ययने धातुस्तेनासौ पाठयितव्य इति। वाचकेन वाचयितः। सिंहो ऽध्यापयितव्यः को ऽर्थः। ध्यै स्मृतिचिन्तायां धातुस्तेन चिन्तनिकामेव कारयितव्यो न पाठयितव्यः। अकारलोपव्याख्यातम्। आगतेन राज्ञा पृष्टः— सिंहः पठितः। कथितम्—न पठितः। लेखार्थवाचको राज्ञा निर्धाटितः। एवं साधुनापि न ॥

[९०*१२] (७) अर्थहीनाख्यानम् ।

विनीतदेशे अयोध्यायां राजा वसुपालो, राज्ञी वसुमती, पुत्रो वसुमित्रः, तस्योपाध्यायो गर्गः। अवन्तीदेशे उज्जयिन्यां राजा वीरदत्तो, राज्ञी वीरदत्ता। अयं वीरदत्तो वसुपालस्य मानभङ्गं करोति। वसुपालस्तस्योपरि रुष्टः उज्जयिनीमायातो बहुदिवसैर्वसुमत्यादीनां राज्ञादेशः प्रेषितः। यथा वसुमित्रो अध्यापयितव्यः उपाध्यायस्य शालिभक्तं मसिश्च घृतं दातव्यम्। वाचकेन वाचितः। वसुमित्रो ऽध्यापयितव्यः। उपाध्यायस्य शालिभक्तं मसिश्च दातव्यम्। तं ततश्चूर्णीकृत्य कोकिला उपाध्यायो भोजनं कार्यते। आगतेन राज्ञा उपाध्यायः पृष्टः। कुशलमिति। तेनोक्तम्— सर्वं शोभनम्। परं किंतु भवतां कुलाचारेण मषीं खादितुं न शक्नोमि। राज्ञी पृष्टा—किं कारणम्। तया लेखो दर्शितः। वाचकस्य मुण्डनगर्दभारोहणगूथभक्षणनिर्द्धाटनानि। एवं साधुनापि न ॥

[९०*१३] (८) व्यञ्जनार्थयोर्हीनाख्यानम् ।

कुरुजाङ्गलदेशे राजा महापद्मः पोदनपुरं गतः । स च सिद्ध-पुराभ्यन्तरे स्तम्भसहस्रनिष्पन्नसहस्रकूटचैत्यालयमालोक्य महापद्मेन निजनगरजनस्य राजादेशो दत्तः । यथा चैत्यालयनिमित्तं बहूनां स्तम्भसहस्राणां संग्रहः कर्तव्यः । वाचितं वाचकेन स्तभसहस्राणा-मिति स्तभशब्देन छागाः संगृहीतव्या । आगतेन राज्ञा भणितम्—यन्मयादिष्टं तन्मे दर्शयथ, छागा दर्शिताः । रुष्टेन राज्ञा नगरजनो मारणे आज्ञातः । विज्ञाप्य लेखवाचको दर्शितः । ततो वाचको मारितः । एवं साधुनापि न ॥

[९०*१४] (९) हीनाधिकव्यञ्जनाख्यानम् ।

सुराष्ट्रदेशे गिरिनगरपुरसमीपोर्जयन्तगिरिचन्द्रगुहायां महाकर्म-प्रकृतिप्राभृतज्ञधरसेनाचार्येण स्तोकं निजायुर्ज्ञात्वा शास्त्रस्या-विच्छित्तिनिमित्तमन्ध्रदेशे वेनतटपुरयात्रामिलिताचार्याणां पार्श्वे लेखं दत्त्वा ब्रह्मचारी प्रेषितः । यथा कृतकृत्यौ प्राज्ञौ शीघ्रं मुनी मम पार्श्वे प्रेषयथाः[ध्वम्] । तैश्च तथाभूतौ प्रेषितौ । तयोश्च प्रवेशदिने पश्चिमरात्रौ स्वप्ने शुभ्रतरुणवृषभौ निजपादयोः पतितौ दृष्ट्वा धरसेनाचार्यो जयतु श्रुतदेवता भणन्नुत्थितः । प्रभाते मुनी समायातौ दृष्ट्वा दिनत्रयं यथोचितं कृत्वा परीक्षार्थं हीनाधिकाक्षरे द्वे विद्ये साधयितुं तयोः प्रदत्ते । ऊर्जयन्ते अरिष्टनेमितीर्थंकरसिद्ध-शिलायां साधयतोस्तयोर्हीनाक्षरविद्यासाधकस्य काणादेवी समा-याता । अधिकाक्षरविद्यासाधकस्य दन्तुरा समायाता । देवानां न भवतीदृशी स्थितिरिति संचिन्त्य मन्त्रव्याकरणप्रस्तारेण दत्त्वा अपनीय चाक्षरं साधयतोः श्रुतदेव्यौ समायाते आगत्याचार्यस्य

निवेद्य शास्त्रस्य पारगौ जातौ। देवपूजितौ पुष्पदन्तभूतबलिनामानौ सिद्धान्ते कर्तारौ जातौ। एवमन्येनापि ॥

[९०*१५] जिणकप्पिऊण मूढो।

[भयणीए विधस्मिज्जंतीए एयत्तभावणाए जहा।
जिणकप्पिओ ण मूढो खवओ वि ण मुज्झइ तधेव ॥२०१॥]

अस्य कथा—मगधदेशे राजगृहनगरे राजा प्रजापालो, राज्ञी प्रियदत्ता, पुत्रौ प्रियधर्मप्रियमित्रौ। तौ प्रियदमधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य तपो गृहीत्वा स्वर्गे देवौ जातौ। एकदा प्रियधर्मचरदेवेनोक्तम्—आवयोर्मध्ये प्रथमच्युतस्य द्वितीयेन स्वर्गस्थितेन संबोधनं कर्तव्यम्। एवमवन्तिदेशे उज्जयिनीनगर्यां राजा नागधर्मो, राज्ञी नागदत्ता, तयोः प्रियमित्रचरो देवः स्वर्गादेत्य नागदत्तनामा पुत्रो जातः। विस्मृतधर्मो गरुडादिशास्त्ररतो ऽभूत्। एकदा प्रियधर्मचरदेवेनावधिज्ञानेन ज्ञात्वा स्वर्गादागत्य डोम्बगारुडिकरूपेण तेन सह वादे जाते अभयप्रदानं साक्षिणो लब्ध्वा सर्पो मुक्तः। द्वितीयसर्पेण मायया मारितो नागदत्तः। अन्ये वैद्यादयः कालदष्टो ऽयं न जीवतीति वदन्ति। अर्धराज्यं भणित्वा राज्ञा तस्यैव डोम्बस्य समर्पितः। उत्थापयेति। तेनोक्तं गुरूपदेशो ऽस्ति मे। जीवन्नयं यद्युत्थितः तपो गृह्णाति। जीवन् दृश्यते इति पर्यालोच्य राज्ञा प्रतिपन्नम्। स तेनोत्थापितो दमधरमुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिरभूत्। ततो देवेन पूर्वसंबन्धः कथितः। राजादीनां विस्मयो धर्मलाभश्च संजातः। स नागदत्तजिनकल्पिताचरणयुक्तो जिनकल्पितनामा तीर्थयात्रायाः कृत्वा व्याघुटितो ऽटव्यां सूरदत्तः चोरैर्बद्धमार्गे धर्तुमारब्धः। अयं गत्वास्मान् कथयतीति। न किमपि वदन्त्यमी। सूरदत्तेन राज्ञा मुक्तः। अथ जिनकल्पितस्य या लघुभगिनी नागश्रीः सा वत्सदेशे

कौशाम्बीपुर्यां जिनदत्ताजिनदत्तयोः पुत्राय जिनपालकुमाराय दत्ता, तां गृहीत्वा निजकटकेन कौशाम्बीं गच्छत्या नागदत्तया अटवीसमीपे जिनकल्पितो दृष्टो ऽपि मौनेन गतः। अटव्यां नागदत्तां नागश्रियं च सर्वं कटकं च गृहीत्वा निजपल्लिकां गतो रात्रौ मुनेर्गुणकथां कुर्वन् नागदत्तया क्षुरिकां याचितः। तेन पृष्टा—किं करिष्यसि। कथितं तया—यं पापिष्ठं त्वं वर्णयसि स चाण्डालो ममोदरे नवमासान् स्थितः। अत इदं क्षुरिकया पाटयामि। एतदाकर्ण्य तां जननीं प्रतिपद्य सर्वस्वयुक्तां कौशाम्बीं प्राप्य जिनकल्पितसमीपे सूरदत्तो मुनिर्भूत्वा मुक्तिं गतः॥

[९०*१६] तं वत्थुं मोत्तव्वं जं पडि।

[तं वत्थुं मोत्तव्वं जं पडि उप्पज्जदे कसायग्गी।
तं वत्थुभल्लिएज्जो जत्थोवसमो कसायाणं ॥२६२॥]

अत्र कथा—पूर्वमालवके तलिकाराष्ट्रदेशे परकच्छपत्तने राजा शूरसेनो, राज्ञी शूरसेना, श्रेष्ठी सूरदत्तः, पत्नी सूरदत्ता, पुत्रौ सूरमित्रसूरचन्द्रौ, पुत्री मित्रवती। मृते सूरदत्ते दरिद्रौ सूरमित्रसूरचन्द्रौ सिंहलद्वीपे पृथिवीमूल्यरत्नं प्राप्य व्याघुटितौ। अटव्यां सूरमित्रस्तद्रत्नं हस्ते गृहीत्वा रक्षन् भिक्षां गतस्य सूरचन्द्रस्य विषदानेन मारणं संचिन्त्य पश्चात्तापं करोति। अन्यदिने सूरचन्द्रः सूरमित्रस्य तथा करोति। एवं बहुदिनैर्निजपत्तने वेत्रवती नदीतटे ज्येष्ठेन लघवे[1] समर्पितम्। तत् लघुना तस्य पूर्वपरिणामः कथितः। ज्येष्ठेन च ततो नदीद्रहे रत्नं निक्षिप्य गृहं प्रविष्टौ तौ। रत्नं द्रहे रोहितमत्स्येन गिलितम्। स च धीवरेण हत्वा विक्रीतः। पुत्रनिमित्तं

---

१. लघु।

सूरदत्तया गृहीतः। खण्डयन्त्या पुत्रपुत्रीणां रत्नं प्राप्य विषेण मारणचिन्तादिकं कृत्वा पुत्रावुपार्जितद्रव्येण जीविष्यतः इति संचिन्त्य मित्रवत्यास्तद्रत्नं दत्तम्। मातृभ्रातॄणां विषमरणं संचिन्त्य दुःपरिणामं च कथयित्वा तया मातुः समर्पितम्। ततो वैराग्यात्तत्त्यक्त्वा धर्मान्परीक्ष्य दमधरमुनिसमीपे तपो गृहीतं तैः॥

[९०*१७] गुणपरिणामादीहिं य।

[गुणपरिमादीहिं य विज्जावच्चुज्जदो समज्जेदि।
तित्थयरणामकम्मं तिलोयसंखोभयं पुण्णं ॥३२८॥]

अत्र कथा—सुराष्ट्रदेशे द्वारावतीनगर्यां हरिवंशे अर्धचक्रवर्ती कृष्णनामा वासुदेवो, राज्ञी रुक्मिणी, जीवकनामा वैद्यः। अरिष्टनेमिसमवसरणं गच्छता वासुदेवेन सुव्रतनामा मुनिर्व्याधिक्षीणाङ्गो दृष्टः। वैद्योपदिष्टौषधपिण्डाः द्वारवत्यां सर्वगृहेषु वासुदेवेन धारिताः। तदा वासुदेवेन तीर्थंकरनामागोत्रमुपार्जितम्। तदौषधभक्षणादारोग्यः, स मुनिर्वासुदेवेन दृष्ट्वा पृष्टः—भगवन्, कीदृशं शरीरम्। मुनिनोक्तम्—शरीरं कदाचित्कीदृशं भवति। भट्टारकेण गुणे न दत्त इत्यार्तेन मृत्वा वैद्यो विधेर्नर्मदातीरे महान्मर्कटो जातः। तत्र वृक्षतले पर्यङ्कस्थं स्वयं पतितः शाखाभिन्नोरस्कं शरीरं निःस्पृहं मुनिमालोक्य स मर्कटो जातिस्मरो ऽभूत्। क्रोधं परित्यज्य बहुमर्कटसहायेन तेन सा शाखा नामितवृक्षस्थशाखाया बहुवल्लीभिर्बन्धयित्वा अपनीता। पूर्वसंस्कारादौषधं व्रणे दत्तम्। तेनावधिज्ञानिमुनिना पूर्वभवकथनेन संबोधितः। सम्यक्त्वाणुव्रतानि गृहीत्वा सप्तदिनैः संन्यासेन मृतः सौधर्मे देवो जातः। आगत्य तेन गुरुपूजा निजशरीरे पूजा च कृता॥

[९०*१८] पाणागारे दुद्धं पिबंतओ बंभणो चेव ।

[दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण ।
पाणागारे दुद्धं पियंतओ बंभणो चेव ॥३४६॥]

अस्य कथा—वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां राजा धनपालो, राज्ञी वसुपाली, कल्यपालः पूर्णभद्रः, पत्नी मणिभद्रा, पुत्री वसुमित्रा । तस्या विवाहेन नगरजनं भोजयित्वा पूर्णभद्रेण परममित्रं चतुर्वेद-षडङ्गविच्छिवभूतिनामा ब्राह्मणो निमन्त्रितः । तेनोक्तम्—अकल्पते अस्माकं भवद्गृहे भोक्तुं यतः—

शूद्रान्नं शूद्रशुश्रूषा शूद्रप्रेषणकारिता ।
शूद्रदत्ता च या वृत्तिः पर्याप्तं नरकाय तत् ॥

पूर्णभद्रेणोक्तम्—ब्राह्मणगृहनिष्पन्नदुग्धान्नेन भोजनं कुरु । एवं कृत्वोद्याने पूर्णभद्रस्य दूरप्रदेशे गौल्यदुग्धं पिबन्तं शिवभूतिमालोक्य लोकैः सुरापानमिति राज्ञः कथितम् । स सत्यं ब्रुवन्नपि राज्ञा वमनं कारितो दुर्गन्धवमनान्निर्धाटितः ॥

[९०*१९] आसयवसेण एवं ।

[आसयवसेण एवं पुरिसा दोसं गुणं व पावंति ।
तम्हा पसत्थगुणमेव आसयं अल्लिएज्जाह ॥३५६॥]

अत्र कथा—अङ्गदेशे काम्पिल्यनगरे राजा सिंहध्वजो राज्ञी वप्रा श्राविका नन्दीश्वरयात्रां प्रतिवर्षं कारयति । सा वप्रा राज्ञी पुत्रो हरिषेणो द्वितीयराज्ञी लक्ष्मीमती वल्लभा । तया सौभाग्यतया भणितो राजा—मदीयो ब्रह्मरथो अद्य दिने भ्रमतु । तेन वारितो वप्राया जिनरथः । रथे भ्रामिते पारणादिकं करिष्यामीति । इति

गृहीतप्रतिज्ञा भोजनार्थे हरिषेणेनागत्य कारणं पृष्टा। ततो यथार्थमाकर्ण्य निर्गतो हरिषेणो विद्युच्चोरपल्लिकायां प्रविष्टः। तमालोक्यैकशुकेनोक्तम्—अमुं राजपुत्रं धरथ। ततो निर्गत्य शतमन्युतापसपल्लिकायां प्रविष्टः। तत्राप्यालोक्यैकशुकेन यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्तीत्याकलय्योक्तमस्योत्तमराजपुत्रस्य गौरवं कुरुथ। ततो हरिषेणेन पूर्वशुकस्य दुष्टत्वं निवेद्य भणितं च। किं गौरवं मे कारयसीति। कथितं शुकेन—

माताप्येका पिताप्येको मम तस्य च पक्षिणः।
अहं मुनिभिरानीतः स च नीतो गवाशनैः ॥१॥

गवाशनानां स गिरः शृणोति
अहं च राजन् मुनिपुङ्गवानाम्।
प्रत्यक्षमेतद्भवता हि दृष्टं
संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ॥२॥

इत्याश्रयवशात्। पूर्वं शतमन्युतापसश्चम्पायां राजा, राज्ञी नागवती, पुत्रो जनमेजयः, पुत्री मदनावली। जनमेजयाय राज्यं दत्त्वा सो ऽयं च शतमन्युतापसो ऽभूत्। मदनावल्या निमित्तिना आदेशः कृतः। सकलचक्रवर्तिनः स्त्रीरत्नं भविष्यत्येषा। ऊड्रविषये राजा कलकलस्तेनादेशमाकर्ण्य याचिता मदनावली। यतो न लब्धा ततस्तेनागत्य चम्पा वेष्टिता। नित्यं युद्धे सति सुरङ्गया मदनावलीं गृहीत्वा नागवती शतमन्युपल्लिकायां वार्तां कथयित्वा स्थिता। पूर्वं हरिषेणमदनावल्योरनुरागो ऽभूत्। ततस्तापसैर्निर्धाटितेन तेन भणितम्—यदीमां परिणयिष्यसि तदा निजभूमौ योजने-योजने चैत्यालयान् कारयिष्यामि। सिन्धुदेशे सिन्धुतटपुरे राजा सिन्धुनदो, राज्ञी सिन्धुमती, सिन्धूदेव्यादिपुत्रीशतं सकलचक्रवर्तिनः आदिष्टम्—सिन्धुनद्यां कन्यानां स्नानं हरिषेणेन सह अनुरागाश्च। तत्रादेश-

पट्टहस्तिनं दमयित्वा तेन परिणीतास्ताः कन्याः। चित्रशालायां सुप्तो रात्रौ वेगवतीविद्याधर्या नीतः। उत्थितेन तेन गगने तारका आलोक्य तां हन्तुं मुष्टिर्बद्धा। तया कृताञ्जल्या कथा कथिता। विजयार्धे सूर्योदरपुरे विद्याधरो राजा इन्द्रधनुः, बुद्धिमती राज्ञी, पुत्री जयचन्द्रा पुरुषवेषिणी। तस्या आदेशः कन्याशतपरिणेतुः प्रिया भविष्यति। तव चित्रपटो मया तस्याः दर्शितः। तद्वचनेन तत्समीपं त्वां नयामि। एवं तस्या विवाहे कृते गङ्गाधरमहीधरौ तस्या मैथुनिकौ युद्धं कर्तुमायातौ। तत्संग्रामे रत्ननिधानयुक्तः सकलचक्रवर्ती बभूव। ततो मदनावलीं परिणीय गृहे जननीरथयात्रा कृता। जिनायतनानि च ॥

[९०*२०] अप्पो वि परस्स गुणो सप्पुरिसं पप्प।

[अप्पो वि परस्स गुणो सप्पुरिसं पप्प बहुदरो होदि।
उदए व तेल्लबिंदू किह सो जंपिहिदि परदोसं ॥३७३॥]

अत्र कथा—सौधर्मेन्द्रेण गुणानुरञ्जनीं कथां कुर्वता भणितमुत्तमः परस्य दोषं न गृह्णाति स्वल्पमपि परस्य गुणं विस्तारयति। तत एकेन देवेन पृष्टः देवेन्द्रः। किं को ऽपि तथाभूतो ऽस्ति। कथितमिन्द्रेण—सुराष्ट्रदेशे द्वारवत्यां कृष्णनामा वासुदेवो ऽस्ति। अरिष्टनेमितीर्थंकरवन्दनार्थं गच्छतो वासुदेवस्य स देवस्तं परीक्षितुमायातो मार्गे गजाकारमृतकुथितदुर्गन्धकुक्कुरो भूत्वा स्थितः। दुर्गन्धभयात्सर्वा सेना नष्टा। तेन देवेन द्वितीयब्राह्मणरूपेणागत्य वासुदेवस्याग्रे कुक्कुरदूषणं कृतम्। वासुदेवेनोक्तम्—अस्य कुक्कुरराजस्य मुखे स्फटिकाकारा दन्तपङ्क्तिरिति। आदितः प्रकटीभूय सर्वकथां प्रतिपाद्य तं प्रपूज्य देवो गतः॥

[९०*२१]

चोल्लयपासयधण्णं जूअंरदणाणि सुमिण चक्वं वा।
कुम्मं जुगपरिमाणू दस दिट्ठंता मणुयलंभे ॥ [४३०*२]

चोल्लकदृष्टान्तः ।१।

विनीतदेशे अयोध्यानगर्यां अरिष्टनेमितीर्थे ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिना बहुग्रामसहस्राणां सहस्रभटनामा सामन्तः कृतः। तस्य राज्ञी सुमित्रा, पुत्रो वासुदेवो ऽशिक्षितः। मृते सहस्रभटे तत्पदमन्यस्य दत्तम्। अयोध्यायां जीर्णकुटीरकस्थितया जनन्या वसुदेवो दूरशीघ्रधीवरेणेव झोलिकायां च ताम्बूललड्डुकादिवहनेन सहस्रमन्त्रं कारयित्वा कुलस्वामी चक्रिणो ऽङ्गजीवनसेवायां धृतः। एकदा दुष्टाश्वेनाटवीं चक्रवर्ती नीतः। सह निर्व्यूढेन च वसुदेवेनोपचारः कृतः। पृष्टेन कथितम्—सहस्रभटस्य पुत्रो ऽहम्। व्याघुटिता चक्रिणा तस्य निजकङ्कणं दत्त्वा नगरीमागत्य तलारो भणितः—भो मदीयं कङ्कणं नष्टं गवेषयथ। अथ टिण्टे कङ्कणं कथयन् वसुदेवस्तलारेण चक्रिणो दर्शितः। उक्तः स चक्रिणा—याचय वाञ्छितं ददामि। तेनोक्तम्—मदीयमाता जानाति। तथा आगत्य चोल्लूकभोजनं याचितम्। पृष्टं चक्रिणा—कीदृशं तत्। देव, प्रथमं भवद्गृहे गौरवेण स्नान-भोजनाभरणद्रव्यादिकं प्राप्य पश्चात्तवान्तःपुरमुकुटे बद्धादिपरिवार-गृहे ऽपि क्रमेण प्राप्य पुनरपि क्रमेणैवं तदपि पुनः संभाव्य तेन नष्टं मनुष्यत्वम् ॥

पाशकदृष्टान्तः ।२।

मगधदेशे शतद्वारनगरे राजा शतद्वारः। तेन नगरे कारितं [?] द्वारे द्वारे च स्तम्भानामेकादशैकादश सहस्राणि (११०००)। एकैकं

स्तम्भस्याश्रयः षण्णवतिः (९६)। एकैकस्यामश्रौ द्यूतकारपेटिकैका पाशाभ्यां रमते। तत्रैकदा शिवशर्मब्राह्मणेन द्यूतकाराः प्रार्थिताः। यदा सर्वत्रैकादाय एकवारेण पतति तदा जितं द्रव्यं मह्यं दातव्यमिति। तैरेवमस्त्विति भणिते तस्मिन्नेव दिने सर्वत्रैकदायः पतितस्तद्द्रव्यं सर्वं लब्धवान्। अन्यदा पुनरपि स तथा प्राप्नोति। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते॥

धान्यदृ . . ।३।

जम्बूद्वीपप्रमाणपल्यां योजनैकसहस्रमधःखातं धान्यसर्षपैर्निबिडं भृतम्। दिने दिने पुरुषेणैकैकमपनीयमाने तत्क्षीयते। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते॥

अथवा विनीतदेशे अयोध्यानगर्यां राजा प्रजापालः। यो मगधदेशे राजगृहनगरे राजा जितशत्रुः स प्रजापालस्योपरि चलितः। सर्वप्रजायाः सर्वधान्यं प्रजापालेन कोष्ठागारे मिश्रितं संख्यया धृतम्। अयोध्यायां गृहीतुमसमर्थे व्याघुटिते जितशत्रौ प्रजया निजधान्ये याचिते भणितं राज्ञा—परिज्ञाय निजं निजं गृहाण। तदपि स भवति। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते॥

द्यूतदृष्टान्तः ।४।

शतद्वारनगरे द्वाराणां पञ्चशतानि। एकैकद्वारे शालानां पञ्चशतानि (५००)। शालायां पञ्च पञ्च द्यूतकारशतानि। एकश्चयीनामसहिकः सर्वकपर्दकान् जित्वा सर्वदिशासु सर्वे द्यूतकारास्ते गताः। पुनरपि चयी सर्वेषां मेलापकं कथंचित्करोति। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते॥

अथवा । तथाभूते तस्मिन्नेव नगरे निर्लक्षणनामा द्यूतकारः स्वप्नान्तरेऽपि न जयति। एकदा च सर्वकपर्दकांस्तेन जित्वा कार्पटिकानां दत्ताः । ते च गृहीत्वा दशसु दिशासु गताः कदाचित्कार्पटिकादीनां पूर्ववत्तत्र मेलापको घटते । न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

रत्नदृष्टान्तः ।५।

ये भरतसगरमघवत्सनत्कुमारशान्तिकुन्थुअरसुभौममहापद्महरिषेणजयसेनब्रह्मदत्ताश्चक्रवर्तिनस्तेषां चूलामणयो देवैर्गृहीताः । पुनरपि कथंचिद्भरतक्षेत्रे त एव चक्रिणस्त एव मणयस्ते पृथ्वीकायिका जीवास्ते देवाः स्युः । न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

अथवा सागरदत्तहस्तसमुद्रपतितरत्नदृष्टान्तः ॥

स्वप्नदृष्टान्तः ।६।

अवन्तीदेशोज्जयिन्यां हल्लनामा कावटिक अटव्याः सदा काष्ठान्यानयन् एकदा भारं भृत्वा बाहरिकायामुद्याने सुप्तः। सकलचक्रवर्ती स्वप्ने जातः। आगत्य भार्ययोत्थापितः। स कदाचित्तत्र सुप्तस्तथा चक्रवर्ती पुनर्भवति। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

चक्रदृष्टान्तः ।७।

उपर्युपरि द्वाविंशतिस्तम्भाः। स्तम्भे स्तम्भे चैकैकं चक्रम्। चक्रे चक्रे आराणामेकैकसहस्रम्। आरे आरे चैकैकच्छिद्रम्। चक्राणां विपरीतभ्रमणात् छिद्रमेलापके तदुपरि राधा विध्यन्ते। काकन्दीनगर्यां राजा द्रुपदस्तत्पुत्री द्रौपदी स्वयंवरे अर्जुनेन राधावेधं कृत्वा परिणीता। पुनस्तदपि घटते न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

अथवा अयोध्यायां सुभौमचक्रिणः सुदर्शनचक्रस्य यक्षसहस्रं रक्षणमभूत्। पुनः कदाचित्स तत्र चक्रान्ते पृथ्वीकायिकास्तथा विन्यस्तास्ते यक्षा व्यतिघटन्ते। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

कूर्मदृष्टान्तः ।८।

अर्धतिर्यग्लोकप्रमाणे स्वयंभूरमणसमुद्रे तत्प्रमाणे प्रच्छादिते कालेन नन्दनामा कूर्मः। वर्षसहस्रं भ्रमता सूक्ष्मचर्मरन्ध्रेण तेनादित्यो दृष्टः। कदाचित्पुनराहूय निजकूर्मस्य तद्दर्शयन् स [न] पश्यति। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते। पूर्वदेशे महातडागे ऽप्ययं कथयितव्यः ॥

युगदृष्टान्तः ।९।

प्रमाणयोजनलक्षद्वयविस्तीर्णे पूर्वलवणसमुद्रे युगच्छिद्रात्कथंचित्समिला पतिता। तथा अपरसमुद्रे युगं च तत्र भ्रमति। तस्मिन्नेव छिद्रे कथंचित्समिला प्रविशति। न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यते ॥

परमाणुदृष्टान्तः ।१०।

सकलचक्रवर्तिनां चतुर्हस्तप्रमाणं दण्डरत्नं भवति। कालेन विचलितास्तस्य परमाणवः यथाविन्यासं पुनरपि मिलन्ति न नष्टं मनुष्यत्वं प्राप्यत इति ज्ञात्वा विवेकिना भवकोटिषु मनुष्यत्वं दुर्लभं परिज्ञाय श्रीधर्मे महानादरो विधेयः ॥

[९०*२२] अच्छीणि संघसिरिणो।

[अच्छीणि संघसिरिणो मिच्छत्तणिकाचणेण पडिदाणि।
कालगदो वि य संतो जादो सो दीहसंसारे ॥७३२ ॥]

अस्य कथा—दक्षिणापथे अन्ध्रदेशे श्रीपर्वतसमीपे पश्चिमदिशि तुङ्गभद्रानदीद्वयदक्षिणतटे पल्लरनगरे राजा यशोधरो, राज्ञी वसुंधरा, पुत्रा अनन्तवीर्यश्रीधरप्रियंवदाः। प्रासादस्थितो राजा पञ्चवर्णबहुकूटयुक्तमुच्चैः मेघमालोक्य ईदृशं जिनभवनं कारयामीति बुद्ध्या यावद्भूमावालिखति तावत्स मेघो विलीनः। स सर्वमनित्यं मत्वा अनन्तवीर्यश्रीधराभ्यां क्रमेण त्यक्तं राज्यं

प्रियंवदाय दत्त्वा अनन्तवीर्यश्रीधराभ्यां सह वरदत्तकेवलीसमीपे मुनिरभूत्। एकदा प्रियंवदो राजा चैत्रमासे मनोहरोद्याने अतिमुक्तकमण्डपतले नाटकं पश्यन् सर्पेण दष्टो मृतः। वंशच्छेदे जाते सर्वहितमन्त्रिणा गवेषकाः प्रेषिताः। तैरागत्य कथितम्—यथा यशोधरो निर्वाणं गतः। तथानन्तवीर्यो ऽनुत्तरं गतः। श्रीपर्वते श्रीधरमुनिरातापनस्थस्तिष्ठति। एतदाकर्ण्य मन्त्रिणा तत्पार्श्वे गत्वा वंशोच्छेदं मातृभगिन्यादिदुःखं कथयित्वा आनीय श्रीधरो राज्ये धृतः। अरिष्टनेमितीर्थंकरनिर्वाणे वरदत्तगणधरकेवलिविहारे स मुण्डराजा जातः। राजान्वयस्य मुण्डितवंशो मोरीयवंश इति नाम। ऋषिपर्वत इति श्रीपर्वतनाम। एवमन्ध्रदेशे धान्यकरनगरे मुण्डितवंशान्वये बभूव राजा धनदत्तः सद्दृष्टिः। ग्रामनगरदेशेषु तेन जिनायतनानि सामन्तादयः श्रावकाः कृताः। तस्मिन् धान्यकनगरे केनचिदेका बुद्धविहारिका कारिता। तत्र बुद्धश्रीवन्दकाः, तस्य शिष्य उपासकः संघश्रीः, भार्या कमलश्रीः, पुत्री विमलमतिः। सा च धनराजस्य महादेवी जाता जिनधर्मरता। स च संघश्री राजा मन्त्री राजश्वशुरश्चैवम्। एकदा विमलमतिसंघश्रीधनदाभिः प्रासादोपरि धर्ममुनिकथां कुर्वद्भिः अपराह्णे द्वौ चारणमुनी गगने गच्छन्तौ दृष्टौ। अभ्युत्थानादिकं कृत्वा समीपमानीतौ। वन्दनादिकं च कृतम्। राजवचनेन ज्येष्ठमुनिना संघश्रीस्तत्त्वं कथयित्वा श्रावकः कृतः। गतौ मुनी। भणितो राज्ञा संघश्रीः प्रभाते त्वया सभायां चारणमुनिवृत्तान्तः सर्वेषां कथयितव्यः। देवाहं सर्वं स्वयं करिष्यामीत्युक्त्वा अभक्तो बुद्धविहारिकां संध्यायां गतो नमस्कारं कुर्वन् वन्दकेन पृष्टः। प्रणामं किं न करोषि। चारणवृत्तान्तादिकं कथितं तस्य तेन। हाहाकारं कृत्वा सर्वमसत्यं भणित्वा वन्दकेन च तस्य कथा कथिता। यथा काशीदेशे वाणारसीनगर्यां राजा उग्रसेनो, राज्ञी धनश्रीः, पुरोहितः सोमशर्मा,

पत्नी पद्मावती, पुत्री पद्मश्रीः पितुरतिवल्लभा कुमारी। सोमशर्मा परिव्राजकभक्तो मठिकां कारयित्वा बहुपरिव्राजकानां भोजनं ददाति। सुवर्णखुरनामा परिव्राजको रूपवान् शास्त्रज्ञः संघपतिः कुमारीराद्धं परिविष्टं भुङ्क्ते चागत्य तस्य मठिकां स्थितः। पद्मश्रीर्भोजनं कारयति संसार्गात्तां गृहीत्वा गतः। पुरोहितेन गविष्टः। राज्ञो ऽग्रे कथितम्। तदादेशात्कोट्टपालेन गवेष्यानीतः। धर्मपाठका राज्ञा पृष्टाः। किमस्य क्रियते। तैरुक्तम्—मार्यते भूमौ पततु। तेन श्मशाने वृक्षे अवलम्बितो मृतः। रात्रौ गन्धपुष्पताम्बूलादियुक्तया पद्मश्रिया आलिङ्गितः। एतदाकर्ण्य राज्ञा दाहितः। रात्रौ तथा तया भस्मालिङ्गितम्। पुरोहितेन तद्भस्म नदीद्रहे क्षेपितम्। सा तथा जलमालिङ्गितं सदा। यथा न तस्याः सुखादिकं तथा न किंचिदपि चारणादिकं भ्रान्तिरेव, स राजा तवेन्द्रजालं दर्शयति। स इन्द्रजाली अतो मा त्वं बुद्धधर्मं त्यज। पुनर्मिथ्यात्वं तेन सुतरां स नीतो मिथ्यात्वं भणितश्च—प्रभाते त्वं राजसभामागच्छतो ऽपि दृष्टमिति मा वादीः। प्रभाते च राज्ञा सामन्तादीनां गगनचारणागमनकथां कथयता संवादार्थम् आग्रहेण राज्ञा संघश्री आनायितः। आगतेन पृष्टेन च न दृष्टमित्युक्ते द्वे अपि लोचने भूमौ पतिते। अद्यापि सत्यं कथयेति भणिते न दृष्टमिति भणन्नासनात्पतितः। पुनस्तथा भूमौ प्रविष्टो मृतो नरकं गतः दीर्घसंसारी जातः। तदतिशयाज्जिनधर्मे रता लोकाः। अर्हद्दासपुत्राय राज्यं दत्त्वा धनराजो बहुसामन्तैः सह समाधिगुप्तिमुनिसमीपे तपसा मोक्षं गतः। विमलमत्यादयो जिनदत्तार्जिकासमीपे अर्जिका जाताः॥

[९०*२३] भावाणुरायरत्त।

[भावाणुरागपेमाणुरागमज्जाणुरागरत्तो वा।
धम्माणुरागरत्तो य होहि जिणसासणे णिच्चं ॥७३७॥]

अत्र भावानुरागरक्ताख्यानम्—अवन्तीदेशोज्जयिन्यां राजा धर्मपालो, राज्ञी धर्मश्रीः, श्रेष्ठी सागरदत्तः, पत्नी सुभद्रा, पुत्रो नागदत्तः। सुभद्रासमुद्रदत्तयोः पुत्री प्रियङ्गुश्रीः। सा नागदत्तेन परिणीता प्रियङ्गुश्रीः। तस्या मैथुनिको नागसेनो वैरं गृहीत्वा स्थितः। एकदोपोषितं धर्मानुरागयुक्तं चैत्यालये कायोत्सर्गे स्थितं नागदत्तमालोक्य नागसेनेन निजं हारं तस्य पादोपरि धृत्वा अयं चौर इति पूत्कृतम्। एतदाकर्ण्यालोक्य तलारेण राज्ञः कथितम्—न चौर इति। विजानतापि राज्ञा मारणीयो भणितः। नागदत्तशिरश्छेदार्थं खड्गो यो वाहितः स हारस्तस्य कण्ठे पुष्पमालासहितो बभूव देवैः साधुकारितश्च। तदतिशयदर्शनाद्धर्मपालनागदत्तौ मुनी जातौ। बहवो जिनधर्मरताश्च॥

[९०★२४] प्रेमानुरागरक्ताख्यानम्।

विनीतदेशे साकेतानगर्यां राजा सुवर्णवर्मा, राज्ञी सुवर्णश्रीः, इभ्यः श्रेष्ठी सुमित्रो जिनशासनप्रेमानुरागरक्तः पर्वरात्रौ निजगृहे कायोत्सर्गेण स्थितः। एकदा देवेन परीक्षणार्थं स्त्र्यादिहरणेन परीक्षितो न चलितः। देवो गगनगामिनीं विद्यां दत्त्वा गतः। तदतिशयाल्लोका मुनयः श्रावका जाताः॥

[९०★२५] मज्जानुरक्ताख्यानम्।

उज्जयिन्यां राजा रागबुद्धिः, सार्थवाहजिनदत्तवसुमित्रौ जिनधर्मे मज्जानुरागौ श्रावकौ वाणिज्यार्थमुत्तरापथं गतौ। अवसीरमालवरपर्वतयोर्मध्ये बिलवत्यटव्यां सार्थे चौरैर्गृहीते अटवीं प्रविष्टौ तौ दिङ्मोहे तु जाते जिनदत्तवसुमित्रौ जिनधर्मे मज्जानुरागरक्तौ संन्यासे स्थितौ। सोमशर्मा ब्राह्मणो ऽपि तयोः पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य

संन्यासे स्थितः। कीटकामर्कटोपसर्गं समाध्यास्य सौधर्मे महर्द्धिको देवो भूत्वा श्रेणिकस्याभयकुमारनामा पुत्रो जातः। जिनदत्त-वसुमित्रौ सौधर्मे महर्द्धिकदेवौ जातौ ॥

[९०*२६] धर्मानुरागरक्ताख्यानम्।

अवन्तीदेशोज्जयिन्यां राजा धनवर्मा, राज्ञी धनश्रीः, पुत्रो लकुचो ऽतीवमानगर्वी। कालमेघम्लेच्छेन तद्देशोपद्रवे स्वयं गत्वा संग्रामे लकुचेन स बद्धः। तुष्टेन राज्ञा तस्य वरो दत्तः। कामचारं वरं याचयित्वा तेनोज्जयिनीस्त्रियो विधर्मिताः। पुङ्गलश्रेष्ठिनो नागधर्मा अतीव रूपवती विधर्मिता। पुङ्गलो वैरं गृहीत्वा स्थितः। एकदोद्याने क्रीडायां मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य लकुचो मुनिर्भूत्वा विहृत्योज्जयिन्यां महाकालवने प्रतिमायोगेन स्थितः। पुङ्गलेन रात्रौ गत्वा वैराल्लोहशलाकाभिः शरीरं सर्वं संधिषु कीलितं धर्मानुरागेण परलोकं गतः ॥

[९०*२७] जिणभत्तीए।

[एक्का वि जिणे भत्ती णिद्दिट्ठा दुक्खलक्खणासयरी।
सोक्खाणमणंताणं होदि हु सा कारणं परमं ॥७३७*१॥]

अस्य कथा—विदेहदेशे मिथिलानगर्यां राजा पद्मः। स पापर्द्धिं गतः कालगुहायां मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य सम्यक्त्वं गृहीत्वा पृच्छां कृतवान्—भगवन्, किमन्यो ऽपि को ऽप्येवं वक्तुं जानाति तथा दीप्तिवांश्च। कथितं मुनिना—अङ्गदेशे चम्पायां वासुपूज्यतीर्थंकरा वक्तारो दीप्तिमन्तश्च। ततो जिनभक्तिरागः प्रभाते वन्दनार्थं गच्छतस्तस्य धन्वन्तरिविश्वानुलोमवरदेवाभ्यामुपसर्गं कृत्वा सर्व-

रुजापहारे हारो योजनघोषा भेरी च दत्ता। स च तीर्थकरं वन्दित्वा गणधरो जातः ॥

[९०★२८] दंसणभट्ठो भट्ठो ।

[दंसणभट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होदि चरणभट्ठो हु ।

अत्र कथा—काम्पिल्यनगरे राजा ब्रह्मरथो, राज्ञी रामिल्या, तत्पुत्रो ऽरिष्टनेमितीर्थे ब्रह्मदत्तो द्वादशसकलचक्रवर्ती । एकदा विजयसेनसूपकारेण भोक्तुमुपविष्टस्यात्युष्णा क्षैरेयी दत्ता। भोक्तुमसमर्थेन तेन हत्वा स मारितः। स च मृत्वा लवणसमुद्रे रत्नद्वीपे व्यन्तरो देवो भूत्वा विभङ्गज्ञानेन वैरं ज्ञात्वा परिव्राजकरूपेण मृष्टकेलकादिफलानि चक्रवर्तिने दत्तवान् । तानि भक्षयित्वा तेनान्तःपुरादिकयुक्तं तं समुद्रमध्ये नीत्वा मारणार्थमुपसर्गः कृतः । तेन पञ्चनमस्कारान् स्मरन्तो मारयितुं न शक्यन्ते। तेन च ततस्तेन प्रकटीभूय प्रचार्य भणितो ब्रह्मदत्तः—रे त्वां मारयामि, किंतु यदि जिनशासनं नास्ति भणित्वा पञ्चनमस्कारानालिख्य पादेन विनाशयिष्यसि तदा न मारयामि । एतस्मिन् कृते जलमध्ये तेन स मारितः। सप्तमं नरकं गतः। मन्त्रिपुरोहितान्तःपुराणि सम्यक्त्वपञ्चनमस्कारस्मरणात् स्वर्गे देवा बभूवुः ॥

[९०★२९] दंसणममुयंतस्स ।

दंसणममुयंतस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे ॥७३९॥]

अत्र कथा—पाटलिपुरनगरे श्रेष्ठी जिनदत्तो, भार्या जिनदासी, पुत्रो जिनदासः सुवर्णद्वीपाद्धनमुपार्ज्य व्याघुटितो योजनशतविस्तारप्रोहणस्थेन कालिदेवेन भणितः। भो जन, जिनमतं च नास्तीति भण । अन्यथा मारयामि त्वाम् । जिनदासादिभिः वर्धमानस्वामिनं

नमस्कृत्य मस्तकविन्यस्तहस्तैर्भणितम् । सर्वोत्तमः जिनो जिनमतं चास्त्येव । ब्रह्मदत्तचक्रिकथा च सर्वेषां जिनदासेन कथिता । ततः उत्तरकुरुस्थेनासनकम्पनादनावृत्य यक्षेण चक्रं मुक्तम् । तेन मुकुटे प्रहतो वडवामुखे पतितः । कालिराक्षसः श्रिया जिनदासादीनामर्घ्यो दत्तः । गृहागतेन जिनदासेनावधिज्ञानी वैरकारणं पृष्टः । तेन कथितमिति ॥

[९०*३०] द्वितीयं दर्शनमुखाख्यानम् ।

लाटदेशे द्रोणीमतिपर्वतसमीपे गलगोद्रहपत्तने श्रेष्ठी जिनदत्तो, भार्या जिनदत्ता, पुत्री जिनमतिः । द्वितीयः श्रेष्ठी नागदत्तो, भार्या नागदत्ता, पुत्रो रुद्रदत्तः । रुद्रदत्तनिमित्तं नागदत्तेन जिनमतिः याचिता । माहेश्वरस्य न दत्ता धर्मनाशभयात् । एको धर्म इति भणित्वा नागदत्तरुद्रदत्तौ समाधिगुप्तमुनिपार्श्वे मायया श्रावकौ जातौ । ततो जिनमतिं परिणीय पुनर्माहेश्वरौ जातौ । रुद्रदत्तो भणति—त्वं मदीयं धर्मं गृहाण । जिनमत्या भणितम्—न युक्तं मे धर्मं त्यक्तुम्, त्वं मदीयं धर्मं गृहाण । रुद्रदत्तेनापि भणितम् । न युक्तं मे शिवधर्मं त्यक्तुम् । निजनिजधर्मकथनविवादाज्झकटकश्च नित्यं तयोः । रुद्रदत्तेन च भणितम्—वर्सात यासि मुनिभ्यो दानं ददासि यदि तदा त्वां निर्द्धाटयामि । जिनमत्या भणितम्—त्वमपि यद्येवं निजधर्मं करोषि तदाहं म्रिये । गृहे निजनिजधर्मस्तयोः । एकदा पत्तनपूर्वदिशि महाटव्यां ये भिल्लास्तैः पत्तने अग्निना सर्वतः प्रज्वालिते जिनमत्या भणितो रुद्रदत्तः—यो देवो ऽद्य रक्षति तस्य धर्मो द्वयोरपि । एवमस्त्विति भणित्वा श्रावणं कृत्वा रुददत्तेन रुद्राय अर्घ्यो दत्तः । तदपि न विशेषः । ततो ब्रह्मादिभ्यो ऽपि दत्ते न विशेषः । ततो जिनमतिः पञ्चपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं दत्वा पतिपुत्रवधूः

समीपे कृत्वा कायोत्सर्गेण स्थिता। तत्क्षणादुपसर्गोपशान्तिरभूत्। तमतिशयमालोक्य रुद्रदत्तादयो बहवः श्रावका जाताः ॥

[९०*३१] सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि।

[सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि अज्जेदि तित्थयरणामकम्मं।
जादो खु सेणिगो आगमेसिं अरुहो अविरदो वि ॥७४०॥]

अस्य कथा—मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको राज्ञी सुप्रभा पुत्रः श्रेणिकः कुमारः। एकदा प्रत्यन्तवासिना पूर्ववैरिणा नागधर्मेण यो जात्यश्वो दुष्टः प्रेषितः स खञ्चितो ऽतिसरति। एकदा वाह्यालीगतो राजा तेनाश्वेन महाटवीं नीतः। तत्र पल्लीपतिर्यमदण्डो, भार्या विद्युन्मती, पुत्री तिलकावती। यमदण्डेन तिलकावत्याः पुत्राय राज्यं दातव्यमिति भणित्वा तस्मै दत्ता। राजगृहनगरं स प्रेषितः। तयोश्चिलातपुत्रनामा पुत्रो जातः। एकदा राज्ञा मम बहुपुत्राणां मध्ये राजा को भविष्यतीति संचिन्त्य नैमित्तिकः पृष्टः। कथितं तेन—सिंहासनस्थो भेरीं ताडयन् शुनां ददत्पायसं यो भोक्षते स राजा भविष्यति। भोजनदिने परीक्षा कृता। सिंहासनभेर्यादिहस्तः श्वभ्यो भरणादिकं ददता पायसं भुक्तम्। एकदाग्निदाहे जाते हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं श्रेणिकेन निःसारितम्। अयं योग्य इति ज्ञात्वा राज्ञा कुक्कुरविट्टलादिदोषं दत्त्वा स निःसारितः। मध्याह्ने नन्दग्रामाग्रहारब्राह्मणैरपि स तथा निःसारितः। तत्र परिव्राजकमठिकायां भोजनं कारितो विष्णुधर्मं प्रतिपन्नवान्। दक्षिणापथे चलितस्यान्यत्कथान्तरम् ॥

द्रविडदेशे काञ्चीपुरे राजा वसुपालो, राज्ञी वसुमती, पुत्रो वसुमित्रा, मन्त्री ब्राह्मणः सोमशर्मा, पत्नी सोमश्रीः, पुत्री अभयमतिः। अयं सोमशर्मा मन्त्री धर्मार्थी गङ्गादितीर्थमालोक्य व्याघुटितो ब्राह्मणरूपधारिणः श्रेणिकस्य मार्गे मिलितः। भणितः स श्रेणिकेन—

माम तव स्कन्धमहमारोहामि मम स्कन्धे त्वमारोह। शीघ्रं येन गम्यते। चिन्तितं तेन ग्रहिलो ऽयम्। बृहद्ग्रामः उद्वसः, लघुग्रामो महान् यत्र भुङ्क्ते। १. महिष्यः प्राणाः। २. वृक्षतले छत्रिका धृता पथि संवृता। ३. जले प्राणहिते पादयोः पथि हस्ते धृते। ४. पृष्टं बदर्याः कति कण्टाः। ५. नारी बद्धा मुक्ता वा कुट्यते। ६. मृतको मृतो जीवेन वा गच्छति। ७. शालिक्षेत्रमिदं कुटुम्बिना भक्षितं भक्ष्यते भक्षितव्यं वा। ८. इति मार्गे चेष्टितं कुर्वन्तं बाहिरे श्रेणिकं धृत्वा काञ्चीपुरे निजगृहं प्रविष्टो मन्त्री। अभयमत्या स पृष्टः—तात त्वमेकाकी गत आगतो ऽसि। कथितं तेन—आगच्छतः एको रूपवान् ग्रहिलो बटुर्मिलितो बाहिरे तिष्ठति। पृष्टं तया—कीदृशो ग्रहिलः। अस्मान्माम स्कन्धारोहणादिकमाकर्ण्य व्याख्यानं कृत्वा तया पुरुषहस्ते स्तोकतैलखली प्रेषिते। तैलखली समर्प्य भाजने याचिते। तेन कर्दममध्ये गर्ताद्वये धृते द्वे। कर्दममध्ये नीतस्य पादप्रक्षालनार्थं भाजने स्तोकजलं दत्तम्। वंशकम्बया कर्दमापनयनेन वक्रप्रवालके दवरकप्रोतनेन तुष्टा। अभयमतिः परिणीता तेन अतिवल्लभा जाता। विलपन्त्यटव्यां जिनदत्तवसुमित्रश्रावकयोः पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य यः सोमशर्मा ब्राह्मणः संन्यासेन मृत्वा सौधर्मे देवो ऽभूत् स स्वर्गादित्याभयमत्याभयकुमारनामा पुत्रो जातः। अथ वसुपालराजेन विजययात्रां गतेनैकस्तम्भप्रासादमालोक्य काञ्च्यां सोमशर्मस्य तदर्थं लेखः प्रेषितः। स च तं कारयितुमजानन् व्याकुलो ऽभूत्। श्रेणिकेन स विशिष्टतरः कारितः। आगतेन राज्ञा तमालोक्य तुष्टेन वसुमित्रा निजपुत्री श्रेणिकाय दत्ता। अथ राजगृहपुरे प्रश्रेणिकश्चिलातपुत्रस्य राज्यं समर्प्य निर्विण्णः प्राव्राजीत्। चिलातपुत्रे सर्वान्यायरते प्रधानैः श्रेणिकस्य विनयपत्रिका प्रेषिता। सो ऽपि तामालोक्य राजगृहपुरे पाण्डुरकुटीमागच्छेति वसुमित्राभयमती भणित्वा आगत्य चिलातपुत्रं

निर्द्धाट्य राजा जातः। एकदाभयकुमारेण पृष्टा माता—क्व मे पिता। कथितं तया मगधदेशे राजगृहपुरे पाण्डुरकुट्यां तिष्ठति। एतदाकर्ण्य विकल्प्य च सो ऽप्येकाकी तं नन्दग्रामं मयाहारमायातः। तत्र च श्रेणिकेन पूर्वनिःसरणदोषरुष्टेन नन्दग्रामं ग्रहीतुं कामेन दोषं स्थापयितुमिच्छता राजादेशः प्रेषितो यथा—बहुविद्यापारगाः ब्राह्मणाः भो मृष्टजलं वटकूपं शीघ्रं मे प्रेषयथ अन्यथा निग्रहं करोमि। तेन कारणेन व्याकुला ब्राह्मणा अभयकुमारेण कारणं पृष्टाः। तैर्यथार्थे कथिते धारितास्तेन भोजनादिकं कुरुत [इति]। तद्वचने शिक्षां दत्त्वा द्वौ ब्राह्मणौ श्रेणिकपार्श्वे प्रेषितौ। ताभ्यां विज्ञप्तः—देव स कूपो भणितो ऽस्माभिर्न चागच्छति। रुष्टो ग्रामबाहिरे स्थितः। तत्रापि भणितो नागच्छति। पुरुषस्य स्त्रीवशीकरणमतो देव निजपुरस्थामुदुम्बरकूपिकां प्रेषय तस्याः पृष्टलग्नो येनागच्छतीतीव तं मत्वा राजा मौनम् १। तथा गजे पलसंख्यार्थं प्रेषिते जलेन वा हस्तिप्रमाणपाषाणपलानि २। यथा स वटकूपः पूर्वदिशि स्थितः पश्चिमदिशि कर्तव्यः ग्रामः पूर्वदिशि कृतः ३। मेषः प्रेषितो न दुर्बलो न बलवान् अतिचारयित्वा वृकसमीपे ध्रियते ४। गर्गरीमध्यस्थं पाण्डुरकूष्माण्डं प्रेषयथ। तत्रैव संवर्ध्य प्रेषितम् ५। समसारकाष्ठस्य जले अधोमूलम् ६। रजोदेवरिकायां प्रतिच्छन्दं याचितम् ७। इत्यादिकृते स देशिक आगच्छतु न दिने न रात्रौ न भूमौ नाकाशे न मार्गे नामार्गे। संध्यायां शकटैकभागेनागतः। भण्डं सिंहासनस्थं त्यक्त्वा अङ्गरक्षमध्यस्थो राजा जनानन्दं दृष्ट्वा ज्ञात्वा न तद्दृष्ट्वा श्रेणिकेन संतोषान्मम पुत्रो ऽयं लोकानां कथिते महोत्सवः कृतः अभयमतिवसुमित्रे आनयिते इदानीमन्यत्कथान्तरम्।

सिन्धुदेशे विशालीपुर्यां राजा कौशिकः, पुत्री यशस्वती, पुत्रश्चेटकमहाराजः, सुभद्रा प्रियकारिणी सुप्रभावती मृगावती सुज्येष्ठा चेलिनी चन्दना एताः सप्त पुत्र्यः। तद्रूपालेखार्थं सुचित्रकारं

गवेषयति चेटकः। काकसवर्धकिना यतः स्त्रीयन्त्रं कृतं तेन परीक्ष्यन्ते चित्रकाराः। पद्मावत्या अनुविद्धरूपलब्धवरश्चित्रभूतिनामा चित्रकरो देशादागत्य अन्यचित्रकरगृहे प्रविष्टः काकसेन चेटकराजस्य दर्शितः। गौरवभोजनादिकं दत्तम्। रात्रौ राजकुले तां यन्त्रस्त्रियं सहसा भङ्क्त्वा भीतचित्तः साक्षादिवात्मानमवलम्बिकादिकं कुड्ये प्रदर्श्यादृश्यो बभूव। तमतिशयमालोक्य राज्ञा तस्याभयदानं दत्तम्। चेटकसुभद्राप्रियकारिण्यादीनामनुविद्धरूपं लिखितम्। तेन नित्यं राजा विलोकते। चेलिन्या रूपं नागच्छति। तस्या गुह्यदेशे लिखिन्यामपि [?] बिन्दुपाते रूपानुविद्धतायां राजरोषं ज्ञात्वा चेलिनीरूपं तेनानीय राजगृहनगरे श्रेणिकराजस्य दर्शितम्। तस्य कामासक्तिः। तदर्थमभयकुमारो बहुभाण्डं गृहीत्वा गन्धवादवणिक्सार्थवाहो भूत्वा विशालीं गतः। राजानं दृष्ट्वा राजकुलसमीपे समर्थ्यं क्रियाणकं दत्त्वा कन्यायां चेटिकागमनसमये श्रेणिकरूपस्य पूजनं प्रशंसनं करोति। चेटिकाः कन्यानां कथयन्ति। ताश्च द्रष्टुं समायाताः। सुज्येष्ठाचेलिनीभ्यां रूपासक्ताभ्यां एकान्ते स भणितः—आवां गृहीत्वा गच्छ त्वम्। सुरङ्गाद्वारे निर्गमनकाले चेलिन्या सुज्येष्ठा अतीर्ष्याभरणव्याजेव वञ्चिता। ततः प्रभाते चेटकराजस्य या भगिनी यशस्वती कन्तिका तत्पार्श्वे अर्जिका जाता। चेलिनी च तेनानीता श्रेणिकेन परिणीता। तस्याः पुत्रो वारिषेणः धारिण्यः पुत्र कूणिकः। अथ श्रेणिकचेलिन्योर्नित्यं विवादो विष्णुधर्मो जिनधर्म एव। भणिता श्रेणिकेन—भर्तारं देवता नारीति लौकिकवचनात् तवाहमेव देवः, मम ये देवगुरवः तवापि देवगुरवः। एतदाकर्ण्य तया भणितम्—भगवतो भोजनं ददामि। निमन्त्र्यानीय गौरवेण महामण्डपे धृताः। अस्माकं ध्यानस्थितानामात्मा विष्णुपदे तिष्ठतीत्युक्त्वा तेषां ध्यानस्थितानां तया स मण्डपो दाहितः। ते च नष्टाः। रुष्टेन राज्ञा सा भणिता। यदि भक्तिर्नास्ति तदा किं मारणं तेषां चिन्त्यते तस्य

रोषोपशमनार्थं तया कथा कथिता। वत्सदेशे कौशम्बीनगर्यां राजा प्रजापालो, राज्ञी यशस्विनी, श्रेष्ठी सागरदत्तो, वसुमती कलत्रम्। द्वितीयः श्रेष्ठी समुद्रदत्तः। प्रीतिवर्धनार्थं सागरदत्तेनोक्तम्—भो समुद्रदत्त, यदि तव पुत्री तदा यो मम पुत्रो भविष्यति तदा तस्य दातव्या। अथवा मे पुत्री तदा तव पुत्रस्य। एवं सागरदत्तवसुमत्योः पुत्रः सर्पो वसुमित्रनामा जातः। समुद्रदत्तासमुद्रदत्तयोः पुत्री नागदत्ता। झकटके सति सर्पेण परिणीता नागदत्ता। भोगानुभवने शरीरविकारमालोक्य जने विरूपकं वदति सति जनन्या पृष्टा—पुत्रि कीदृशस्तव भर्ता। कथितं तया—दिवा सर्पो रात्रौ नवयौवनो रूपवान् पुरुषः। अनुभूय दिवा पुनः सर्पः पिट्टारके तिष्ठति। एतत्प्रच्छन्नया दृष्ट्वा मन्त्रयित्वा समुद्रदत्तया रात्रौ पिट्टारके दग्धे निराश्रयः स पुरुष एव स्थितः। भवद्गुरूणामप्येव जीवो विष्णुपदे तिष्ठत्विति मया चिन्तितम्। इत्याकर्ण्य चित्तस्थकोपेन पापर्द्धि च गतः श्रेणिक आतापस्थं यशोधरमुनिमालोक्यामुं पापर्द्धिविघ्नकारिणं मारयामीति संचिन्त्य ये पञ्चशतकुक्कुरा मुक्ता मुनेः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रणताः। बाणाश्च पुष्पमाला जाताः। तदा तेन सप्तमनरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्बद्धम्। कुक्कुरबाणाभ्यां तमतिशयमालोक्य पूर्णयोगं तं मुनिं प्रणम्य तत्त्वमाकर्ण्योपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा प्रथमनरके चतुरशीतिवर्षसहस्रमात्रमायुः कृतम्। त्रिगुप्तमुनीनां समीपे क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं वर्धमानतीर्थंकरसमीपे क्षायिकसम्यक्त्वमित्यग्रे॥

[९०★३२] सा समत्था जिणभत्ती।

[एया वि सा समत्था जिणभत्ती दुग्गइं णिवारेदुं।
पुण्णाणि य पूरेदुं आसिद्धिपरंपरसुहाणं॥★७४६॥

अत्र करकण्डुमहाराजस्य कथा —

गोपो विवेकविकलो मलिनो ऽशुचिश्च
राजा बभूव सगुणः करकण्डुनामा ।
इष्ट्वा जिनं भवहरं स सरोजकेन
नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥

अस्य वृत्तस्य कथा । तद्यथा—श्रेणिकस्य गौतमस्वामिना यथा कथिताचार्यपरम्परयागता सा संक्षेपेण कथ्यते ! अत्रैवार्यखण्डे कुन्तलविषये तेरपुरे राजानौ नीलमहानीलौ जातौ । श्रेष्ठी वसुमित्रो, भार्या वसुमती, तद्गोपालो धनदत्तः । तेनैकदाटव्यां भ्रमता सरसि सहस्रदलकमलं दृष्टं गृहीतं च, तदा नागकन्या प्रगटीभूय तं वदति—सर्वाधिकस्येदं प्रयच्छेति । तदनु सकमलेन स्वगृहमागत्य श्रेष्ठिनस्तद्वृत्तान्तं निरूपितवान् । तेन राज्ञो भाषितम् । राज्ञा गोपालेन श्रेष्ठिना च सहस्रकूटजिनालयं गत्वा जिनमभिवन्द्य सुगुप्तमुनिं च । ततो राज्ञा पृष्टो मुनिः—कः सर्वोत्कृष्टः इति । तेन जिनो निरूपितः । श्रुत्वा गोपालो जिनाग्रे स्थित्वा हे सर्वोत्कृष्ट, कमलं गृहाणेति देवस्योपरि निक्षिप्य गतः ॥

अत्रापरवृत्तान्तः । तथा हि—श्रावस्तिपुर्यां श्रेष्ठी नागदत्तो, भार्या नागदत्ता । द्विजसोमशर्मणो ऽनुरक्तां तां ज्ञात्वा श्रेष्ठी दीक्षितो दिवं गतः । तस्मादागत्याङ्गदेशचम्पायां राजा वसुपालो, देवी वसुमती, तयोः पुत्रो दन्तिवाहननामा जातः । एवं स वसुपालो यावत्सुखेनास्ते तावत्कलिङ्गदेशे सोमशर्मा द्विजो मृत्वा नर्मदातिलकनामा हस्ती जातो धृत्वा वसुपालाय प्रेषितः । स तत्र तिष्ठति । सा नागदत्ता मृत्वा च तामलिप्तनगर्यां वणिग्वसुदत्तस्य भार्या नागदत्ता जाता । सा द्वे सुते लेभे धनवतीं धनश्रियं च । धनवती नागानन्दपुरे वैश्यधनदत्तधनमित्रयोः पुत्रेण धनपालेन परिणीता । धनश्रीर्वत्सदेशे कौशाम्बीपुरे वसुपालवसुमत्योः श्रेष्ठीवसुमित्रेण परिणीता । तत्संसर्गेण

जैनी बभूव । नागदत्ता पुत्रीमोहेन धनश्रीसमीपं गता । तया मुनिसमीपं नीता । अणुव्रतानि गृहीतानि । ततो बृहत्पुत्री समीपं गता तया बौद्धसक्ता कृता । लब्ध्वा वारत्रयमणुव्रतानि ग्राहिता । धनवत्या नाशितानि । चतुर्थे वारे दृढा बभूव । कालान्तरे मृत्वा तत्कौशाम्बीवसुपालवसुमत्योः पुत्री जाता । कुदिने जातेति मञ्जूषायां स्वनामाङ्कितमुद्रिकादिभिर्निक्षिप्य यमुनायां प्रवाहिता । गङ्गां मिलित्वा पद्मद्रहे पतिता । कुसुमपुरे कुसुमदत्तमालाकारेण दृष्ट्वा स्वगृहमानीय स्ववनिताकुसुममालायाः समर्पिता । तया च पद्मद्रहे लब्धेति पद्मावतीसंज्ञया वर्धिता । युवतिर्जाता । केनचिद्दन्तिवाहनस्य तत्स्वरूपं कथितम् । तेन तत्र गत्वा तद्रूपं दृष्ट्वा मालाकारः पृष्टः—सत्यं कथय कस्येयं पुत्रीति । तेन तदग्रे निक्षिप्ता मञ्जूषा । तत्रस्थितनामाङ्कितमुद्रादिकं वीक्ष्य तज्जातिं ज्ञात्वा परिणीता । स्वपुरमानीता वल्लभा जाता । कियति काले गते तत्पिता स्वशिरसि पलितमालोक्य तस्मै राज्यं दत्त्वा तपसा दिवं गतः । पद्मावती चतुर्थस्नानानन्तरं स्ववल्लभेन सुप्ता स्वप्ने सिंहगजादित्यानद्राक्षीत् । राज्ञः स्वप्ने निरूपिते तेनोक्तम्—सिंहदर्शनात्प्रतापी गजदर्शनात् क्षत्रियमुख्यो रविदर्शनात्प्रजाम्भोजसुखकरः पुत्रो भविष्यतीति संतुष्टा सुखेन स्थिता । इतस्तेरपुरे स गोपालः सेवालद्रहे तरीतुं प्रविष्टः सेवालेन वेष्टितो मृत्वा पद्मावतीगर्भे स्थितः । तन्मृतिं परिज्ञाय संस्कार्य श्रेष्ठी सुगुप्तमुनिनिकटे तपसा दिवं गतः । इतः पद्मावत्या दोहलको जातः । कथम् । मेघाडम्बरे चपलाकुले वृष्टौ सत्यां स्वयमङ्कुशं गृहीत्वा पुरुषवेषेण द्विपं चटित्वा पृष्ठे राजानं कृत्वा पत्तनाद्बहिर्भ्रमाव इति । तत्स्वरूपे राज्ञः कथिते तेन स्वमित्रवायुवेगखेचरेण मेघाडम्बरादिकं कारयित्वा नर्मदातिलकं द्विपमलंकृता राज्ञी स्वयं च समारुह्य परिजनेन पुरान्निर्गतः । स च गजाङ्कुशमुल्लङ्घ्य पवनवेगेन गन्तुं लग्नः । सर्वोऽपि जनः स्थितः । महाटव्यां वृक्षशाखामादाय

राजा स्थितः। स्वपुरमागत्य हा पद्मावति तव किमभूदिति महाशोकं कृतवान्। विबुधैः संबोधितः। इतः स हस्ती नानाजनपदानुल्लङ्घ्य दक्षिणं गत्वा श्रान्तो महासरसि प्रविष्टः। जलदेवतया समुत्तार्य तटे उपवेशिता सा। अत्रावसरे तत्रागतेन भटनाममालाकारेण रुदन्ती संबोधिता। हे भगिनि एहि मद्गृहमित्युक्ते तयोक्तम्—कस्त्वम्। तेनोक्तम्—मालिको ऽहमिति। ततो हस्तिनागपुरे स्वगृहे मद्भगिनीयमिति स्थापिता। तस्मिन् क्वापि गते तद्वनितया मारिदत्तया निर्धाटिता पितृवने पुत्रं प्रसूता। तदा मातङ्गेन तस्या प्रणम्योक्तम्—मत्स्वामिनी त्वमिति। तयोक्तम्—कस्त्वम्। स आह—अत्रैव विजयार्धे दक्षिणश्रेण्यां विद्युत्प्रभपुरेशविद्युत्प्रभविद्युल्लेखयोः सुतो ऽहं बालदेवः। स्ववनिताकनकमालया दक्षिणक्रीडार्थं गच्छतो मम रामगिरौ वीरभट्टारकस्योपरि न गतं विमानम्। क्रुद्धेन मया तस्योपसर्गः कृतः। पद्मावत्या तं निवार्य मम विद्याच्छेदः कृतः। तदनु मया सा प्रणम्योपशान्ति नीता। ततो हे स्वामिनि, मम विद्याप्रसादं कुर्वित्युक्ते तयोक्तम्—हस्तिनागपुरे पितृवने यद्रक्षसि बालं तद्राज्ये तव विद्याः सेत्स्यन्ति याहीत्युक्ते सो ऽहं मातङ्गवेषेणेदं रक्षन् स्थित इति। तदनु संतुष्टया तस्य बालः समर्पितः। त्वं वर्धयैनमिति। ततस्तेन काञ्चनमालायाः समर्पितः। सा च करयोः कण्डूयुक्त इति करकण्डूनामा पालयितुं लग्ना। सा पद्मावती गान्धारी या ब्रह्मचारिणी तामाश्रिता। तया सह गत्वा समाधिगुप्तमुनिं दीक्षां याचितवती। तेनाभाणि—न दीक्षाकालः प्रवर्तते। पूर्वं वारत्रयं यद्व्रतं खण्डितं तत्फलेन त्रिर्दुःखमासीत्तदुपशमे पुत्रराज्यं वीक्ष्य तेन सह तपो भविष्यतीत्युक्ते संतुष्टा पुत्रं विलोक्य ब्रह्मचारिणीनिकटे स्थिता। स बालस्तेन सर्वकलासु कुशलः कृतः। तौ खेचरकरकण्डू पितृवने यावत्तिष्ठतस्तावज्जयभद्रवीरभद्रावाचार्यौ समागतौ। तत्र नरकपालमुखे लोचनयोश्च वेणुत्रयमुत्पन्नमालोक्य केनचिद्यतिनोक्तम्

आचार्यं प्रति—हे नाथ किमिदं कौतुकम् । आचार्यो ऽवदत् । यो ऽत्र राजा भविष्यति तस्याङ्कुशच्छत्रदण्डाः स्युरिति । श्रुत्वा केनचिद्विप्रेणोन्मूलितास्तस्मात्करकण्डुना गृहीताः । कियद्दिनेषु तत्र बलवाहनो राजा ऽपुत्रको मृतः । परिवारेण विधिना हस्ती राज्ञो ऽन्वेषणार्थं प्रेषितः । तेन च करकण्डुरभिषिच्य स्वशिरसि व्यवस्थापितः । ततः परिजनेन राजा कृतो बालदेवस्य विद्यासिद्धिरभूत्स तं नत्वा तस्य तन्मातरं समर्प्य विजयार्धं गतः । करकण्डुः प्रतिकूलानुन्मूल्य राज्यं कुर्वन् स्थितः । तत्प्रतापं श्रुत्वा दन्तिवाहनेन तदन्तिकं दूतः प्रेषितः । स गत्वा तं विज्ञप्तवान्—त्वया मत्स्वामिनो दन्तवाहनस्य भृत्यभावेन राज्यं कर्तव्यमिति । कुपित्वा करकण्डुनोक्तम्—रणे यद्भवति तद्भवतु याहीति विसर्जितः । स स्वयं प्रयाणं दत्त्वा चम्पाबाह्ये स्थितः । दन्तिवाहनो ऽप्यतिकौतुकेन सर्वबलान्वितो निर्गतः । उभयबले संनद्धे व्यूहप्रतिप्यूहक्रमेण स्थिते तदवसरे पद्मावती गत्वा स्वभर्तुः स्वरूपं निरूपितवती । ततो गजादुत्तीर्य संमुखमागतः पिता पुत्रो ऽपि । उभयोर्दर्शनं नमस्काराशीर्वाददानं च जातम् । मातापितृभ्यां जगदाश्चर्यविभूत्या पुरं प्रविष्टः । पित्राष्टसहस्रकन्याभिः विवाहं स्थापितः । तस्मै राज्यं समर्प्य पद्मावत्या भोगाननुभवन् स्थितो दन्तिवाहनः । राज्यं कुर्वतस्तस्य मन्त्रिभिरुक्तम्—देव त्वया चेरमपाण्ड्यचोलाः साधनीया इति । ततस्तेषामुपरि स्थित्वा तदन्तिकं दूतं प्रेषितवान् । तेन गत्वागतेन तदौद्धत्ये विज्ञप्ते रोषात्तत्र गत्वा युद्धावनौ स्थितः । ते ऽपि मिलित्वागत्य महायुद्धं चक्रुः । दिनावसाने उभयबलं स्वस्थाने स्थितम् । द्वितीयदिने ऽतिरौद्रे संग्रामे जाते स्वबलभङ्गं वीक्ष्य कोपेन करकण्डुर्महायुद्धं कृत्वा त्रीनपि बबन्ध । तन्मकुटे पदं न्यसन् तत्र जिनबिम्बानि विलोक्य 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' इति भणित्वा यूयं जैना इत्युक्ते तैरोमिति भणिते हा हा निकृष्टो ऽहं जैनानामुपसर्गं कृतवानिति पश्चात्तापं कृत्वा क्षमां कारितः । स्वदेशं

गच्छंस्तेरसमीपे सैन्यं विमुच्य स्थितः। तत्र दौवारिकैरन्तःप्रवेशिताभ्यां धाराशिवभिल्लाभ्यां विज्ञप्तो राजा—देवास्माद्दक्षिणस्यां दिशि गव्यूत्यन्तरे पर्वतस्योपरि धाराशिवं नाम पुरं तिष्ठति। सहस्रस्तम्भं जिनलयणं च तस्योपरि पर्वतमस्तके वल्मीकम्। तद्धेतोः हस्ती पुष्करेण जलं कमलं च गृहीत्वागत्य त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य जलेन सीत्कारबिन्दुभिः पूजयित्वा प्रणमति। ताभ्यां तुष्टिं दत्त्वा तत्र गत्वा जिनं समर्च्य वल्मीकं पूजयन्तं हस्तिनं वीक्ष्य तत्खानितम्। तत्स्थितमञ्जूषामुद्धाट्य रत्नमयीं पार्श्वनाथप्रतिमां वीक्ष्य हृष्टः। तल्लयणमगालदेवसंज्ञया स्थापितवांश्च। मूलप्रतिमाग्रे ग्रन्थि विलोक्य विरूपका दृश्यते इति शिलाकर्मिणं बभाणेमां स्फोटयेति। तेनोक्तम्। जलसिरेयं जलपूरो निःसरीष्यतीति। तथापि स्फोटिता। तदनु निर्गतं जलम्। राजादीनां निर्गमने संदेहो ऽभूत्। ततो राजा दर्भशय्यायां द्विविधसंन्यासेन स्थितः। नागकुमारः प्रत्यक्षीभूय वक्तुं लग्नः—कालमाहात्म्येन रत्नमयप्रतिमा रक्षितुं न शक्यत इति मया जलपूर्णं लयणं कृतम्। ततस्त्वया जलापनयनाग्रहो न कर्तव्य इति महताग्रहेण दर्भशय्याया उत्थापितो राजा। ततस्तं पृच्छति स्म—केनेदं लयणं कारितं, तथा वल्मीकमध्ये प्रतिमा केन स्थापितेति। नागकुमारः प्राह—अत्रैव विजयार्धे उत्तरश्रेण्यां नभस्तिलकपुरे राजानावमितवेगसुवेगौ। अत्रैवार्यखण्डजिनालयान् वन्दितुमागतौ मलयगिरौ रावणकृतजिनगृहानपश्यताम्। वन्दित्वा तत्र परिभ्रमन्तौ पार्श्वनाथप्रतिमां लुलोकाते। मञ्जूषायां निक्षिप्य गृहीत्वेमां पर्वतमध्ये अत्र मञ्जूषां व्यवस्थाप्य क्वापि गतौ। आगत्य यावदुत्थापयतस्तावन्नोत्तिष्ठति मञ्जूषा। गत्वा तेरपुरे ऽवधिबोधं महामुनिं पृष्टवन्तौ—मञ्जूषा किमिति नोत्तिष्ठतीति। तैरवादीयं मञ्जूषा लयणस्योपरिलयणं कथयति। अयं सुवेगौ आर्तध्यानेन मृत्वा गजो भूत्वा तां मञ्जूषां पूजयित्वा यदा करकण्डुभूपस्तामुत्पाटयिष्यति तदा

गजः संन्यासेन दिवं यास्यतीति। प्रतिमास्थिरत्वमवधार्येदं लयणं केन कारितमिति पृष्टो मुनिः कथयति। विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां रथनूपुरपुरे राजानौ नीलमहानीलौ जातौ। संग्रामे शत्रुभिः कृतविद्याच्छेदावत्रोषितौ। ताविदं कारितवन्तौ। विद्याः प्राप्य विजयार्धं गतौ। तपसा दिवं गताविति निशम्य तौ दीक्षितौ। ज्येष्ठो ब्रह्मोत्तरं गत इतर आर्तेन हस्ती जातस्तेन देवेन संबोधितः। स जातिस्मरो भूत्वा सम्यक्त्वं व्रतानि चादाय तां पूजयितुं लग्नः। यदा कश्चिदिमां खनति तदा संन्यासं गृह्णीया इति प्रतिपाद्य देवो दिवं गतः। त्वयोत्पाटितेति स हस्ती संन्यासेन तिष्ठति। त्वं पूर्वमत्रैव गोपालो जिनपूजया राजा जातो ऽसि। इति संबोध्य नागकुमारो नागवापिकां गतः। तृतीयदिने गत्वा राज्ञा तस्य हस्तिनो धर्मश्रवणं कृतम्। सम्यक्त्वपरिणामेन तनुं विसृज्य सहस्रारं गतो हस्ती। करकण्डुः स्वस्य मातुर्बालदेवस्य च नाम्ना लयणत्रयं कारयित्वा प्रतिष्ठां च तत्रैव स्वतनुजवसुपालाय स्वपदं वितीर्य स्वपित्रा चेरमादिक्षत्रियैश्च दीक्षां बभार। पद्मावत्यपि। करकण्डुर्विशिष्टं तपो विधायायुरन्ते संन्यासेन वितनुर्भूत्वा सहस्रारं गतः। दन्तिवाहनादयः स्वस्य पुण्यानुरूपं स्वर्गलोकं गताः। इति जिनपूजया गोपो ऽप्येवंविधो जज्ञे ऽन्यः किं न स्यादिति॥

सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः।
कल्याणकाले ऽथ जिनेश्वराणां सुरेन्द्रदन्तीव विराजते ऽसौ॥

इति भट्टारकश्रीप्रभाचन्द्रकृतः कथाकोशः समाप्तः॥

[संवत् १६३८ वर्षे श्रावणशुदि ३ रवौ श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीसकलकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीभुवनकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीज्ञानभूषणदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीविजयकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ० श्रीशुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्रीसुमतिकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणकीर्तिगुरूपदेशात् स्वात्मपठनार्थं लिख्यापितः॥]

INDEX OF PROPER NAMES

(Only one reference is given, and references are to the Nos. of Stories)

[ध]

[म]

[ष]

[स]

[ह]

उद्धृतपद्यानां सूची

(Quotations other than those from the Bhagavatī Ārādhanā found in this Prabandha)

	पृ०	तुलनार्थम्
अकालचर्या	३६	बृ. क., ३२.२८
अण्णत्थ किं	४४	
अन्यथानुपपन्नत्वं	२	
अम्हादो णत्थि भयं	४४	
आलोचनैः गर्हण	११३	बृ. क., १५.१६
काञ्च्यां नग्नाटको ऽहं	१३	
किं जंपिएण बहुणा	११४	
गवाशनानां स गिरः	१२५	बृ. क., ३३.३८
गोपो विवेकविकलो	१४१	
तुव जणणी	१०७	स्वा. का. शुभचन्द्रस्य टीका, पृ. ३०
तुह पियरो	१०७	स्वा. का. शुभचन्द्रस्य टीका, पृ. ३०
धम्मो जयवसियरणं	११४	
नाहंकारवशीकृतेन	८	
पूर्वं पाटलिपुत्र	१३	
प्रणम्य मोक्षप्रदं	१	
बालय णिसुणसि	१०७	स्वा. का. शुभचन्द्रस्य टीका, पृ.३०

१३

●

अशुद्धिसंशोधनम्

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	शुद्धम्
१७	१३	इत्याकर्ण्योत्पन्न°
३४	१९	°मस्त्विति ।
३५	११	[१५] किल कल्प°
३६	२	३४८
३७	१०	५८९
३८	१५	भट्ठो....भट्ठो....भट्ठो
३९	३	पञ्चाक्षर-नमस्कारान्
३९	१५	तिष्ठाम
४०	१	°र्व्राचानिबन्धो
४०	६	सह भोगान्
४०	१६	सुखं
४०	२१	त्रयस्त्रिंशत्सा°
४६	१७	संलप्य
५१	१	खन्यतो
५४	१	°वशतो
६५	११	°ज्जयिन्यां
६६	१	कमलश्रीः, पुत्राः
७४	१३	देव त्वमपि
७४	१४	रुद्ध्वा
८१	९	पृष्ठे
८३	३	°कार्यतिशयेन

पृष्ठम्	पङ्क्तिः	शुद्धम्
८५	२३	मीमांसा न्याय°
८८	८	निर्वाणं गतौ
८८	१४	ग्रहीष्यति
९२	५	प्रतीक्षेथां दर्शयामि
९२	१६-७	कृता तयोः।
९४	२	जलमज्झे
९६	२२	निर्धाट्य
९७	१८	[काइंदि
९९	१५	°पसर्गः कृतः
९९	१९	१५५२॥]
१०५	१९	वि सुभूमो
१०६	१२	प्रयागाद्
१०७	५	तथोपार्जित
१०८	१२	देवरतिः संसार
१२८	१२	व्याघुटता [?]
१३२	५	संसर्गात्तां
१३३	१	भावानुराग
१४१	१	कौशाम्बी
१४१	१४	आतापनस्थं
१४३	२४	अलंकृत्वा
१४५	१३	व्यूहप्रतिव्यूह
१४६	११	निःसरिष्यति
१४६	१६	दर्भशय्याया
१४६	२५	सुवेगो



भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक - हितकारी
मौलिक-साहित्य का निर्माण



संस्थापक

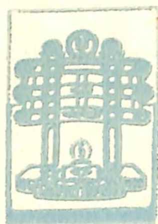
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा

श्रीमती रमा जैन



मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-२,२१,००५



भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक - हितकारी
मौलिक-साहित्य का निर्माण

•

संस्थापक
श्री शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

•

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-२,२१,००५